

ध्यान की पुष्पाञ्जलि



ध्यान की पुष्पाञ्जलि

प्रवचनकर्ता

श्री राजन स्वामी

प्रकाशक

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ

नकुड़ रोड, सरसावा, सहारनपुर, उ.प्र.

www.spjin.org

सर्वाधिकार सुरक्षित

© २०१७, श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

पी.डी.एफ. संस्करण – २०१९

भूमिका

प्राणाधार सुन्दरसाथ जी!

प्रस्तुत पुस्तक श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, सरसावा में २०१२ में आयोजित चितवनि शिविर में श्री राजन स्वामी जी द्वारा की गई चर्चा का लिखित रूप है। श्री राजन स्वामी जी ने उस कार्यक्रम में वर्तमान समाज में प्रचलित सभी योग पद्धतियों के साथ-साथ अष्टांग योग व निजानन्द दर्शन की प्रेममयी चितवनि की पद्धति पर विस्तार से चर्चा की थी, जिसको कई सुन्दरसाथ द्वारा लिखित रूप में प्रकाशित करने की माँग की गई थी।

चूँकि बोलने और लिखने की शैली में कुछ भिन्नता होती है, और यह पुस्तक एक चर्चा का लिखित रूप है, इसलिए इसकी शैली प्रवचन की है। इस पुस्तक को पढ़ने पर ऐसा प्रतीत होगा, जैसे हम चर्चा ही सुन रहे हों।

इस चर्चा को लिखने की महान सेवा दिल्ली के सुन्दरसाथ श्री अरुण मिड्डा जी के सुपुत्र श्री हितेश मिड्डा ने की है। श्री सद्गुरु प्रसाद आर्य, कुमारी बबली, व किरण बहन जी का संशोधन में विशेष सहयोग रहा है। संगणक पर टंकण तथा संशोधन की सेवा ज्ञानपीठ के विद्यार्थी नीरज, कनेश्वर, गणेश, व शैलेश ने किया है। धाम धनी से प्रार्थना है कि इन सब पर अपनी कृपा बनाये रखें और हमेशा सेवा कार्य में आगे बढ़ने की शक्ति प्रदान करें।

आशा है यह पुस्तक आपको रुचिकर और हितकर लगेगी।

श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट

सरसावा (उ. प्र.)

अनुक्रमणिका

1	पाँच यमों की व्याख्या	6
2	पाँच नियमों की व्याख्या	106
3	विभूतियों की व्याख्या	169
4	प्रथम प्रश्नोत्तरी	210
5	द्वितीय प्रश्नोत्तरी	266
6	तृतीय प्रश्नोत्तरी	306
7	चतुर्थ प्रश्नोत्तरी	389

प्रथम पुष्प

ध्यान की प्रक्रिया से गुजरने से पहले हमें पाँच यम-नियमों के बारे में सुनने को मिलता है। पाँच यम हैं, पाँच नियम हैं। इसी को बौद्ध मत में पंचशील कहा गया है। पाँच यम क्या हैं? अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह। पाँच नियम क्या हैं? शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान।

जैसे कोई मकान बनाना होता है, तो उसकी नींव जैसी होगी वैसा ही भवन बनेगा। यदि नींव कमजोर होगी, तो यह आशा नहीं कर सकते कि विशाल भवन खड़ा हो सकेगा। ये पाँचों यम-नियम किसी भी आध्यात्मिक भवन की आधारशिला हैं।

यदि हम रात-दिन आँखें बन्द करके ध्यान में बैठें

और इनकी मर्यादाओं का उल्लंघन करें तो याद रखिये, हम कभी भी शिखर तक नहीं पहुँच सकते। लेकिन यह भी याद रखिये कि जो भी सच्चे हृदय से उस प्रियतम का ध्यान करता है, वह चाहे कितना बड़ा पापी क्यों न हो, वह अवश्य पाँच यम-नियमों का पालन कर लेगा। लेकिन यदि कोई चाहे कि हम उस परमात्मा से प्रेम न करें, राज जी की चितवनि न करें, और पाँच यम-नियमों का सरलता से पालन करें, तो यह सम्भव नहीं हो सकता।

दोनों में चोली-दामन का साथ है। इश्क (प्रेम) का प्राण इल्म (ज्ञान) है और इल्म का प्राण इश्क है। जैसे इल्म के बिना इश्क नहीं और इश्क के बिना इल्म नहीं, वैसे ही पाँच यम-नियमों का पालन किये बिना आप ध्यान में पारंगत नहीं हो सकते और ध्यान किये बिना

इन पाँचों का पालन नहीं कर सकते।

यदि कोई यह सोचे कि इन पाँचों का पालन करने के बाद ही हम चितवनि (ध्यान) में लगेंगे, तो यह भ्रम है। क्योंकि हमारे चित्त में जन्म-जन्मान्तरों की वासनायें भरी हैं, जिनको हम देख नहीं पाते। कल्पना कीजिये, यदि इस जन्म में हम अच्छी शिक्षा-दीक्षा ले लें तो हमारे अन्दर अच्छे संस्कार आ सकते हैं। हम चोरी नहीं करते, झूठ नहीं बोलते, डकैती नहीं करते, कटु वचन नहीं बोलते, माँस नहीं खाते, शराब नहीं पीते, लेकिन पूर्व जन्मों में यदि हमने ये सारे कर्म कर रखे हैं, तो जिस तरह से हवा के झोंके से अग्नि की लपटें तेज हो जाती हैं, उसी तरह से अवसर मिलते ही पुराने जन्मों के बुरे संस्कार हमारे ऊपर कभी भी हावी हो सकते हैं।

परब्रह्म का चिन्तन बौद्धिक दृष्टि से होता है और

परब्रह्म का ध्यान आत्मिक दृष्टि से होता है। जब तक हम परब्रह्म का ध्यान नहीं करते, चाहे हम कितने भी बड़े विद्वान क्यों न बन जायें, कुछ भी कर लें, किन्तु हमारे अन्दर के जन्म-जन्मान्तरों की वासनाओं के विकार को जलाया नहीं जा सकता।

अभी मैं प्रारम्भ कर रहा हूँ यम और नियमों की सामान्य सी व्याख्या—

अहिंसा

अहिंसा किसको कहते हैं? बोलचाल में इसका अर्थ लगाया जाता है कि किसी को मारना हिंसा है और किसी प्राणी की हिंसा न करना अहिंसा है। लेकिन केवल शस्त्र से और अस्त्र से मारना ही हिंसा नहीं है। अहिंसा का तात्पर्य यह है कि जो मन से भी हो, वाणी से भी हो,

और क्रियात्मक रूप से भी हो।

कल्पना कीजिये कि आपको किसी व्यक्ति ने कोई धोखा दे दिया। आप एकान्त में सोचते रहते हैं कि मैं उसे मरवा डालूँगा या उसके ऊपर मैं पत्थर फेंक दूँ, यह भी एक प्रकार की हिंसा है। भले ही आप इस बात को वाणी से नहीं कह रहे हैं, लेकिन आपके मन में तो एक युद्ध चल रहा है। मानसिक हिंसा भी हिंसा ही है। यदि आपको किसी ने कटु वचन कह दिया और जिन्दगी भर आप उन कटु वचनों को याद रखते हैं, उसके प्रति घृणा की भावना भरे रहते हैं, तो यह भी एक प्रकार की मानसिक हिंसा है।

दूसरी वस्तु है वाचिक हिंसा। वाचिक हिंसा किसे कहते हैं? धर्मशास्त्रों का कथन है, "तलवारों के घाव तो भर सकते हैं, लेकिन कड़वे वचनों के घाव कभी भी कोई

भुला नहीं सकता।" द्रौपदी के एक कड़वे वचन ने महाभारत का युद्ध कराया था। द्रौपदी ने यदि नहीं कहा होता कि "अन्धों के पुत्र अन्धे ही होते हैं", तो शायद महाभारत के युद्ध की भूमिका नहीं रची जाती। उस महाभारत के युद्ध की विभीषिका हमें झेलनी पड़ी, जिसमें ४७ लाख २६ हजार से ज्यादा सैनिक मारे गए। अठारह अक्षौहिणी की गणना करेंगे, तो ४७ लाख २६ हजार और कुछ सौ सैनिक होते हैं। किसने मरवाया? एक द्रौपदी की जिह्वा की चंचलता ने।

सबको मालूम है कि उस समय युधिष्ठिर का सभा भवन ऐसा बना था कि किसी को पता नहीं चलता था कि सामने दीवार है या नहीं। दीवार होती थी, लेकिन दीवार दिखाई नहीं पड़ती थी। जहाँ सूखी जमीन होती थी, वहाँ लगता था कि पानी जमा है, और जहाँ पानी

होता था, वहाँ लगता ही नहीं था कि पानी है, इसलिये बेचारा दुर्योधन कई बार पानी में गिर पड़ा। कई बार सामने दीवार होते हुये भी दीवार से टकरा गया। कई बार सामने दरवाजा होता था लेकिन दिखता नहीं था और दुर्योधन दरवाजा खोजते-खोजते सबसे पूछा करता था कि दरवाजा किधर है? महल की अटारी पर बैठी हुई द्रौपदी ने हँसी कर दी कि आखिर अन्धे का पुत्र क्या करेगा? अन्धे का पुत्र तो अन्धा ही होगा। यही बात दुर्योधन को चुभ गई और सबको मालूम है कि आगे क्या हुआ शकुनि के षड्यन्त्रों से।

यदि सीता ने लक्ष्मण जैसे ब्रह्मचारी को कटु वचन नहीं बोले होते, तो शायद राम-रावण युद्ध की भूमिका नहीं बन सकती थी। कहा जाता है कि रावण ने मारीच को स्वर्ण मृग बनाकर राम को वहाँ से हटाने के लिये

षड्यन्त्र रचा और लक्ष्मण ने वहाँ से जाने से मना कर दिया। जब राम ने मारीच को बाण मारा, तो मारीच राम की आवाज में हाय लक्ष्मण-हाय लक्ष्मण करके बोला। सीता को लगा कि राम संकट में हैं। लक्ष्मण कहते हैं कि माते! मर्यादा पुरुषोत्तम राम पर तो कोई संकट आ ही नहीं सकता। मैं नहीं जाऊँगा क्योंकि भ्राताश्री का आदेश है कि आपको छोड़कर कहीं न जाऊँ। मैं कैसे उनके आदेश का उल्लंघन करूँ?

सीता ने क्रोध में अपशब्द कह दिया। याद रखिये कि जब आपको क्रोध आता है, तो उस समय अपने आपको संयत रखिये। क्रोध की मुद्रा में न तो किसी से कोई बात कीजिये, न कुछ लिखिये। यदि आप क्रोध को भड़काते रहेंगे, तो इससे बहुत अनर्थ हो जायेगा। सीता ने यही किया। सीता ने सीधे आक्षेप लगा दिया कि

लक्ष्मण! तू तो इसलिये नहीं जाना चाहता कि राम मर जायें और तू मुझे अपनी पत्नी बनाकर रख ले।

जिस लक्ष्मण ने कभी सीता के चेहरे की तरफ न देखा हो, हमेशा माँ का रूप माना हो, यदि वही सीता ऐसे वचन बोले तो लक्ष्मण जैसे ब्रह्मचारी के ऊपर क्या गुजरी होगी? लक्ष्मण ने रेखा खींचकर आदेश का पालन अवश्य किया कि माते! आपके आदेश से मैं जा तो रहा हूँ, लेकिन इस रेखा को लांघना नहीं। फिर भी सीता ने लक्ष्मण की बात नहीं मानी।

जब रावण अपहरण करके ले जा रहा था, तो सीता कहती है कि राक्षस! यदि मैंने लक्ष्मण जैसे पुत्रतुल्य ब्रह्मचारी पर आक्षेप नहीं लगाया होता, तो मेरा अपहरण करने की तेरी क्या शक्ति थी? मेरे कटु वचनों का ही पाप है कि तू मेरा अपहरण करने में समर्थ हो गया। परिणाम

सबके सामने है। वानर सेना और राक्षसों की सेना में घोर युद्ध हुआ, लाखों की जानें गईं।

यह विकृति क्यों पैदा होती है? वाचिक हिंसा अर्थात् वाणी से फैलने वाली कटुता मनुष्य के अन्दर इतना विकार पैदा कर देती है कि मानव मानव के रक्त का प्यासा हो जाता है। इसलिये यदि हम अध्यात्म के पथ पर चलना चाहते हैं, तो अहिंसा का दूसरा चरण अर्थात् वाणी की हिंसा से बचना चाहिये।

वाणी की अहिंसा क्या है? **"अनुद्वेगकरं सत्य प्रियं हितं च।"** ऐसे शब्द बोलें जिससे किसी को उद्वेग न हो, किसी को कष्ट न हो। सत्य हो, प्रिय हो, और हितकारी हो। सत्य और प्रिय का भाव क्या होता है? **"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्।"** सत्य बोलिये, प्रिय बोलिये। **"न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्।"** सत्य हो और कटु लगने वाला हो, तो

वह न बोलिये। "प्रियं च न अनृतं ब्रूयात्।" प्रिय हो लेकिन झूठा हो, वह भी न बोलिये। किसी की झूठी चापलूसी भी न कीजिये और किसी की झूठी निन्दा भी न कीजिये। निन्दा और स्तुति से रहित यथार्थ सत्य बोलिये। यही हमारी भारतीय संस्कृति का आदेश है।

पहले क्या होता था कि जब राजा-महाराजा अपने महलों से निकलते थे, तो तोप के गोले छोड़े जाते थे। धुँएँ से ढकने के कारण सूरज नहीं दिखता था, तो चारण और भाट कहते थे कि आपके चेहरे में इतना तेज है कि आपके तेज से सूरज भी शर्मिन्दा हो गया है और दिखाई नहीं पड़ रहा है। यह क्या है? झूठी बात। मनुष्य के चमड़े में इतना तेज कहाँ से आ सकता है कि सूरज का तेज भी फीका हो जाये। यह प्रवृत्ति हानिकारक है।

बिना किसी बात के यदि आप किसी की निन्दा

करते रहते हैं, तो आपके मुख से निकले हुये कटु वचन कड़वाहट ही फैलायेंगे, कोई सार्थक परिणाम नहीं निकलेगा। इसलिये वाणी की हिंसा को रोकना अनिवार्य है।

मानसिक हिंसा और वाचिक हिंसा के बाद तीसरी हिंसा है, जो हम कार्य रूप में देखते हैं। यदि मनुष्य हिंसा का रास्ता छोड़ दे, तो सचमुच वह देवता बन जायेगा। आप देखते हैं कि मनुष्य ने मनुष्य को मारने के लिये ही तो अथाह पैसा लगा रखा है। इतने परमाणु हथियार बन चुके हैं कि इस दुनिया को एक-दो बार नहीं, हजार बार आग के ढेर में बदला जा सकता है।

जितना पैसा मनुष्य मनुष्य को मारने में लगा रहा है, उतना पैसा मनुष्य को सुखी बनाने में लगा दिया जाये, तो मैं समझता हूँ कि चाँदी की सतह पूरी पृथ्वी

पर डाली जा सकती है और इस पृथ्वी पर एक भी भूखा-नंगा नहीं रहेगा।

पाकिस्तान के पास निर्धनता है, लेकिन अरबों रुपयों का उसका रक्षा बजट होता है। सारे संसार में यही हो रहा है। भारत में भी आप देखेंगे कि मनुष्य प्राणियों की हिंसा करता है। किसके लिये? अपनी जिह्वा की तृप्ति के लिये। जिस प्राणी को काटा जाता है, उस प्राणी का आर्तनाद उस माँस खाने वाले के चेहरे पर लिखा रहता है। मेरे कहने का तात्पर्य सारे मानव समाज से है, आप अपने ऊपर न ले लीजियेगा।

जैसे कोई व्यक्ति मुर्गा खाता है, तो मुर्गे को काटा जाता है। बेचारा कितना चीखता है? हमारे पैरों में जब काँटा चुभता है तो हम दर्द से कराहते हैं, मुर्गों की गर्दन काटी जाती है, बकरों की गर्दन काटी जाती है और

परिणाम! उन प्राणियों की हड्डी को, माँस को मनुष्य चूसता है। जैसे कुत्ता हड्डी चूसता है, उसी प्रकार माँसाहारी व्यक्ति भी तो चूसता है। मछली खाने वाले मछलियों के काँटों को चूसते हैं, उनको उसी में स्वाद आ रहा है। इन प्राणियों की मूक हिंसा इस सृष्टि को कहाँ ले जायेगी?

लोग कहते हैं कि परमात्मा बहुत कठोर है। वह भूकम्प ला देता है, अनावृष्टि कर देता है, बाढ़ ला देता है। किन्तु मनुष्य यह नहीं सोचता है कि अपनी तृष्णाओं की पूर्ति के लिये तू कितने पाप कर रहा है?

आप इतनी सी बात समझ लीजिये कि जिस दिन युधिष्ठिर झूठ बोलते हैं, उस दिन उनका रथ जमीन पर चलने लगा, अन्यथा जमीन से दो अँगुल ऊपर चला करता था। उसी झूठ के परिणाम स्वरूप, हिमालय पर

चलते समय उनके पाँव का अँगूठा भी गल गया था। यदि युधिष्ठिर ने झूठ नहीं बोला होता, तो हिमालय के बर्फ में वह शक्ति नहीं थी जो धर्मराज युधिष्ठिर के पैर के अँगूठे को गला सकती। शेष चारों भाई बर्फ में गल गये, लेकिन युधिष्ठिर का शरीर इसलिये नहीं गला क्योंकि उन्होंने आजीवन धर्म का पालन किया था।

इसलिये पाँच यमों में पहली वस्तु है अहिंसा। एक और बात आती है कि क्या संसार से सारे अस्त्र-शस्त्र समाप्त कर दिये जायें? उत्तर मिलेगा, नहीं। सबकी प्रवृत्ति एक समान नहीं होती। यदि भारत की सीमा पर जितने सैनिक हैं, सबको हटा दिया जाये, तो पहले लगेगा कि हिंसा रुक जायेगी, किन्तु हिंसा नहीं रुकेगी। सीमा के उस पार रहने वाले क्रूर व्यक्ति हैं। वे इस देश में घुस आयेंगे और हमारे देश की सेना में जो ग्यारह लाख

सैनिक हैं, हो सकता है कि उनके साथ ग्यारह करोड़ की भी हिंसा कर दें। इसलिये हिंसा को रोकने के लिये अस्त्र-शस्त्रों का विधान बनाया गया है।

आप देखेंगे कि भगवान शिव के हाथ में भी त्रिशूल है, योगेश्वर श्री कृष्ण के हाथ में सुदर्शन चक्र है, मर्यादा पुरुषोत्तम राम के हाथ में भी धनुष है, भगवान विष्णु के हाथ में गदा और चक्र है, सब कुछ है। ऐसा कोई भी देवी-देवता नहीं मिलेगा, जिसके हाथों में अस्त्र-शस्त्र न हों। क्यों? इसलिये कि ये हिंसा को रोकना चाहते हैं। अस्त्र-शस्त्र धारण करने का आशय हिंसा करना नहीं होता। वह शक्ति का प्रतीक होता है। शक्ति द्वारा क्रूर शक्तियों का दमन किया जाता है। शान्ति का दीपक तो तभी जलेगा, जब आसुरी हवा के झोंके उसको न लगे। यदि जोर की हवा बहे, तो शान्ति का दीपक भी बुझ

जायेगा। संसार में अहिंसा की मर्यादा हो, इसलिये महापुरुषों ने शस्त्र धारण किये हैं।

किसी भी देवी-देवता को हिंसक नहीं कहा जाता, शंकर जी को हिंसक नहीं कहा जा सकता, राम और कृष्ण को हिंसक नहीं कहा जा सकता। यद्यपि इन्होंने लाखों राक्षसों का संहार किया, किन्तु किसी चींटी तक को नहीं मारा। यह याद रखिये, श्री राम और श्री कृष्ण ने कहीं वन में किसी शाकाहारी प्राणी का वध नहीं किया है। राम के बारे में तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका आदि ग्रन्थों में लिखा है कि राम की कुटिया में हिरण आकर बैठा करते थे।

यह भी ध्यान रखिये कि मारीच हिरण के भेष में नहीं आया था। यह भ्रम है। लोग यह मान बैठे हैं कि मारीच हिरण के भेष में आया था और राम ने उसको मार

दिया, इसलिये हमें भी शिकार करने में कोई दोष नहीं है।
वाल्मीकी रामायण में लिखा है—

तप्त जिह्वो महाद्रष्टो महाकायो महाबलः।

विचचारदण्डकारण्यं मांसभक्षो महामृगः॥

वह मारीच लपलपाती जिह्वा वाला, भयंकर जबड़े वाला था। सिंह का जबड़ा भयंकर होता है और हिरण का जबड़ा बहुत छोटा होता है। अधिकतर शाकाहारी प्राणियों का जबड़ा छोटा होता है। महाकायो अर्थात् भयानक शरीर वाला, माँस का भक्षण करने वाला। हिरण कभी माँस नहीं खाता। गाय, हिरण, खरगोश आदि मर सकते हैं, लेकिन कभी माँस नहीं खा सकते।

मृग का अर्थ सिंह भी होता है। मारीच सिंह के भेष में आया था, जिसकी जिह्वा लपलपा रही थी। मारीच

सीता का अपहरण करना चाहता था, इसलिये राम ने उस पर बाण का प्रहार किया। यदि हिरण होता, तो राम कभी भी उस पर अस्त्र नहीं उठा सकते थे। राजा के लिये मनुस्मृति में यह आदेश है कि जो प्राणी मनुष्यों की हिंसा कर सकते हों, उनको वह मार सकता है।

याद रखिये, अहिंसा की व्याख्या बहुत जटिल है। आपके सामने कसाई एक गाय को लेकर जा रहा है। अहिंसा का सिद्धान्त कहता है कि गाय को बचाना चाहिये। सत्य का सिद्धान्त कहता है कि सत्य बोलना चाहिये। गाय कसाई के हाथ से छूट चुकी है। आप क्या बोलेंगे?

अहिंसा के बाद सत्य की व्याख्या आयेगी। उसी के साथ इसको जोड़कर देखिये। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि अहिंसा की व्याख्या हम किस प्रकार से

करें? यदि १०० चोर, डकैत, या राष्ट्रविरोधी व्यक्तियों को आप मारते हैं तो उतनी बड़ी हिंसा नहीं होती, जितनी एक योगी, तपस्वी, या परमहंस को एक चाँटा मारने से होती है। एक ऋषि को यदि कोई पत्थर मारता है, तो सारी दुनिया उसे बुरा कहेगी। लेकिन वही व्यक्ति १० आतंकवादियों को मारता है, तो दुनिया उसको बहुत अच्छा कहती है कि कितना बहादुर पुरुष है।

चींटियों का झुण्ड जा रहा है, आपके हाथ से भूल से पत्थर गिर गया, सारी चींटियाँ मर गईं, तो वह भी हिंसा हुई। लेकिन आप समाज की दृष्टि में, धर्म की दृष्टि में महापापी नहीं कहलायेंगे। यदि आपने तपस्या करने वाले महात्मा की टांग तोड़ दी, तो कोई भी आपको अच्छा नहीं कहेगा। चींटी के अन्दर भी वही जीव है, महात्मा के अन्दर भी वही जीव है, लेकिन पीड़ा का स्तर

देखा जाता है।

आप किसी को जान-बूझकर काँटा चुभो देते हैं, तो वह पाप है। लेकिन यदि आप डॉक्टर हैं, आप अपने रोगी की सर्जरी करते हैं, ऑपरेशन करते हैं, उसके घावों को काटते हैं, तो उसको पाप नहीं माना जायेगा क्योंकि आपने उसको सुन्न कर रखा है और आपके ऑपरेशन का उद्देश्य उसको कष्टों से मुक्ति दिलाना है।

मान लीजिये कि एक बछड़ा है, उसके शरीर में कीड़े ही कीड़े पड़ गये हैं। किसी भी औषधि से उसका ईलाज नहीं हो सकता। तड़प रहा है। उसके लिये क्या चिकित्सा है? हिंसा क्या कहती है? धर्म का सिद्धान्त क्या कहता है? उसको कोई ऐसा पदार्थ दिया जाये, जिससे वह शरीर छोड़ दे, यही उसके लिये अहिंसा है, क्योंकि मरने से ज्यादा कष्ट उसको तड़प-तड़प कर

जीने में हो रहा है।

इसलिये देश, काल, और परिस्थिति के अनुसार अहिंसा की व्याख्या होगी, सत्य की व्याख्या होगी, अस्तेय की व्याख्या होगी, और चितवनि की राह पर चलने वाले से यही अपेक्षा की जाती है कि वे अपनी वाणी को सम्यक बनायें।

सम्यक वाक् अर्थात् सत्य बोलें, प्रिय बोलें, हितकारी बोलें, कभी सपने में भी झूठ न बोलें, मन में भी किसी के लिये ऐसा कटु वचन न बोलें जिससे उसका हृदय मर्माहित हो। यदि आप बहुत बड़े ज्ञानी हैं, और आपको अपनी वाणी पर संयम न हो, तो क्या होगा? आपके कटु शब्द उसके हृदय को पीड़ा देंगे।

अहिंसा का लाभ क्या होता है? "अहिंसा

प्रतिष्ठायाम् तत्सन्निधौ वैरत्यागः।" अहिंसा में स्थित हो जायेंगे, तो आपका किसी भी प्राणी से वैर नहीं रहेगा। आप कीड़े-मकोड़ों को न मारिये। आपके पास वह सिद्धि आ जायेगी कि सिंह भी आपके पास आयेगा, तो आप पर हमला नहीं करेगा।

एक सच्ची घटना आपको बताता हूँ। योगेश्वरानन्द जी हिमालय पर साधनारत थे। एक बार किसी महात्मा के पास पहुँचे। यह काल्पनिक बात नहीं है, सच्ची घटना है, जो मैं बता रहा हूँ। मेरे साथ जो घटी है, मैं वह नहीं बता रहा हूँ, औरों के साथ जो घटित हुई है, वह बता रहा हूँ।

महात्मा जी के पास एक बाघ पानी पी रहा था। जैसे ही योगेश्वरानन्द जी पानी भरने के लिये गये, वह गुर्रा उठा। महात्मा जी कहते हैं, चुप हो जा बेटा, चुप हो

जा। वह शान्त हो गया और सिर झुकाकर चला गया।

योगेश्वरानन्द जी कहते हैं कि स्वामी जी! मुझे देखकर यह बाघ गुर्रा उठा और आपके पास पालतू कुत्ते की तरह बैठा हुआ पानी पी रहा था। आपने कहा कि तू चला जा यहाँ से, तो दुम हिलाकर वह चला भी गया। इसका क्या कारण है? महात्मा जी ने कहा, "योगेश्वरानन्द जी! आपमें अभी अहिंसा की सिद्धि नहीं हुई है।"

बात सच थी। योगेश्वरानन्द जी एक बार साधना के लिये जा रहे थे। रास्ते में एक बाघ सामने आ गया। उनके साथ एक और महात्मा थे। दोनों आमने-सामने कुछ फीट की दूरी पर खड़े थे। वह हमला करना चाहता था। इनके पास डण्डा था। उन्होंने डण्डा उसके मुँह में डाल दिया और बेचारा बाघ तड़प-तड़पकर मर गया।

यद्यपि इन्होंने बाघ मारा था, किन्तु जान-बूझकर नहीं मारा था, आत्मरक्षा के लिये मारा था, इसलिये वह हिंसा का दोष उनके ऊपर था, जिसके कारण बाघ गुर्रा उठा था।

आप अपने मन में किसी के प्रति हिंसा की भावना न रखिये, वाणी में न रखिये, और आपके आचरण में तो कभी भी नहीं होनी चाहिये। किन्तु मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आपके सामने कोई अबला की इज्जत लूट रहा हो, कोई आतंकवादी निहत्थों को गोलियों से भुन रहा हो, और आप हट्टे-कट्टे होकर भी चुपचाप देखते रहें, तो इसको कायरता कहेंगे, इसको अहिंसा नहीं कहेंगे।

पापी के चरणों पर, झुक जाना भारी हिंसा है।

पापी का शीश कुचल देना, हिंसा नहीं अहिंसा है।

यह बात तो एक कवि ने कही है। कल्पना कीजिये, आप लादेन के दोस्त हो गये, आप उसको सिज़्दा बजा रहे हैं। भले ही आप किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं कर रहे हैं, लेकिन आप अन्याय का समर्थन कर रहे हैं, तो आप भी हिंसा का समर्थन कर रहे हैं। कसाई दिन-रात गाय को काट रहा है, और आप कुछ विरोध नहीं कर रहे हैं। द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह की तरह मौन धारण किये हैं, तो आप हिंसा को बढ़ावा दे रहे हैं। उस पाप में आप भी शामिल हैं।

यदि आप अस्त्र-शस्त्र नहीं उठा सकते, तो किसी न किसी रूप से विरोध तो कर सकते हैं। हिंसा और अहिंसा की बहुत सूक्ष्म व्याख्या है। मैं ज्यादा विस्तार से तो नहीं कहूँगा क्योंकि हमारा लक्ष्य है चितवनि। एक चितवनि करने वाले सुन्दरसाथ को यम-नियमों का

किस तरह से पालन करना है, मुझे संक्षेप में प्रकाश डालना है। अभी तो २० मिनट इसी में लग गये।

सत्य

दूसरी चीज है सत्य। सत्य का पालन करने से क्या लाभ होगा?

सत्य प्रतिष्ठायाम् क्रियाफल आश्रयित्वम्।

योगदर्शन में लिखा है कि यदि आप मन, वाणी, और कर्म से सत्य का पालन करते हैं, तो आप जो कहेंगे, वह अमोघ हो जायेगा। आपकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होगी। आप सोचते हैं कि झूठ बोलकर हम लाभ कमा लेंगे। व्यापारी कहता है कि बिना झूठ बोले व्यापार नहीं हो सकता। नौकरी करने वाला कहेगा कि बिना झूठ बोले हमें छुट्टी नहीं मिल सकती। किसान कहेगा कि

बिना झूठ बोले हमें खेती में रास नहीं आता। यह कोरा भ्रम है। जिस दिन हर व्यापारी झूठ बोलने लगेगा, उस दिन पूरा व्यापार ठप्प हो जायेगा। व्यापार भी विश्वास पर चला करता है।

सत्येन उत्तभित्ता भूमिः।

सारी पृथ्वी किस पर टिकी है? सत्य पर। जिस दिन सत्य का हास हो जायेगा, उस दिन ब्रह्माण्ड का प्रलय हो जायेगा। सत्य ने ही सृष्टि को धारण किया है। सत्य ही धर्म है और सत्य ही परमात्मा है। परमात्मा उसे कहते हैं जो सत्य हो, चेतन हो, और आनन्दमय हो।

यदि सत्य का परित्याग करके आपको अर्थसंग्रह करने को मिलता है, तो समझिये कि वह अर्थ ज्यादा समय तक आपके काम में आने वाला नहीं है। लेकिन जो

अर्थ धर्म के अनुकूल प्राप्त होता है, वही अर्थ आपके पास सुरक्षित रहेगा। इसलिये भारतीय संस्कृति में सबसे पहले धर्म को प्राथमिकता दी गई।

धर्म है तो अर्थ है। अधर्म से अर्जित किया हुआ अर्थ, अर्थ नहीं, अनर्थ है, और जैसे कहा जाता है कि पानी का पैसा पानी में ही चला जाता है, उसी तरह से अधर्म से अर्जित किया हुआ अर्थ यानी धन आपके उपभोग में नहीं आ सकता।

अभी मैंने कहा, जो आपके मन में है यदि वही वाणी में लाते हैं, और जो वाणी से कहते हैं वही आचरण में लाते हैं, तो उसको कहते हैं सत्य। वह सत्य नहीं है, जिसमें छल भरा हो। जैसे, युधिष्ठिर ने सच ही कहा था कि भीम ने अश्वत्थामा को मारा है, किन्तु हाथी भी कहा था, क्योंकि उस दिन द्रोणाचार्य ने तय कर लिया था कि

मुझे पाण्डवों की सेना को समाप्त कर देना है।

श्री कृष्ण जी ने देखा कि द्रोणाचार्य के वेग को तो रोका नहीं जा सकता। शिष्य होने के कारण अर्जुन सच्चे मन से लड़ नहीं रहा है। उन्होंने भीम से कहा कि अश्वत्थामा को मारो और द्रोणाचार्य को किसी तरह युद्ध से रोको, तभी पाण्डव सेना की रक्षा हो पाना सम्भव है। युधिष्ठिर को समझाया कि देखो युधिष्ठिर! आज द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा है। द्रुपद को मार डाला, विराट को मार डाला। यदि ऐसे ही द्रोणाचार्य युद्ध करते रहे, तो आज ही सारी पाण्डव सेना मारी जायेगी।

तुम्हे लड़ना है दुर्योधन के विरुद्ध, अन्याय के विरुद्ध। इन लाखों व्यक्तियों को मरने से बचाने के लिये एक धर्म का आश्रय लो। एक द्रोणाचार्य मारे जाते हैं तो तुम्हारी लाखों की सेना बच जायेगी, यही धर्म है। श्री

कृष्ण जी की अपनी नीति है। उस नीति का पालन करने के लिये द्रोणाचार्य जी के सामने युधिष्ठिर ने कह दिया कि अश्वत्थामा मारा गया, किन्तु नर नहीं हाथी। परिणाम क्या हुआ?

द्रोणाचार्य ने उनकी बात पर विश्वास कर लिया, क्योंकि युधिष्ठिर स्वप्न में भी झूठ नहीं बोल सकते थे। सच तो बोला था, लेकिन उस सत्य में झूठ का आवरण था, एक छल था। इसलिये वह पूर्णतया सच नहीं हुआ। राष्ट्र की रक्षा के लिये भी आपको ऐसे कार्य करने पड़ सकते हैं। अपने स्वार्थ के लिये आप कभी झूठ न बोलिये, चाहे करोड़ों का नुकसान हो जाये, कुछ भी हो जाये, बदनामी हो जाये। लेकिन किसी के प्राण संकट में हैं, तो आपको कुछ दूसरा नियम लागू करना पड़ेगा।

इतिहास साक्षी है कि जब छत्रपति शिवाजी

औरंगजेब की कैद में थे, तो अपने पुत्र सम्भाजी के साथ वह मिठाई की टोकरी में छिपकर भागे थे। दक्षिण भारत के महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के घर पर उन्होंने अपने पुत्र सम्भाजी को रख दिया और अकेले छिपकर निकल गये। औरंगजेब के गुप्तचरों ने पता लगा लिया कि सम्भाजी उनका बेटा है।

अब ब्राह्मण के सामने प्रश्न यह था कि शरणागत की रक्षा करे या सत्य का पालन करे? अन्त में जब औरंगजेब के सैनिक सम्भाजी का पता लगाते-लगाते उस ब्राह्मण देवता के घर गये कि हमें पता चला है कि आपके यहाँ शिवाजी का पुत्र सम्भाजी ठहरा है, तो उस ब्राह्मण देवता ने बहुत तर्क-वितर्क किया।

एकान्त में अपनी पत्नी से भी बात की। पत्नी कहती है, "एक सम्भाजी मर जायेगा, तो मेरा क्या

नुकसान हो जायेगा? आपने जो जीवन भर सत्य का पालन किया है, उसकी मर्यादा को मत तोड़िये। यदि सम्भाजी पकड़ा भी जाता है, तो हमारी क्या हानि है? औरंगज़ेब हमें करोड़ों रुपये दे सकता है। हम मालामाल हो जायेंगे। हमारी गरीबी मिट जायेगी।"

उस ब्राह्मण देवता ने बहुत विचार किया और अन्त में यही निष्कर्ष निकाला कि शरणागत की रक्षा करना ही सत्य है, क्योंकि सत्य धर्म का अंग है। केवल वाणी का सत्य सत्य नहीं माना जाता। यदि हम धर्म का पालन करते हैं, तो वही सत्य है।

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म।

जो प्रकृष्ट सत्य है, वही ब्रह्म का स्वरूप है।

धर्म का एक अंग होता है, शरणागत की रक्षा

करना। जैसे एक गाय जा रही है। कसाई उसको पकड़ना चाहता है। कसाई आपसे पूछता है कि क्या उधर गाय गई? आप क्या उत्तर देंगे? या तो आप चुप हो जाइये या बोल दीजिये कि हमें मालूम नहीं। लेकिन जिधर गाय गई है, वह मत कहिये।

आपको कसाई से मित्रता जोड़ने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह अत्याचारी है। अत्याचारी व्यक्ति सारी पृथ्वी का सम्राट हो, तो भी कभी उसको सहयोग नहीं देना चाहिये, और भले ही आप अकेले हैं तथा संसार अधर्म की राह पर है, तो संसार से कभी डरने की आवश्यकता नहीं है।

डरता कौन है? जो कायर है। जो योगी होता है, जिसको परमात्मा पर आस्था होती है, वह क्यों डरे।

सिकन्दर सैनिकों को मार सकता था, वह वीर था, किन्तु उसके साथ कायरता भी जुड़ी हुई थी। नादिरशाह क्रूर था, लेकिन कायर भी था।

एक बार, एक तान्त्रिक ने शंकराचार्य जी से कहा, "आप कहते हैं कि ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या, तो मुझे एक सिद्धि करनी है और सिद्धि के लिये मुझे आपका शरीर चाहिये। क्योंकि आत्म-दृष्टि में तो आपके लिये शरीर का कोई महत्व नहीं है, यह स्वप्नवत् है।"

शंकराचार्य जी ने कह दिया, "अच्छी बात है, रात के अन्धेरे में जब मेरे शिष्यगण सोये हों, तो मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा। तुम मेरी गर्दन काटकर अपनी सिद्धि कर लेना।"

ऐसा संसार में कोई वीर व्यक्ति नहीं हुआ है, जो

रात के अन्धेरे में एक कापालिक के पास चला जाये कि "यह लो मेरी गर्दन, और अपनी सिद्धि कर लो।" शंकराचार्य छिपकर चले जाते हैं। उनका हृदय कितना वीर है। वह चींटी भी नहीं मार सकते, किन्तु उनको मौत से डर नहीं है, क्योंकि उन्हें आत्मज्ञान है।

नादिरशाह जीवन भर खून की नदियाँ बहाता रहा, लेकिन वह भी मौत से डरता था। सिकन्दर के पास जब मौत आती है, वह काँप उठता है कि क्या मैं मर जाऊँगा। मृत्यु से न तो ब्रह्मज्ञानी डरेगा और न कभी आत्मज्ञानी डरेगा। इसलिये जब आप सत्य का पालन करते हैं, तो यह चिन्ता मत कीजिये कि कसाई को रास्ता दिखाना जरूरी है।

हमारे देश में यही हुआ है। सत्ता का समर्थन अधिकतर लोगों ने किया है, सत्य का समर्थन नहीं

किया है। "सत्यमेव जयते न अनृतं, सत्येन पन्था विततो देवयानः।" सत्य की विजय होती है, असत्य की नहीं।

यदि आप चितवनि करते हैं, तो आप सर्वशक्तिमान परब्रह्म से प्रेम करते हैं, ऐसी अवस्था में सारे संसार के चक्रवर्ती सम्राट से भी आपको डरने की आवश्यकता नहीं है। मृत्यु से भी आप न डरिये।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,

न्यायात् पथं प्रविचलन्ति पदं न धीराः।

मृत्यु आज हो या युगों के बाद, धीर व्यक्ति कभी मृत्यु से नहीं डरते, धर्म से विचलित नहीं होते, क्योंकि धर्म ही सृष्टि को धारण कर रहा है। धर्म नहीं तो कुछ नहीं, और यदि धर्म है तो सब कुछ है। जब सृष्टि नहीं थी तब भी धर्म था, जब सृष्टि नहीं रहेगी तब भी धर्म रहेगा।

लेकिन यदि आपने धर्म के आदेशों की अवहेलना कर दी, तो याद रखिये कि आपके पास कुछ भी नहीं बचा।

हम सोचते हैं कि अमुक व्यक्ति इतना प्रभावशाली है, वह मुझसे नाराज हो जायेगा तो क्या होगा? मृत्यु हमसे नाराज होकर क्या करेगी? शरीर को ही तो छुड़ा सकती है, आत्मा को तो नहीं मार सकती।

आप देखेंगे कि स्वतन्त्रता की लड़ाई में गुरुकुलों से निकले हुये विद्यार्थी वेदों के मन्त्रों का गायन करते हुये हँसते-हँसते फाँसी का फन्दा अपने गले में डाल लेते थे। जल्लाद आश्चर्यचकित रह जाता था कि जिस मौत को देखकर मैं डर जाता हूँ, बड़े-बड़े डाकू डर जाते हैं, ये गुरुकुल के छात्र अपने हाथों से अपने गले में फाँसी का फन्दा डाल रहे हैं। इसलिये, धर्म की रक्षा कीजिये, सत्य की रक्षा कीजिये, संसार से कभी भी प्रभावित होने की

आवश्यकता नहीं है कि मेरी हानि हो जायेगी।

यदि कसाई किसी गाय को लेकर जा रहा हो, किसी निर्दोष प्राणी की कोई अत्याचारी व्यक्ति हिंसा कर रहा है, तो आप उसका किसी न किसी रूप में विरोध कीजिये। आपके पास अस्त्र-शस्त्र चलाने की कला नहीं है, तो आप वाणी से तो विरोध कीजिये। वाणी से भी विरोध नहीं कर सकते, तो सहमति मत जताइये। यदि आपने सहमति जता दी, तो निश्चित है कि आप पाप में भागी हो गये।

जब द्रौपदी का चीरहरण हो रहा था, उस समय यदि भीष्म पितामह और द्रोणाचार्य खड़े हो जाते कि नहीं दुर्योधन! भरी सभा के बीच में एक अबला के चीरहरण का तुम्हें अधिकार नहीं है, तो दुर्योधन की इतनी हिम्मत नहीं पड़ती, लेकिन दुर्योधन का अन्न खाने के कारण

उनकी बुद्धि कलुषित हो गई थी। इसी अनर्थ के कारण भीष्म पितामह को भी दुःख है, द्रोणाचार्य को भी दुःख है, कृपाचार्य को भी दुःख है। लेकिन तीनों में इतना आत्मबल नहीं है कि दुर्योधन के सामने मुख खोल सकें।

परिणाम यह हुआ कि भीष्म पितामह को भी उसी पाप के कारण बाणों की शैय्या पर लेटना पड़ा और द्रोणाचार्य की भी गर्दन काटी गई। इसलिये कहा गया है—

धर्मो रक्षति रक्षितः।

जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म छतरी के समान उसकी रक्षा करता है।

जब आप चितवनि करते हैं, राज जी को अपने हृदय में बसाते हैं, तो यह याद रखिये कि सर्वशक्तिमान अक्षरातीत के सत् अंग अक्षर ब्रह्म के एक संकेत से

करोड़ों लोक एक पल में बनते हैं और लय को प्राप्त हो जाते हैं। तो इस पृथ्वी का स्वामी, चाहे वह भारत का राष्ट्रपति हो, या अमेरिका का राष्ट्रपति हो, चाहे सारी पृथ्वी के जितने भी राष्ट्रपति हैं, सभी आपसे नाराज भी हो जायेंगे तो क्या बिगाड़ लेंगे?

आपने अक्षरातीत को अपने हृदय में बसा रखा है, तो इस संसार में किसी से भी डरने की कोई आवश्यकता नहीं है। अधर्म से डरिये। धर्म का आचरण कीजिये। शक्ति से नहीं, केवल अधर्म के आचरण से डरिये।

शक्ति से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि जिसके पास सत्य नहीं है, धर्म नहीं है, वह सबसे अधिक असहाय प्राणी है। सारी पृथ्वी का धन किसी के पास है तथा सारे संसार की सेना भी उसके

साथ है, यदि वह धर्म का उल्लंघन करता है तो उसे शक्तिशाली न समझिये।

परमात्मा सत्य है, तो सत्य परमात्मा ही आपकी रक्षा करेगा। बाह्य शक्तियों से भयभीत होना कायरता है, और ९९ प्रतिशत लोग इसी का अनुसरण करते हैं। इसलिये, जिसके हृदय में प्राणेश्वर अक्षरातीत युगल स्वरूप बसा करते हैं, उनको किसी भी अत्याचारी से डरने की आवश्यकता नहीं है।

हाँ, आप एक चींटी को भी न मारिये, आप इतने सहनशील बन जाइये कि आपको कोई पत्थर मार रहा हो, तो भी आपको क्रोध न आए। गौतम बुद्ध ने संसार की गालियाँ झेलीं, महावीर स्वामी ने झेलीं।

एक बार ऋषि दयानन्द गंगा के किनारे बैठे हुये थे,

छोटे-छोटे लड़के उनके ऊपर बालू फेंकने लगे। और उस महर्षि को धन्यवाद दीजिये। उन ऋषि ने एक शब्द भी नहीं बोला कि बच्चों! तुम मुझे बालू के गोलों से क्यों मार रहे हो? कितना महान हृदय है उनका? लेकिन वही दयानन्द, जो बच्चों की मार से क्रोधित नहीं हुआ, वायसराय ने जब उनसे पूछा कि आपकी क्या इच्छा है? उसके मुँह पर बोल दिया कि तुम इस देश को छोड़कर चले जाओ।

एक बार वे एक स्टेशन पर टहल रहे थे, वहाँ एक अंग्रेज कलेक्टर था, जो उस ट्रेन से यात्रा करना चाह रहा था। वह अपनी पत्नी के साथ था। दयानन्द प्रायः नंग-धड़ंग रहा करते थे। केवल कमर में लंगोट रहती थी, थोड़ा कपड़ा ओढ़ लिया करते थे। उस अंग्रेज कलेक्टर की पत्नी कहती है कि यह नंगा हिन्दुस्तानी

क्यों प्लेटफार्म पर घूम रहा है? इसको बाहर निकलवा दो।

आपको मालूम है कि मनुष्य परमात्मा के आदेश को ठुकरा सकता है, लेकिन पत्नी के आदेश को ठुकराना उसके लिये कठिन है। कलक्टर ने स्टेशन मास्टर, जो हिन्दुस्तानी था, से कहा कि यह महात्मा जो प्लेटफार्म पर टहल रहा है, इसको बाहर निकलवा दो। स्टेशन मास्टर जानता था कि यह तो स्वामी दयानन्द हैं। वह दयानन्द जी के पास गया और हाथ जोड़कर कहा, "स्वामी जी! आप प्लेटफार्म से थोड़ा दूर चले जाइये।"

दयानन्द जी को सारा मामला समझ में आ गया। उन्होंने हँसते हुए कहा, "जाकर उस अंग्रेज से कह दो कि हम उस युग के मानव हैं, जब आदम और हव्वा अदन के बाग में नंगे घूमा करते थे।"

स्टेशन मास्टर ने जाकर अंग्रेज से ऐसा ही कह दिया। अंग्रेज समझ गया कि अंग्रेजी हुकूमत में मुझे इस तरह के शब्द कहने वाला दयानन्द के सिवाय हिन्दुस्तान में कोई भी व्यक्ति नहीं है। और वह व्यक्ति आया, दयानन्द जी से हाथ मिलाया, सम्मानित किया, और पहले उनको ट्रेन में बिठाकर स्वयं बाद में ट्रेन से गया।

वीरभोग्या वसुन्धरा।

पृथ्वी का उपभोग कौन करते हैं? वीर। कायरों के लिये यह पृथ्वी नहीं है। वीर का आशय वह वीर नहीं, जो किसी की हिंसा कर दे। नादिरशाह को मैं वीर नहीं कहता। अहमदशाह अब्दाली वीर नहीं है। औरंगज़ेब वीर नहीं है। क्योंकि ये मृत्यु से डरे हुये प्राणी हैं। वीर वह है, जो सामने मृत्यु को देखकर भी हँसता आ रहा हो। उससे बड़ा वीर कोई नहीं है। क्रूरतापूर्वक किसी को मार देना,

यह सच्चे वीर का लक्षण नहीं है। इसलिये यदि आप सत्य का पालन करेंगे, तो परमात्मा आपके साथ है।

योगदर्शन में लिखा है—

सत्य प्रतिष्ठायाम् क्रियाफल आश्रयित्वम्।

सत्य में प्रतिष्ठा हो जाये, तो जो आप कहेंगे, वह अवश्य हो सत्य जायेगा। हाँ, लेकिन यदि आप सत्य बोलते हैं, तो किसी को श्राप मत दिया कीजिये। आपको शक्ति दी गई है दूसरों का भला करने के लिये, किसी का बुरा करने के लिये नहीं। महानता यही होती है।

देखिये, इस पृथ्वी पर अरबों मनुष्यों की जनसंख्या है, और वह सर्वशक्तिमान सच्चिदानन्द परब्रह्म कितना महान है। पाँच अरब से अधिक की जनसंख्या में, मैं समझता हूँ, तीन अरब तो आस्तिक होंगे, शेष दो अरब

नास्तिक ही होंगे, और आस्तिकों में भी एक करोड़ ही सच्चे आस्तिक होंगे, शेष दो अरब निन्यानबे करोड़ दिखावटी आस्तिक हैं।

जब उनकी कामना पूरी होती है, तो महिमा के गीत गाते हैं, कामना पूरी नहीं होती है, तो तरह-तरह की जली-कटी बातें सुनाते हैं। परमात्मा को आप गाली दीजिये, परमात्मा प्रकट होकर नहीं कहेगा कि "नाचीज बन्दे! तू मुझे गाली क्यों दे रहा है?" वह कितना महान है? सब कुछ सहन करता है, क्योंकि क्षमा उसका गुण है। उसी तरह, आप चितवनि की राह पर चलते हुये संसार के द्वन्द्वों को सहन कीजिये, हमेशा सत्य ही बोलिये, सत्य ही आचरण में लाइये। यह न सोचिये कि इसका परिणाम क्या होगा।

यदि आपके पास सत्य है, तो वही सत्य कवच

बनकर आपकी रक्षा करेगा, क्योंकि जो धर्म की रक्षा करता है, धर्म छतरी के समान उसकी रक्षा करता है। जो व्यक्ति समाज, राष्ट्र, और धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करता है, उसको विनाश से बचाने वाला कोई नहीं। इसलिये महाभारत के युद्ध के पश्चात् भीष्म पितामह ने युधिष्ठिर से कहा, "युधिष्ठिर! तुम्हारी विजय इसलिये हुई है क्योंकि तुमने सत्य और धर्म का पालन किया है।"

यतो धर्मः ततो जयः।

जहाँ धर्म है, वहीं विजय है। जहाँ धर्म है, वहीं कृष्ण हैं, और कृष्ण की संगति के कारण ही तुम्हारी विजय हुई है।

पाण्डवों के पास सात अक्षौहिणी सेना है। कौरवों के पास ग्यारह अक्षौहिणी सेना है। डेढ़ गुणा सेना है। भीष्म

पितामह को इच्छामृत्यु का वरदान है, द्रोणाचार्य के हाथ में जब तक धनुष है, कर्ण के हाथ में जब तक धनुष है, कोई मार नहीं सकता। उसमें भी अश्वत्थामा, कृपाचार्य आज भी अमर हैं। इन चारों से सुरक्षित कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना काल को प्राप्त हो गई और कम संख्या में होते हुये भी पाण्डव विजयी हुये क्योंकि उनका सारथी धर्म का स्वरूप था। जिधर धर्म होगा, उधर ही विजय होगी, यह बात आप गाँठ बाँध लीजिये।

एक बार कर्ण ने भीष्म पितामह से पूछा था, "पितामह! मैं हमेशा अर्जुन से युद्ध विद्या में आगे हूँ। मैं सबको जीत चुका हूँ, लेकिन अर्जुन को क्यों नहीं जीत पाया?"

भीष्म पितामह ने कहा, "कर्ण! तुम दुर्योधन का साथ छोड़ दो, और अर्जुन जब तक अधर्म का आचरण

नहीं करता, तब तक उसके विरोध में अस्त्र न उठाओ। तब तुम अर्जुन को जीत लोगे। लेकिन यदि तुम अन्याय का समर्थन करके, दुर्योधन का समर्थन करके अर्जुन जैसे धर्मात्मा के खिलाफ युद्ध में खड़े होगे, तो कभी भी तुम्हारी विजय नहीं होगी।"

अस्तेय

यम का तीसरा अंग है अस्तेय। चोरी न करने को अस्तेय कहते हैं। जो भी सरकार आती है, झूठे, लुभावने वायदे करती है कि हम गरीबी मिटा देंगे। कोई भी सरकार या कोई भी व्यक्ति तब तक गरीबी नहीं मिटा सकता, जब तक इस देश के लोग चोरी करना नहीं छोड़ देंगे। आप जानते ही हैं कि मन्त्री लोग कितने धर्मात्मा होते हैं। अधिकतर मन्त्रियों के विदेशों में पैसे जमा रहते हैं।

इस देश के सब्जी बेचने वाले से लेकर मन्त्री तक, चाहे वे केन्द्र के बड़े-बड़े मन्त्री हों या प्रान्त के मन्त्री हों, बड़े-बड़े अधिकारी हों, मैं समझता हूँ अधिकतर लोगों में किसी न किसी रूप में चोरी की प्रवृत्ति है। जब तक इस देश के लोग चोरी करना नहीं छोड़ेंगे, तब तक यह देश कभी भी धनवान नहीं बन सकता। इसलिये योगदर्शन में सूत्र लिखा है—

अस्तेय प्रतिष्ठायाम् सर्वरत्नोपस्थानम्।

यदि मनुष्य चोरी के कर्मों का परित्याग कर दे, तो उसे सभी रत्नों की प्राप्ति स्वतः ही हो जायेगी।

चोरी करना क्या है? मैं एक दृष्टान्त देता हूँ—रामप्रसाद बिस्मिल ट्रेन में यात्रा कर रहे थे। उनके पास तृतीय श्रेणी की टिकट थी और उनके दोस्त द्वितीय

श्रेणी में यात्रा कर रहे थे। उनके दोस्तों ने उन्हें किसी कारणवश द्वितीय श्रेणी में बुला लिया। जब बातचीत हो रही थी, तो अचानक ही बिस्मिल घबराने लगे कि मेरे पास तो तृतीय श्रेणी की टिकट है और मैं द्वितीय श्रेणी में यात्रा कर रहा हूँ। उनके दोस्त हँसते हुये कहने लगे, "क्या आफत आ गई? यहाँ पर कोई जाँच करने वाला थोड़े ही है?"

बिस्मिल ने उनकी बात नहीं मानी और अगले स्टेशन पर उतरकर अपने डिब्बे में चले गये। जब बड़ा स्टेशन आया, तो उतरकर स्टेशन मास्टर के पास गये और बोले कि मैंने मजबूरीवश कुछ समय के लिये उस स्टेशन से इस स्टेशन तक द्वितीय श्रेणी में यात्रा की है और मेरे पास तृतीय श्रेणी की टिकट है। उसका जो भी जुर्माना हो, मुझसे वसूल कर लीजिये। स्टेशन मास्टर ने

भावुक होकर कहा, "जिस देश में तुम्हारे जैसे बच्चे हैं, मुझे विश्वास है कि वे इस देश को एक दिन जरूर आजाद करा लेंगे।"

भारत से जब तक भ्रष्टाचार नहीं मिटेगा, लोग चोरी करना नहीं छोड़ेंगे, तब तक सम्पन्नता नहीं आ सकती है। दूध बेचने वाला पानी जरूर मिलाएगा, सब्जी बेचने वाला भी बेईमानी जरूर करेगा। इस देश में न तो शुद्ध दूध मिल सकता है, न शुद्ध पानी मिल सकता है।

भ्रष्टाचार में भारत बहुत आगे है, इसलिये गरीबी भी यहाँ पैर फैला रही है। याद रखिये, पौराणिक दृष्टि से भी सोचिये तो लक्ष्मी किसकी पत्नी हैं? विष्णु भगवान की। कबीर जी ने बहुत सरल भाषा में सारा सूत्र समझा दिया है, लेकिन यहाँ लोगों को समझ में नहीं आता।

पाप से लक्ष्मी घटे, कह गये सन्त कबीर।

जहाँ पाप होगा, झूठ होगा, दुराचार होगा, दुष्कर्म होगा, वहाँ पर लक्ष्मी कभी भी नहीं ठहर सकती। इस देश में माफियाओं की बाढ़ है, डकैतों की बाढ़ है, घूस खाने वाले अधिकारियों तथा विदेशों में पैसा जमा करने वाले मन्त्रियों की बाढ़ है, इसीलिये ज्ञानपीठ की तरफ से किसी मन्त्री को निमन्त्रण नहीं दिया जाता।

जो इस देश का पैसा लूटकर विदेशों में जमा करते हैं, वे चाहे कितने ही बड़े मन्त्री क्यों न हो, ज्ञानपीठ की दृष्टि में उनका कोई महत्व नहीं है। जो धार्मिक है, वही सबसे बड़ा है। जब तक सभी लोग चोरी करना नहीं छोड़ेंगे, तब तक इस देश के लोग कभी भी सम्पन्न नहीं हो सकते।

कुली और रिक्शेवाले भी चोरी करते हैं, वह भी बेईमानी करते हैं। याद रखिये, यदि कोई व्यक्ति गरीब है, तो वह क्यों गरीब है? कुली क्यों गरीब है? कोई यह नहीं सोचता कि वे जितना कमाते हैं, उसके अधिकतर भाग की शराब पी जाते हैं। कोई साधारण आदमी मिले, तो ज्यादा पैसा वसूल कर लेंगे। कोई बचा नहीं है।

जैसे सरोवर में बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है, वैसे ही चाहे अमीर हो या गरीब, सबके अन्दर चोरी की आदत पड़ी हुई है। जब सब लोग चोरी करना छोड़ देंगे, उस समय मैं दावे से कहता हूँ कि हिन्दुस्तान में एक भी गरीब व्यक्ति नहीं रहेगा। आपको अस्तेय का पालन करना है।

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

पराई स्त्री को माता के समान देखिये और दूसरे के धन को मिट्टी के समान देखिये। यह सबसे बड़ी चीज है। आप चितवनि की राह पर चल रहे हैं। आपके लिये एक करोड़, दो करोड़, दस करोड़ का कोई महत्व नहीं है। यह ठीक है कि आप सूखी रोटी खाते हैं, यह भी ठीक है कि आप घास-फूस की झोपड़ी में रहते हैं, यह भी सच है कि आपके पास अच्छे कपड़े भी नहीं हैं, लेकिन आपके पास अध्यात्म का तेज तो है। धर्म से बढ़कर धन नहीं है। धन आता है और चला जाता है, लेकिन दूसरे के धन पर कभी भी दृष्टि न करें। कबीर जी ने बहुत सरल बात कही है—

रूखा सूखा खाय के, ठण्डा पानी पीव।

देख पराई चूपड़ी, मत ललचावे जीव॥

किसी को धन मिला है, तो उसका उपभोग कर रहा है। हम दूसरों के धन को देखकर क्यों आकर्षित हों? ऐसा क्यों सोचें कि गलत तरीके से उसका धन ले लें? आपका सबसे बड़ा धन क्या है? इश्क, ईमान, शुक्र, गरीबी, और सब।

महामति कहे ईमान इस्क की, सुक्र गरीबी सबर।

इन विध रूहें दोस्ती धनी की, प्यार कर सके त्यों कर॥

जिसका प्रियतम अक्षरातीत हो, उससे बड़ा धनवान और कौन है। एक सुन्दरसाथ ने कोई भजन बना दिया था, जिसमें दीन शब्द लिखा है। आप अपने को दीन क्यों मानते हो? जैसे, आप जितने सुन्दरसाथ बैठे

हैं, मैं किसी से कहूँ कि आप दस लाख नहीं बीस लाख लीजिये, तो क्या आप अपनी दोनों आँखें, किडनी, और हृदय दे सकते हैं?

मैं समझता हूँ कि लगभग हर कोई मना कर देगा। यह तो एक सामान्य सी बात है। जिसका प्रियतम अक्षरातीत उस अक्षर ब्रह्म का भी प्रियतम है, जिसके संकेत से असंख्य ब्रह्माण्ड एक पल में बनते हैं और लय होते हैं, फिर आप क्यों कहते हैं कि हम गरीब हैं?

आप तो शहंशाहों के शहंशाह, ईश्वरों के ईश्वर उस अक्षरातीत की अर्धांगिनी हैं। माया का धन नहीं मिला, तो कोई चिन्ता की बात नहीं है। जिसका काम है, वह निभायेगा। आपके घर में शादी-विवाह होता है, पैसे की आवश्यकता पड़ती है, धैर्य न खोड़िये। आपने अपना हाथ राज जी के हाथों में पकड़ाया है। गीता वाले भी हमसे

अच्छे हैं, वे क्या कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

जो अनन्य भाव से मेरा चिन्तन करते हैं, उनका योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ। उनको कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। राज जी कहाँ रहते हैं? आप बता सकते हैं कि राज जी कहाँ रहते हैं?

हक नजीक सेहेरा से।

आपकी प्राण की नली से भी अधिक निकट रहते हैं। जब आप असहाय होते हैं, तो राज जी से कहते हैं, "हे राजजी! बहुत गरीबी आ गई है, क्या करें?" राज जी हँसते हैं कि इन नासमझ लोगों को मैं क्या समझाऊँ। इनके दिल में मैं स्वयं रहता हूँ। इनकी हर इच्छा मैं पूरी

करता हूँ। फिर भी ये कह रहे हैं कि हमारे पास कुछ नहीं है। आप कंगाल नहीं हैं। आप तो असंख्य कुबेरों के, असंख्य वैकुण्ठों के स्वामियों के भी स्वामी अक्षर के भी प्रियतम अक्षरातीत की अर्धांगिनी हैं, उनकी प्राणेश्वरी हैं।

आप अपने अन्दर दीन भावना मत लाइये। चितवनि करने वाला कभी निराश नहीं होना चाहिये। उसको यह ध्यान में रखना चाहिये कि मेरे हृदय में युगल स्वरूप बसते हैं। मेरा निवास उस परमधाम में है, जहाँ की एक नूर की कंकड़ी के सामने करोड़ों ब्रह्माण्ड राख हो जायेंगे। लेकिन जब मैं सुन्दरसाथ को निराश देखता हूँ और उनको भी गलत काम करते देखता हूँ, जैसा कि हमारे समाज में अधिकतर होता है, तो मुझे बहुत पीड़ा होती है। कई जगह पर ट्रस्टी गबन करते हैं, कई जगह पर महाराज गबन करते हैं। कितने दुःख की बात है?

औरों के धन को आप समझिये कि यह कंकड़-पत्थर है।

चाणक्य क्या था? एक ऐसा आचार्य, जो इस देश का अमात्य था। इस देश का सम्राट चन्द्रगुप्त जिसके चरणों में प्रतिदिन शीश झुकाता हो, वह चाणक्य इतना आदर्शवादी है कि राज्य से मिलने वाले खर्चे से व्यक्तिगत काम के लिये एक दीपक तक नहीं जला सकता। विद्यार्थियों को पढ़ाने से जो दक्षिणा मिलती है, उसका भी आधा दान कर देना और उसके बाद जो कुछ बचे, उससे रूखी-सूखी जौ की रोटी और गाय का दूध का आहार लेना।

चाणक्य रहता किसमें है? वह चाहता तो अपने लिये सोने के महल बनवा सकता है, लेकिन नहीं। घास-फूस की झोंपड़ी में उसका निवास है। पाटलिपुत्र में यदि सबसे साधारण गृह किसी का था, तो सम्पूर्ण

भारत के अमात्य चाणक्य का। जो भारत के सम्राट का गुरु है, भारत का सम्राट जिसके चरणों में अपना शीश झुकाता है, उसके पास सम्पत्ति के रूप में मात्र एक झोंपड़ी है। लेकिन जब चाणक्य बोलता है, तो चन्द्रगुप्त की आँखें मिलाने की हिम्मत नहीं होती। यह किसका तेज है? धर्म का तेज है।

आप भी समझिये कि आपके अन्दर राजश्यामा जी ने वास कर रखा है। आप प्रतिदिन उनको दिल में बसाते हैं। इसलिये अन्याय का, अनीति का, गबन का एक भी पैसा आप सहन मत कीजिये। दूसरे के धन को मिट्टी के समान समझिये। बिना किसी से पूछे किसी की कोई वस्तु का उपयोग न कीजिये।

लेकिन क्या होता है? मैं सभी स्थानों पर देखता हूँ, जहाँ भी कार्यक्रम होते हैं, तो लोग क्या करते हैं?

दूसरों का चप्पल उठायेंगे, दूसरों के जूते उठायेंगे, क्या रखा है? यदि हमें ट्रस्ट में पद मिल गया, तो गबन करेंगे। हम अपनी गरिमा को कितना कलंकित करते हैं? कहलाने को तो हम ब्रह्ममुनि हैं। दुनिया क्या कहेगी, "देखो! ये परमधाम की ब्रह्मात्माएँ हैं।"

यदि हमारे हाथ में बहुत अधिक धन का न्यौछावर आ जाये, तो उस सार्वजनिक सम्पत्ति का दुरुपयोग करने का हमें नैतिक अधिकार नहीं है। यह अस्तेय है। यदि आपके पास दस करोड़ रुपये आ गये, तो वह आपको अमानत के रूप में दिये गये हैं। वह आपका नहीं है, समाज का धन है, उसको समाज के कल्याण के लिये खर्च कीजिये। आप रूखा-सूखा भोजन कीजिये, इसमें आपकी महानता है, फटे-पुराने कपड़े पहनिये, तो आपकी महिमा कम नहीं होगी। किसी की महिमा धर्म के

आचरण से बढ़ती है, सोने के महलों में रहने से या अच्छा खाने-पीने से नहीं।

इस देश में अनेक उद्योगपति हैं, अरबपति हैं, खरबपति हैं। लेकिन उनके मरने के बाद उनको कोई भी याद नहीं करेगा, क्योंकि उनमें धर्म के लक्षण नहीं हैं। यदि अम्बानी कई मन्जिला भवन बनाते हैं, जिसकी छत पर हेलिकॉप्टर उतरता है, तो भी दुनिया उन्हें क्यों याद करेगी? संसार में एक से बढ़कर एक धनवान हैं। लेकिन उसी अम्बानी के हृदय में यदि गरीबों के लिये करुणा होती, दीन-दुःखियों के लिये वह अपना भण्डार खोल देते, तो जनता उन्हें युगों-युगों तक याद रखती।

याद रखिये कि मनुष्य यदि धर्म की मर्यादा का उल्लंघन करता है, तो वह अपने विनाश की खाई खोदता है। बड़े से बड़े संकट में भी धर्म का आसरा न छोड़िये।

दूसरों के हीरे-मोती को समझिये कि वे कंकड़-पत्थर हैं।

राणा प्रताप ने पच्चीस वर्षों तक घास की रोटियाँ खा-खाकर जंगलों में गुजारा किया, लेकिन अकबर के सामने समर्पण नहीं किया, केवल धर्म की रक्षा के लिये, राष्ट्र के स्वाभिमान की रक्षा के लिये। राणा प्रताप तो एक गृहस्थ हैं। उनकी चेतना तो नारायण की अंशरूपा है। आपके अन्दर जो चेतना है, वह तो परमधाम की है।

आप यदि कष्ट में भी रहते हैं, तो चिन्ता न कीजिये। राज जी आपके साथ हैं। यही तो होगा कि कुछ दिन खाने को नहीं मिलेगा। सर्प को कई दिनों तक खाने को नहीं मिलता, तो क्या सर्प मर जाता है? आप भूखे रह लीजिये, अर्धनग्न रह लीजिये, घर नहीं है तो पेड़ों के नीचे रह लीजिये, लेकिन अधर्म से कभी भी समझौता न

कीजिए।

दूसरे के धन को मिट्टी के समान समझिये। अपने परिश्रम से उपार्जित जो धन है, उसी का सदुपयोग कीजिये। इसी में आपकी महिमा है। चितवनि करने वाला हमेशा यह भाव रखे कि वह धर्म के आदेशों पर चल रहा है।

ब्रह्मचर्य

चौथी वस्तु (यम) है ब्रह्मचर्य। ब्रह्मचर्य का भाव यह मत समझ लीजिये कि इस देश में ८० लाख महात्मा हैं, तो अस्सी लाख ब्रह्मचारी हैं। विवाह न करने का आशय ब्रह्मचारी होना नहीं होता। ब्रह्मचर्य का अर्थ होता है, ब्रह्म की चर्या अर्थात् ब्रह्म में विचरण करना।

ब्रह्म निर्विकार है, आप भी निर्विकार बनिये। ब्रह्म

सत्यवादी है, सत्य स्वरूप है, आप भी मन, वाणी, और कर्म से सत्य का पालन कीजिये। यदि परमधाम को पाना है, परमधाम को देखना है, युगल स्वरूप को देखना है, तो पाँच यमों का पालन आपको करना ही पड़ेगा।

यदि कोई व्यक्ति विषयों में नाक तक डूब जाये और कहे कि मैं परमधाम को देखता हूँ, मैं ध्यान लगाता हूँ, तो समझ लीजिये कि वह झूठ बोल रहा है। जिसको राज जी का सौन्दर्य दिख गया, वह कभी विषयों में आसक्त नहीं हो सकता, किसी के धन पर आकर्षित नहीं हो सकता, वह कभी झूठ नहीं बोल सकता, न किसी को मानसिक या वाचिक रूप से पीड़ा दे सकता है। इसलिये परमधाम के हर सुन्दरसाथ के लिये अनिवार्य है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह, इन पाँच यमों का पालन करें।

आप सोच सकते हैं कि मैं तो इसका पालन नहीं करता, तो हो सकता है कि मैं जीव हूँ। जीव भाव तो आपको लाना ही नहीं है। आपके चित्त में जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार हैं, उसके कारण तमोगुण के प्रभाव से, क्योंकि आपका आहार तमोगुणी है, आप बुरे कर्म कर देते हैं, लेकिन ध्यान रहे कि आपके सिर पर कौन हैं? राज जी।

यदि एक किलोमीटर तक रुई का पहाड़ हो और उसमें एक चिन्गारी लगा दी जाये, तो जलने में कितनी देर लगती है? वैसे ही जन्म-जन्मान्तरों के कितने भी पाप क्यों न हों, आप कितने भी झूठ बोल रहे हों, पाप कर रहे हों, राज जी के प्रेम की अग्नि में अपने आप को डाल दीजिए, चितवनि में डूब जाइए, तो जन्म-जन्मान्तरों के संचित एवं क्रियमाण कर्मों के पाप दूर हो

जायेंगे।

ब्रह्मचर्य का सामान्यतः मूल अर्थ होता है उपस्थेन्द्रिय का संयम, लेकिन इसका बातिनी अर्थ होता है ब्रह्म की तरह निर्विकार हो जाना। ब्रह्म में विचरण करना ही ब्रह्मचर्य है। यदि कोई व्यक्ति गृहस्थ है और रात्रि को सोने से पहले और सुबह उठते ही राज जी के ध्यान में डूब जाता है, परमधाम में घूमता है, तो वह ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा है, ब्रह्म में विचरण कर रहा है। यदि किसी ने विवाह नहीं किया और वह ध्यान नहीं करता, फिर भी कहता है कि मैं ब्रह्मचारी हूँ, तो वह झूठ बोल रहा है। वह मात्र शारीरिक ब्रह्मचारी है।

ब्रह्मचर्य तीन तरह से होता है— शारीरिक, मानसिक, और आत्मिक।

शारीरिक ब्रह्मचर्य किसको कहते हैं? जो विवाह नहीं करते।

मानसिक ब्रह्मचर्य बहुत कठिन है। मानसिक ब्रह्मचर्य में क्या होता है? मन में भी काम विकार की उत्पत्ति न होने देना। अष्ट प्रकार के विकारों से युक्त होना ब्रह्मचर्य का नाश करना कहलाता है— १. स्मरण, २. छिपकर देखना, ३. एकान्त में वार्ता करना, ४. क्रीड़ा करना, ५. स्पर्श, ६. भोग का संकल्प, ७. अध्यवसाय, ८. क्रिया निष्पत्ति। एकान्त में विषय की कामना न करें।

मैं आपको यह विशेष बात बताने जा रहा हूँ। कोई भी व्यक्ति विषयों में लिप्त होना नहीं चाहता, लेकिन लिप्त हो जाता है, क्यों?

इसके कई कारण हैं, जो मैं संक्षेप में बता रहा हूँ।

काम कहाँ से पैदा होता है—

कामस्य बीजः सकल्पः संकल्पादेव जायते।

काम पैदा होता है मन से। मन से भी पैदा नहीं होता, चित्त से पैदा होता है। आगे बढ़ेंगे तो चित्त से भी पैदा नहीं होता, बुद्धि से पैदा होता है। और मैं कहूँ तो बुद्धि से भी पैदा नहीं होता, अहं से पैदा होता है।

यदि आप अपने को ब्रह्मात्मा मान लिये हैं और आपके सामने कोई भी खूबसूरत हो, भाई के लिये कोई बहन खूबसूरत हो या बहनों के लिये कोई खूबसूरत भाई हो, दोनों एक-दूसरे को आत्मिक दृष्टि से देख रहे हैं, शरीर का बोध नहीं है। दोनों यह मान रहे हैं कि वह परमधाम की आत्मा है। दोनों पास-पास बैठे रहें, आधी रात को भी बैठे रहें, अकेले बैठे रहें, तो क्या अन्तर

पड़ता है।

लेकिन यदि पुरुष क्या सोच रहा है कि मैं पुरुष हूँ, स्त्री सोच रही है कि मैं स्त्री हूँ, तो मनोविकार स्वाभाविक है। क्योंकि अहं में क्या है? आपके अहं में यदि शरीर का भाव आ गया, संसार का भाव आ गया, तो पतन निश्चित है। यदि आपका आहार सात्विक है, तो आपकी सात्विक बुद्धि कार्य करेगी। आहार तामसिक है, तो तमोगुणी बुद्धि कार्य करेगी।

आप देखते हैं टीवी के पर्दे पर, पहले ब्लैक एण्ड व्हाइट चित्र आया करते थे, अब रंगीन चित्र आया करते हैं। वैसे ही, यदि आपका आहार तामसिक होगा, तो बुद्धि भी तामसिक हो जायेगी।

आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः।

आहार की शुद्धता से ही बुद्धि की शुद्धता होती है। आप अभी माँस खा लीजिये, अण्डे खा लीजिये, और एक बोतल शराब पी लीजिये। फिर बैठ जाइये ध्यान में, ध्यान नहीं लगेगा। आपकी बुद्धि गलत बातों की विवेचना करने लगेगी, गलत चीजें सोचने लगेगी।

यदि आप माँस खाते हैं, शराब पीते हैं, अण्डे खाते हैं, तो इन्हें छोड़ दीजिये। कुछ दिनों तक फल आदि बिल्कुल सात्विक चीजें अल्प मात्रा में ग्रहण कीजिये, तो क्या होगा? आप बुरी बात सोचना भी चाहेंगे, तो अन्दर से आवाज आयेगी कि नहीं! यह बुरी बात नहीं सोचनी है। एक व्यक्ति जो कभी बुरी बात से मन हटाना चाह रहा था और मन नहीं हट रहा था, अब सोचना भी चाह रहा है तो धिक्कार मिल रही है, क्योंकि पूर्वजन्म के बुरे संस्कार सात्विक आहार से दब गये।

जब बुद्धि सात्विक हो गई, तो संस्कार भी सात्विक आयेंगे। यह बात गाँठ बाँध लीजिये कि यदि बुद्धि में तमोगुण आ गया, तो आपके बुरे संस्कार आपके मनःपटल पर उभरेंगे। चित्त जैसे संस्कार देगा, चित्त में जैसे संस्कार उभरेंगे, मन वैसा ही संकल्प-विकल्प करेगा।

एक नीमि ऋषि थे, पौराणिक कथा है। केवल शिक्षा के लिये मैं आपको बता रहा हूँ। जैसा कहा जाता है कि उन्होंने अपने को नीम के पेड़ पर स्थित कर लिया था। वहीं घोर तप करने लगे थे। इन्द्र ने सोचा कि इनके तप को कैसे खण्डित किया जाये? उन्होंने रम्भा को भेजा।

रम्भा देखती है कि वे क्या खाते हैं? जब उनको भूख लगती है, तो नीम की छाल ही चबा जाते हैं। रम्भा ने खूब स्वादिष्ट हलवा बनाकर छाल पर चिपकाना शुरू

कर दिया। ऋषि ने पहली बार खाया, बहुत स्वादिष्ट लगा। लम्बे समय से नीम की छाल खाते आ रहे थे। धीरे-धीरे हलवा खाते-खाते उनमें आसक्ति पैदा हो गई। हलवा रजोगुणी होता है। अब भूख तो थी ही। वह ज्यादा चिपकाने लगी, और वे खाते गये। परिणाम, उनकी तपस्या खण्डित होने लगी। यह शिक्षा है।

यदि आप सात्विक आहार करेंगे, तो बुरे संस्कार उभरेंगे ही नहीं। आपके अच्छे संस्कार उभरेंगे, तो आपके मन में अच्छे विचार आयेंगे। आप भोजन में नियन्त्रण नहीं करेंगे तो बुद्धि अशुद्ध हो जायेगी, जिससे चित्त के पूर्व जन्मों के बुरे संस्कारों के उभरने से आपका मन दूषित हो जायेगा।

यदि मन में बुरे संस्कार उभरने लगें और आप सोचें कि मैं सोच ही तो रहा हूँ, बुरे कर्म थोड़े ही कर रहा हूँ,

तो याद रखिये जमीन के अन्दर आग है, जब वह फूटती है, तो ज्वालामुखी बनकर फूटती है। इच्छाओं को दबाइये नहीं। इच्छाओं का दमन नहीं, शमन कीजिये। दबाने पर ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ेंगी। इसलिये इच्छाओं के शमन करने का एक ही तरीका है कि मन से बुरे विचार हटा दीजिये।

आँख रूप देखना चाहती है। जिह्वा स्वाद का रस लेना चाहती है। त्वचा कोमल स्पर्श लेना चाहती है। नासिका सुगन्धि लेना चाहती है, और कान मधुर आवाज सुनना चाहते हैं। दसों इन्द्रियों का राजा कौन है? एक अकेला मन। मन को नियन्त्रित करने वाला कौन है? चित्त। चित्त को नियन्त्रित करने वाली क्या है? बुद्धि। बुद्धि को नियन्त्रित करने वाला क्या है? आहार। और मेरा स्वरूप क्या है? जब तक आप शरीर से अपने

को अलग नहीं करेंगे, आत्म-स्वरूप की भावना नहीं करेंगे, तब तक आप कभी भी निर्विकार नहीं हो सकते।

मिठाई खाने की इच्छा किसकी होती है? जब आप अपने को आत्मिक दृष्टि से देखेंगे, तो स्वादिष्ट से स्वादिष्ट मिठाई, स्वादिष्ट से स्वादिष्ट व्यञ्जन, अच्छे से अच्छे वाहन, आपको कभी भी लुभा नहीं सकेंगे। जब आप अपने आपको मनुष्य समझने लगेंगे कि मैं यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ, मेरा कुल-गोत्र यह है, मुझे यह चीज चाहिये, वहाँ से माया आपके पीछे लग जायेगी। इसलिये आहार का शुद्ध होना बुद्धि की शुद्धता की निशानी है। आपका आहार शुद्ध हो, आपके चिन्तन में ब्राह्मी भाव हो। इसलिये कहा है—

मैं बिन मैं मरे नहीं।

परात्म की मैं आयेगी तो इस शरीर की मैं अपने आप चली जायेगी।

कामस्य बीजः संकल्पः।

यदि आप अन्धेरे में या एकान्त जंगल में बैठकर काम का चिन्तन करते हैं, तो आपको कामी बनने से बचाने वाला संसार में कोई नहीं है।

एक बार बुद्ध ने अपने दो शिष्यों को भेजा। एक को भेज दिया छह वर्षों के लिये हिमालय और एक को छह महीने के लिये वेश्यालय। कहा, "देखो! तुम्हें वेश्यालय में ही रहना है।"

छह महीने के बाद जब उनका शिष्य वेश्यालय से आता है, गौतम बुद्ध उसको गले से लगा लेते हैं, और छह वर्ष साधना करके जो हिमालय से आता है, बुद्ध

उसको अपने पास बैठा तो लेते हैं लेकिन गले नहीं लगाते। वह शिष्य पूछता है, "भगवान! जो छह महीने केवल वेश्यालय में रहकर आया है, आप उसको गले से लगा लेते हैं। क्या उसकी साधना मेरी साधना से बढ़कर है?"

भगवान कहते हैं, "भाई! तुम छह वर्षों तक अवश्य हिमालय में रहे हो, लेकिन तुम्हारा मन विषयों का चिन्तन करता रहा है, और यह छह महीने वेश्यालय में अवश्य रहा है, अपनी आँखों से वेश्याओं को देखा भी है, लेकिन उसकी दृष्टि में आत्म-दृष्टि बनी रही, सबको माता के समान देखकर प्रणाम करता रहा है। इसलिये यह तुम से बढ़कर तपस्वी है, तुमसे बढ़कर संयमी है।"

कहने का तात्पर्य क्या है? जिसने मन को जीत लिया उसने सबको जीत लिया।

मैं एक घटना सुना रहा हूँ। एक बार विवेकानन्द अमेरिका प्रवास में थे। आधी रात को एक खूबसूरत युवती ने विकृत मानसिकता लेकर उनके कमरे में प्रवेश किया। विवेकानन्द हाथ जोड़कर कहते हैं- "आइये माताश्री! क्या आदेश है?" वह सन्न रह गई, कहती है कि मैं तो दूसरी भावना से आयी थी। विवेकानन्द कहते हैं कि मैं उस देश का सन्यासी हूँ, जिस देश में अर्जुन जैसा गृहस्थ स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा को माँ कहकर पुकारता है। मैं तो भगवे वस्त्र धारण करने वाला वह सन्यासी हूँ, जिसके लिये अपनी सात फेरों की पत्नी भी माँ बन जाती है।

यह हमारी संस्कृति का उद्धोष है। यह ध्यान रहे। यदि हमने हर स्त्री को माँ का रूप दे दिया, तो विकारों के होने की कल्पना नहीं की जा सकती। मन के चिन्तन से

ही सब कुछ है। आप विश्व की सबसे सुन्दर रमणियों के पास रहिये, लेकिन यदि आपने उनमें माँ का रूप देख रखा है, तो मन में विकार नहीं आयेंगे और इन्द्रियों में भी कोई विकार नहीं आ सकता, किन्तु यदि आप जंगल में रहते हैं और मन को छूट दे रखी है, तो बेचारी इन्द्रियाँ तो मन के अधीन हैं।

यथा राजा तथा प्रजा।

यदि मन पवित्र है, तो आपकी आँख, आपकी जिह्वा, आपकी त्वचा, आपकी कोई भी इन्द्रिय आपको कभी धोखा नहीं दे सकती। यदि मन को जीत लिया, तो ये सभी आपके अधीन हैं। मन से हार गये, तो हमेशा के लिये हार गये। इसलिये शंकराचार्य जी ने एक सूत्र कहा है—

कामस्य बीजः संकल्प संकल्पादेव जायते।

काम का बीज संकल्प है। आप काम का संकल्प ही न कीजिये। दिव्य काम का संकल्प कीजिये कि मेरी आत्मा प्राणेश्वर अक्षरातीत को चाहती है। मैं आपको शुष्क हठयोगी बनने के लिये नहीं कह रहा हूँ। आपके अन्दर प्रेम की रसधारा बहे, आप सबसे प्रेम कीजिये, लेकिन आत्मिक प्रेम कीजिये।

वासना और प्रेम में छत्तीस का आँकड़ा है। पति-पत्नी जब पच्चीस साल के होते हैं तो भी लगाव होता है, और जब दोनों की उम्र पचहत्तर साल की हो जाती है तब भी लगाव होता है। लेकिन दोनों लगाव में अन्तर होता है। पच्चीस साल की उम्र में जो लगाव होता है, वह वासनापरक अधिक होता है, शरीर से लगाव होता है। किन्तु पचहत्तर साल की अवस्था में जो लगाव होगा, वह

हृदय का लगाव होगा। आप हर प्राणी से हार्दिक भावना से स्नेह कीजिये, आत्मिक प्रेम कीजिये, घृणा किसी से नहीं।

एक महात्मा थे। उनकी बहुत प्रसिद्धि है। उनको "देवरहवा बाबा" कहा जाता है। देवरिया जिले में सरयू के किनारे उनका आवास था। उनके दर्शन के लिए राजेन्द्र बाबू जा चुके हैं। पण्डित जवाहरलाल नेहरू जा चुके हैं। इन्दिरा गाँधी तो उनके चरणों में साष्टांग लेट जाया करती थीं।

एक बार, एक खूबसूरत अठारह साल की लड़की उनके दर्शन करने के लिये आने लगी। महात्मा जी जोर से चिल्ला पड़े, "अरे! यह नरक का कुण्ड कहाँ से आ गया?"

लड़की पढ़ी-लिखी थी। कहती है, "महात्मा जी! यदि नरक का कुण्ड नहीं होता, तो आपका मुण्ड भी नहीं बनता। आपको भी तो किसी माँ ने ही पैदा किया है। आप मुझे देखते ही इतने विकारग्रस्त क्यों हो रहे हैं कि भरी सभा के बीच में मुझे कह रहे हैं कि नरक का कुण्ड आ रहा है?"

पाप कौन करता है? मनुष्य ही तो करता है। यदि आपकी दृष्टि पवित्र है, तो उस कन्या को भी तो माँ की तरह देख सकते थे। बेटी भी बना सकते थे, माँ भी बना सकते थे। क्या अपनी माँ को नरक का कुण्ड कह सकते हैं? अपनी बेटी को कोई महात्मा नरक का कुण्ड कह सकता है? यह विकृति आपमें नहीं आनी चाहिये। हर स्त्री को माँ की दृष्टि से देखिये, अपनी स्नेहसिक्ता बहन की दृष्टि से देखिये। अपने हृदय को पवित्र बनाइये।

केवल पास रहने से विकार नहीं आता। विकार मन में होता है। मन का वही विकार इन्द्रियों में आ जाता है और क्रियाफल में परिवर्तित हो जाता है। इसलिये, एकान्त में कभी भी काम विकार का न तो स्मरण करना चाहिए और न विकृत भावना से बातचीत करनी चाहिए।

संकल्पो अध्यवसायः।

काम का संकल्प न करना, बल्कि यह भावना करना कि हर कोई आत्मा का स्वरूप है। हर तन मेरे लिये परमधाम की आत्मा का स्वरूप है। यदि आपके सामने से कोई खूबसूरत बहन आती है, तो यह भावना रखिये कि जब इस मिट्टी के तन में इतना सौन्दर्य है, तो श्यामा जी का स्वरूप कैसा होगा, राज जी कितने सौन्दर्यशाली होंगे?

सौन्दर्य को देखिये, किन्तु भावना को बदल लीजिये। उस सौन्दर्य में परमधाम के सौन्दर्य की भावना कीजिये कि जब शरीर का इतना सौन्दर्य हो सकता है, तो आत्मा का सौन्दर्य कैसा होगा? आप विकारों से रहित हो जायेंगे। किन्तु यदि आप शुष्क हठयोगी बनेंगे, तो पहले ही आपकी शरीर के प्रति कठोर दृष्टि बन जायेगी और आप में विकार-दृष्टि अवश्य बनेगी। आज नहीं तो कल, आप पाप के कीचड़ में फँस जायेंगे।

इसलिये ब्रह्मचर्य का तात्पर्य यह रखिये— ब्रह्म में विचरण करना। यदि आपके अन्दर मनोविकार आते हैं, तो रात्रि में सोने से पहले आप राज जी का ध्यान कीजिये, श्यामा जी का ध्यान कीजिये, और यह संकल्प कीजिये कि धाम धनी के चरणों में मैं पूर्णतया निर्विकार हो गया हूँ, प्रेम से पूर्ण हो गया हूँ। याद रखिये, प्रेम

परमधाम का है, वासना तमोगुण की वस्तु है। जिसमें सतोगुणी भाव होगा, उसमें भी वासना नहीं पैदा होगी।

कामः एषः क्रोधः एषः रजोगुणः समुद्भवः।

काम और क्रोध की उत्पत्ति रजोगुण से होती है। तमोगुण उसका गहन रूप है। जहाँ सतोगुण होगा, वहाँ स्नेह होता है। एक पिता अपनी पुत्री को गले लगाता है, उसमें स्नेह है। एक शिष्य को उसका गुरु गले लगाता है, लेकिन पवित्र स्नेह है। माँ अपने बेटे को गले लगाती है, भाई-बहन भी गले लगते हैं, लेकिन उनमें स्नेह है, विकार-वासना नहीं है क्योंकि वह सतोगुण की अवस्था है। इसीलिये आप सात्विक आहार करेंगे, अपने विचारों को पवित्र रखेंगे, तो आपमें स्नेह का प्रकटीकरण होगा।

वही स्नेह ध्यान द्वारा प्रेम में रूपान्तरित हो

जायेगा। अपने हृदय में प्रियतम परब्रह्म को पाने की चाह रखिये। रसखान की दीवानगी देखिये। उनके अन्दर कभी चाहत थी, तुलसीदास जी के अन्दर भी वैकारिक चाहत थी। विकारों से हटने के बाद उनके अन्दर भक्ति की सरिता उमड़ पड़ी। इसलिये आप कर्मकाण्डी लोगों की तरह घृणा मत किया कीजिये।

एक महाराज जी की सच्ची घटना बताता हूँ। मैं नाम नहीं बताऊँगा और किस स्थान के वह महाराज थे वह भी नहीं बताऊँगा। पुरानी बात है, लगभग तीस-चालीस वर्ष पहले कानपुर में आये हुये थे। वे भोजन कर रहे थे। उनके सामने से कुछ बहनें गुजर गईं, तो उन्होंने जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया, "अरे! यह क्या हो गया? मैं भोजन कर रहा हूँ। मेरे सामने से ये महिलायें क्यों गुजरीं?"

वे बहुत पढ़ी-लिखी थीं। उन्होंने कहा, "महाराज जी! भोजन तो हमने ही बनाया है। हमारे बनाये हुये भोजन को खा रहे थे तो आप अशुद्ध नहीं हुए, किन्तु आपके सामने से हम गुजर गयीं तो आप अशुद्ध हो गये?" ऐसी कर्मकाण्ड की प्रक्रिया आपके अन्दर नहीं होनी चाहिये।

आपके सामने यदि उर्वशी से भी करोड़ गुणा सुन्दर रमणी आती है, तो आप उसके अन्दर मातृ भावना कीजिये। उससे वैसे ही बातें कीजिये जैसे छोटा शिशु अपनी माँ से बातें करता है। इस शरीर को न देखिये कि मैं युवा हो गया हूँ। यदि परात्म की भावना लेंगे, तो विकार होने का प्रश्न ही नहीं है। यदि परात्म की भी भावना नहीं है, तो आत्मिक स्नेह में क्रीड़ा कीजिए। यदि आपने अपने हृदय को हठयोगियों की तरह शुष्क बनाया,

तो वासना आपके मन में बैठ जायेगी।

जो राज जी से प्रेम करेगा, वह कभी भी वासना से ग्रसित नहीं हो सकता। इसलिये रात्रि को सोते समय आप ध्यान कीजिये। अपने अवचेतन मन को आदेश दीजिये कि अब मेरे अन्दर निर्विकारिता आ रही है। मैं पूर्णतया निर्विकार हो गया हूँ। सवेरे उठिये, ध्यान कीजिये। धाम धनी से प्रार्थना कीजिये, "धाम धनी! मेरे हृदय में वास कीजिये। मुझे पूर्णतया निर्विकार बना दीजिये।" कुछ दिनों के बाद आप वैसे ही बन जायेंगे।

अपरिग्रह

पाँचवा यम है अपरिग्रह। अपरिग्रह का अर्थ होता है, किसी वस्तु का आवश्यकता से अधिक संचय न करना। संसार में दुःखों का कारण क्या है? परिग्रह की प्रवृत्ति।

संचय किसका करना चाहिये? गुणों का संचय करना चाहिये। दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किये। जिससे शिक्षा मिली गुरु मान लिया। आपके हृदय में ज्ञान के अनमोल मोती मिल जायें, इससे बड़ा सौभाग्य और कुछ नहीं होगा।

धन का अनावश्यक संग्रह नहीं करना चाहिये। आज सारा संसार किसमें लगा है? अनावश्यक धन-संग्रह में। वह सोचता है कि धन से सुख मिल जायेगा। धन से सम्बन्ध तो बन सकते हैं, आपको स्नेह नहीं मिल सकता। धन से आप भोजन खरीद सकते हैं, किन्तु भूख नहीं पा सकते। कहने का आशय यह नहीं है कि आप गरीब रहिये, लेकिन अनावश्यक संचय के प्रयास में अपने जीवन के अनमोल समय को गँवाना सबसे बड़ी नादानी है। विदेशों में यही प्रवृत्ति जोर कर रही है।

पड़ोसी के पास दो कारें हैं, तो मेरे पास चार कारें होनी चाहिये। यही संस्कृति भारत में भी पनपती जा रही है, जिसका परिणाम क्या है? प्रातः से लेकर रात तक मनुष्य हाय-तोबा मचाये रखता है, धन कमाओ-धन कमाओ। ड्यूटी के बाद भी ओवर-ड्यूटी करता है। लेकिन उससे पूछिये, परमात्मा का ध्यान करते हो? कहेगा कि काम का इतना बोझ है कि समय ही नहीं मिलता, अर्थात् परमात्मा इतना साधारण एवं तुच्छ हो गया। रिश्तेदार आ जायें तो देखिये समय उनके पास निकल जायेगा, परमात्मा के लिये समय नहीं है। कबीर जी ने कहा है—

पल में प्रलय होयेगी, बहुरि करोगे कब।

शरीर का क्या भरोसा है, चलते-चलते अटैक हो जाये, शरीर छूट जाये। धन यहीं रह जायेगा, सगे—

सम्बन्धी यहीं रह जायेंगे। इसलिये चितवनि की राह पर चलने वाले के लिये अपरिग्रही होना जरूरी है। अनावश्यक संचय नहीं। भर्तृहरि ने कहा है— सत्य ही जिसका मित्र है, धैर्य पिता है, क्षमा माता है, शान्ति पत्नी है, दिशायेँ ही वस्त्र हैं, भिक्षा में हाथों में मिला हुआ भोजन ही जिसका आहार है, नदियों में बहता हुआ जल ही जिसका पेय है, हाथ का सिरहाना ही जिसका तकिया है, ऐसे योगी को भला किसी का भय कहाँ से होगा।

जितने बड़े-बड़े पूँजीपति हैं, उनकी सारी ऊर्जा किसमें लग जाती है, केवल धन कमाने में। लेकिन जिसने ज्ञान रूपी धन को आधार बना लिया, वही धन तो उसके काम आयेगा। इस जन्म में आपने जो ज्ञानार्जन किया, भक्ति की, वही आपकी अखण्ड सम्पदा है, शेष सभी यहीं रह जानी है। शरीर बदलेगा, तो भी

आपके चित्त में इस जन्म की ज्ञानधारा बनी रहेगी। लेकिन आपने एक करोड़ रुपये कमा लिये, एक करोड़ रुपये तो आपके साथ जायेंगे नहीं। इसलिये पाँच यमों में पाँचवा है अपरिग्रह।

आजकल बड़ा महाराज किसको माना जाता है? जिसके पास बढ़िया गाड़ी हो, जिसके आश्रम की बिल्डिंग चमकती हो, उनको माना जाता है कि ये बहुत बड़े महाराज हैं। छोटा महाराज कौन है? जिसके पास बढ़िया गाड़ी नहीं है, ए.सी. कमरे नहीं हैं, कहा जाता है कि वह छोटा सा बाबा है। यही सबसे बड़े आश्चर्य की बात है। जिसके पास ज्ञान का धन हो, विवेक हो, वैराग्य हो, शील हो, सन्तोष हो, समाधिस्थ प्रज्ञा हो, उससे बड़ा धनवान इस सृष्टि में कोई नहीं है और न कोई होगा। भौतिक धन तो नश्वर है।

संसार में बड़े-बड़े आश्रम हैं, जिसमें राजाओं के महलों जैसी सुख-सुविधा है, लेकिन एक सच्चा ब्रह्मज्ञानी खोजने से भी वहाँ नहीं मिलेगा। यदि इसी से आध्यात्मिकता की पहचान होती, तो अमेरिका वालों के पास तो बहुत कुछ है। विदेशों में तरह-तरह की सम्पदा है, लेकिन आध्यात्मिकता का माप धन के संग्रह से नहीं, बल्कि धन के त्याग से होता है।

देवता किसको कहते हैं? जो देना जानते हैं। वायु आपको जीवन देता है, पृथ्वी अन्न फल देती है, अग्नि भी आपके जीवन में सहायक है। सब कुछ जड़ पदार्थ दे रहे हैं। आप वृक्ष पर पत्थर मारते हैं, तो भी वह मीठा फल ही देता है। आप भी देना सीखिये। जो आपका धन है, वह आपका नहीं है, शरीर आपका नहीं है। आप शरीर को अपना माने बैठे हैं, धन को अपना माने बैठे हैं,

लेकिन शरीर के छूटने के बाद शरीर आपके हाथ में नहीं आयेगा, धन आपके हाथ में नहीं रहता। धन अपने सगे-सम्बन्धियों को देकर इस दुनिया से चले जाते हैं। लेकिन यह मोह ही संसार को व्याकुल किये हुये है।

मेरी-मेरी करत दुनी जात है, बोझ ब्रह्माण्ड सिर लेवे।

पाँव पलक का नहीं भरोसा, तो भी सिर सरजन को न देवे॥

यदि आप किसी के घर चले जाइये, तो वह प्रायः शिष्टाचारवश क्या कहता है? देखिये, सब आपका ही तो है, किन्तु तीन-चार दिन ठहर जाइये तो मन ही मन यह मनाने लगता है कि ये सब कब यहाँ से जायें, अर्थात् सब ऊपर से दिखावा होता है।

जिसने यह मान लिया- **"कस्यस्वित् धनं"** अर्थात् यह धन किसका है? परमात्मा का है। एक मन्त्र याद कर

लीजिये- "केवलाघो भवति केवलाधी।" जो अकेले खाता है, वह पाप खाता है। इसलिये हमारी संस्कृति का उद्घोष है-

संगच्छध्वम् संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्।

हम साथ-साथ चलें, साथ-साथ बोलें, हम सबके मन एक हों। कुछ भी होता था, पाँचों पाण्डव बाँट-बाँट कर खाते थे। राम और लक्ष्मण ने कभी अकेले भोजन नहीं किया होगा। जब से इस देश में यह प्रवृत्ति चल गई कि केवल मैं सुखी रहूँ, दूसरे का धन लूट करके, वही घातक परिणाम दे रही है।

यह प्रपञ्च भौतिक जगत में तो हो ही रहा है, आध्यात्मिक क्षेत्र में भी यही होड़ मची हुई है। जैसे एक चक्रवर्ती सम्राट होता है, वैसे ही जो बड़े-बड़े मठाधीश

हैं, वे बड़े-बड़े राजाओं की तरह सोचते हैं कि हमारी आज्ञा में सभी छोटे-छोटे बाबा रहा करें। वे हमारे आदेश पर चला करें और कहीं निकलें भी तो पीछे-पीछे हमारी शोभा के लिये निकला करें। इसको अध्यात्म नहीं कहते हैं, यह भौतिकता का प्रदर्शन मात्र है।

कुम्भ में सवारियाँ निकलती हैं। हर वर्ग के वैरागी निकलते हैं। उनके साथ चाँदी-सोने के छत्र होते हैं। प्रत्यक्ष जाकर तो देखा नहीं, क्योंकि मेरी इच्छा ही नहीं होती। कुम्भ के मेले में प्रदर्शन किया जाता है कि मैं कितने बड़े मठ का मालिक हूँ। मेरे साथ कितने महात्मा चल रहे हैं।

छत्र और चँवर तो केवल राजाओं की शोभा है। आजकल जितने भी सन्यासी, मण्डलेश्वर, और शंकराचार्य हैं, सभी छत्र और चँवर धारण करते हैं।

किसी शास्त्र में ऐसा नहीं लिखा है कि सन्यासी छत्र और चँवर से सुशोभित रहे, चाँदी के सिंहासन पर बैठे। यह क्या है? यह तो माया का संग्रह है। इसलिये ध्यान की राह पर चलने वालों के लिये छत्र, चँवर विष के समान हैं। यह अग्नि की लपटों के समान कष्टकारी हैं। सोने का सिंहासन उसके लिये आग के ढेर के समान है।

आश्रमों में जो वैभव इकट्ठा हो जाता है, वह भोग-विलास के लिये प्रयुक्त होता है। अध्यात्म से इनका कोई लेना-देना नहीं। यदि किसी आश्रम में पचास ए.सी. कमरे बन गये, तो इसका आशय यह नहीं है कि वहाँ ब्रह्मज्ञानी रहते हैं और वहाँ अध्यात्म की सम्पदा बरसती है। यह भौतिकता है। माया का धन कमाने वाले अधिक से अधिक ए.सी. कमरों में रहते हैं, अच्छा खाते-पीते हैं। यह अध्यात्म नहीं है। अध्यात्म वहाँ बरसता है, जहाँ

प्रज्ञा, सन्तोष, समाधि, ज्ञान, विवेक, वैराग्य, और शान्ति की सरिता प्रवाहित होती है। अध्यात्म का मूल्यांकन इससे किया जाना चाहिये।

इसलिये ध्यान-साधना में निमग्न रहने वाले को कभी भी अनावश्यक अर्थ का संग्रह नहीं करना चाहिये। उन्हें उस चाणक्य की तरह होना चाहिये, जिसने सम्पूर्ण भारत का प्रमुख अमात्य होते हुये भी झोंपड़ी में निवास किया। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि आज के युग में भी झोपड़ी में रहिये, लेकिन आसक्ति न पालिये। ये हैं पाँच यम, जो योग का पहला अंग हैं।



द्वितीय पुष्प

कल की चर्चा में हमने पाँच यम के विषय में सुना। आज का विषय है योग का दूसरा अंग— नियम। नियम पाँच प्रकार के हैं— शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर—प्रणिधान।

शौच किसको कहते हैं? पवित्रता को। शौच दो प्रकार का होता है— बाह्य शौच और आन्तरिक शौच।

जैसे आप ध्यान कर रहे हैं, उधर से गंदे नाले का कीचड़ लाकर आपके आसन पर फेंक दिया जाये, तो क्या आप बैठेंगे? आपकी आँतों में मल जमा हो, तो परिणाम क्या होगा? आपके शरीर में रोग पैदा हो जायेंगे, शरीर में आलस्य बना रहेगा।

आप पन्द्रह दिन नहायेंगे नहीं तो क्या होगा?

चिड़चिड़ापन बना रहेगा क्योंकि शरीर को जितनी सात्विकता चाहिये, वह जल से मिलती है और वह आप दे नहीं रहे हैं। इसलिये ध्यान करने वाले को समय पर शौच अर्थात् मल शुद्धि अवश्य करनी चाहिये। मल और मूत्र के वेग को कभी भी रोकिये नहीं, क्योंकि इसको रोकने से शरीर में तरह-तरह के रोग पैदा हो जायेंगे।

शौच की शुद्धि से क्या लाभ होता है? योगदर्शन में एक सूत्र आता है—

शौचात् स्वाङ्ग जुगुप्सा परैः असंसर्गः।

शौच से जब योगी मल-त्याग करता है, तो उसको देखकर उसको घृणा होती है कि मेरे शरीर में इतनी गन्दगी रह रही है। जब उसको अपने शरीर की गन्दगी दिखाई देती है, तो अपने शरीर से मोह हट जाता है। वह

शरीर की सजावट से अलग हो जाता है, आत्मा का श्रृंगार करना चाहता है, अपने मन का श्रृंगार करना चाहता है। मन का श्रृंगार पवित्रता से होगा। जब तक शरीर की सजावट में लगे रहेंगे, तब तक आत्मा के श्रृंगार से वंचित रहेंगे।

आप बड़े-बड़े मठाधीशों के पास जाकर देखें कि उनमें कितनी सजावट है? गृहस्थी अपने बालों को रंगे तो रंगे, यदि विरक्त भी बालों को रंगने लगेगा तो फर्क ही क्या रह जायेगा? इस शरीर की प्रवृत्ति नश्वर है। वृन्दावन में और अयोध्या में जितने महात्मा होते हैं, वे दर्पण लेकर चेहरे पर फूल-पत्तियों के चित्र बनाते हैं। किससे? चन्दन से। बेचारे आधा घण्टा ध्यान करते, परमात्मा का नाम लेते, तो उनके जीव का श्रृंगार होता। चेहरे को रंग देने से, माथे को रंग देने से, हृदय कभी भी पवित्र नहीं

होगा। तारतम वाणी कहती है—

जैसा बाहेर होत है, जो होए ऐसा दिल।

तो अधखिन पिउ न्यारा नहीं, मांहे रहे हिल मिल।।

हम बाहर को सजायें। यह तो ठीक है, लेकिन अति न करें। बाह्य शौच का तात्पर्य हमारी आँतों में मल नहीं होना चाहिये। मूत्र के वेग को न रोकें। जहाँ ध्यान करें, वह स्थान साफ—सुथरा हो। सजावट अलग बात है, साफ—सुथरा रखना अलग बात है।

साफ—सुथरा रखने का भाव है, वहाँ कूड़ा बिखरा न हो। सफाई अनिवार्य है। श्रृंगार अनिवार्य नहीं है। श्रृंगार विलासिता है, जबकि स्वच्छता अच्छी वस्तु है। शरीर का स्वच्छ होना, वस्त्रों का स्वच्छ होना, ध्यान के आसन का स्वच्छ होना, निवास का स्वच्छ होना

अनिवार्य है।

यह विवेक दृष्टि रखनी चाहिये कि हमारे शरीर में किसी तरह के मल का जमाव न हो। यदि मल जमता रहेगा, तो वह टी.बी., दमा, और न जाने कितने रोगों का कारण बन जायेगा। आयुर्वेद कहता है—

सर्वे दोषाः मलाश्रयाः।

लोग क्या करते हैं? कोई भी रोग हुआ, जुकाम हुआ, तो जुकाम दबाने की दवा खा ली। जुकाम तो दब गया, लेकिन बड़े वेग से दूसरे रोग के रूप में निकलेगा। बुखार होता है, तो दवा से अथवा इन्जेक्शन से बुखार को दबा दिया जाता है। कीटाणु कहाँ से पनप रहे हैं? मल के द्वारा। जब तक मल का त्याग नहीं होगा, तब तक रोग पैदा होते ही रहेंगे।

सत्त्व शुद्धि सौमनस्य एकाग्र्य इन्द्रियजय आत्मदर्शन योग्यत्वानि च।

आन्तरिक शौच का तात्पर्य है— चित्त, मन, एवं इन्द्रियों को शुद्ध रखना। इसका परिणाम क्या होता है? "आत्मदर्शनेत्वम्।" आत्मा के साक्षात्कार की योग्यता प्राप्त होती है। यदि आपने आन्तरिक पवित्रता धारण कर ली, हृदय को पवित्र कर लिया, तो यही हृदय की पवित्रता आपको आत्मदर्शन तक ले जायेगी, परमात्मा के दर्शन तक ले जायेगी।

इसलिये जो नियम का पहला चरण है, वह है शौच— बाह्य शौच और आभ्यान्तर शौच। दूसरे शब्दों में, बाह्य पवित्रता और आन्तरिक पवित्रता। कहने को तो यह स्थूलता से जुड़ी है, लेकिन उसका सम्बन्ध सूक्ष्मता से भी है। आप प्राणायाम करेंगे, तो इससे बाह्य पवित्रता भी

होगी और आन्तरिक पवित्रता भी होगी।

योगांग अनुष्ठानात् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरविवेक ख्यातेः।

योग का सिद्धान्त है—

प्राणो विलीयते यत्र मनः तत्र विलीयते।

यत्र मनः विलीयते तत्र प्राणो विलीयते॥

मन रुक जायेगा, तो प्राण रुक जायेगा। यदि प्राण रुक जायेगा, तो मन भी स्थिर हो जायेगा। यदि आप प्राणायाम करते हैं, तो मन की चंचलता रुक जायेगी। आजकल तो घड़ियाँ कम दिखाई दे रही हैं। एक घड़ी होती है, दीवार घड़ी। उसमें पेण्डुलम लटकता रहता है। पेण्डुलम इधर से उधर आता-जाता रहता है। प्राणायाम की प्रक्रिया वैसी ही होती है। आप जो श्वांस ले रहे हैं और छोड़ते हैं, उसे कहते हैं प्राण और अपान।

श्वास लेने को कहते हैं पूरक, छोड़ने को कहते हैं रेचक, और रोकने को कहते हैं कुम्भक। जब प्राणायाम करेंगे, तो परिणाम यह होता है कि प्राणवायु के रुकने से शरीर में जितनी अशुद्धियाँ होती हैं सब क्षय हो जाती हैं। जैसे दहकती हुई अग्नि में लोहा डाल देंगे या कोई भी धातु डालेंगे, तो उसकी अशुद्धि दूर हो जाती है। वैसे ही, "प्राणायामात् अशुद्धि क्षये ज्ञानदीप्तिः विवेक ख्यातेः" अर्थात् प्राणायाम से अशुद्धि का क्षय होता है।

आपके फेफड़े में यदि कोई अशुद्धि है, कफ जम रहा है, टी.बी. या दमा के कीटाणु पनप रहे हैं, तो जब प्राणायाम द्वारा आपका रक्त शुद्ध होगा, तो कैंसर तक को ठीक किया जा सकता है। एड्स (AIDS) के लिये भी इससे काफी प्रतिरोधक शक्ति विकसित हो सकती है। मैं समझता हूँ कि यदि उचित मात्रा में प्राणायाम किया

जाये, तो सारे रोगों की निवृत्ति हो सकती है।

दूसरा लाभ यह होगा कि मन की शुद्धि हो जायेगी। बुद्धि के ऊपर जो तमोगुण का आवरण आया रहता है, जिससे बुद्धि क्रियाशील नहीं होती, वह आवरण भी हट जायेगा। तमोगुण का लक्षण क्या है— प्रमाद, आलस्य, निद्रा।

जब आपको कोई काम करना है, तो सोचते हैं कि एक घण्टे के बाद करूँगा। इसको कहते हैं प्रमाद।

आलस्य का तात्पर्य क्या है? जाड़े का मौसम है। मन में तो था कि चितवनी कर लेते, लेकिन कम्बल ओढ़े हैं, रजाई ओढ़े हैं, लेकिन लेटे-लेटे बहुत अच्छा लग रहा है। मन में है कि चितवनी कर लें, लेकिन सोचते हैं कि अरे कम्बल की गर्मी को कौन छोड़े? यह सवेरे-सवेरे

का समय है नींद का, थोड़ा आराम ले लें। इसको कहते हैं आलस्य।

निद्रा का तात्पर्य— एक सामान्य साधक को साढ़े चार-पाँच घण्टे से अधिक सोने का कभी प्रयास नहीं करना चाहिये। यदि आप आठ घण्टे सोते हैं, नौ घण्टे सोते हैं, तो परिणाम क्या होगा? आपमें तमोगुण की वृद्धि हो जायेगी। श्री कृष्ण जी ने कहा है कि योगसिद्धि न तो बहुत ज्यादा सोने वाले की होती है और न ही बिल्कुल न सोने वाले की होती है। यदि आप बहुत ज्यादा सोयेंगे तो क्या होगा? तमोगुण की वृद्धि हो जायेगी और आपका मन कभी भी ध्यान में समाहित नहीं हो सकता है। किन्तु यदि आप बिल्कुल भी नहीं सोते हैं, तो ध्यान करते समय आप झपकी लेते रहेंगे, तो भी योग सिद्ध नहीं हो सकता।

यदि आप भूख से ज्यादा भोजन कर लेते हैं, तो तन्द्रा आती रहती है। यदि बहुत अधिक भोजन करेंगे, तो आपके अन्दर पृथ्वी तत्व की वृद्धि हो जायेगी। शरीर स्थूल हो जायेगा। आलस्य, प्रमाद बढ़ जायेगा। इसलिये बहुत अधिक भोजन करना भी हानिकारक है। यदि आप सोचते हैं कि भोजन बिल्कुल भी न करें, तो भी साधना पूरी नहीं हो सकती।

आप बीतक में सुनते हैं कि मिहिरराज जी पैसे-भर अन्न का आहार करते थे। **"उतरता आहार घटाईया।"** वे प्रतिदिन आहार कम करते गये, जिससे उनका शरीर हड्डियों का ढाँचा बन जाता है। राजकुमार सिद्धार्थ ने भी यही किया था। वे प्रतिदिन एक-एक अन्न का दाना खाते थे। परिणाम क्या हुआ? बैठने तक की ताकत नहीं थी। आपके शरीर में जठराग्नि है। यदि उसको कुछ आहार

नहीं मिलेगा, तो जठराग्नि क्या करेगी- एक सीमा तक तो आपके शरीर के दोषों को पचायेगी, फिर आपके शरीर को पचाना शुरू कर देगी।

एक कथन याद रखना चाहिये- **"अति सर्वत्र वर्जयेत।"** योगी को यह बात सदा ही ध्यान में रखनी चाहिये। उपवास बहुत अच्छी वस्तु है, लेकिन अति हानिकारक है। अति निद्रा भी हानिकारक है, अति भोजन भी हानिकारक है, और अति जागरण भी हानिकारक है। यदि आपने बहुत अधिक उपवास कर लिया, तो पहले तो लाभ होगा। शरीर में जितने भी रोग के कीटाणु हैं, मर जायेंगे, समाप्त हो जायेंगे। लेकिन उसके पश्चात् जठराग्नि को पचाने के लिये कुछ चाहिये। अब वह आपके शरीर की धातुओं को पचाना शुरू कर देगी। पहले रक्त, उसके बाद माँस। धीरे-धीरे आपके

शरीर में हड्डियाँ नजर आनी शुरू हो जायेंगी। अन्त में केवल हड्डियाँ ही रह जायेंगी।

यदि आपने समय पर पानी न पिया तो क्या होगा? शरीर के अन्दर इतनी गर्मी हो जायेगी कि उसके परिणाम स्वरूप आपकी किडनी, आपका आमाशय कभी भी क्षतिग्रस्त हो सकते हैं।

यदि आप अन्न का आहार छोड़ते हैं, तो फलाहार कीजिये। फलाहार भी नहीं करना चाहते, तो दुग्धाहार कीजिये। दुग्धाहार भी छोड़ते हैं, तो समय पर जल की मात्रा थोड़ी बहुत लीजिये, ताकि जठराग्नि उतनी ही शरीर में प्रज्वलित हो, जितनी आवश्यक हो। जठराग्नि जल द्वारा भी शान्त हो सकती है। जल को पचाने के लिये भी शक्ति लगानी पड़ती है। लेकिन यदि आपने जल का भी परित्याग कर दिया, तो इतनी गर्मी बढ़ेगी कि

आपका मन चंचल हो जायेगा, इन्द्रियों की शक्ति क्षीण हो जायेगी और उपनिषद् कहते हैं—

न अशान्त मानसो वापि प्रज्ञानेन एनम् आप्नुयात्।

अशान्त मन वाला व्यक्ति भी इसको प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिये सम्यक् आहार का सेवन करना चाहिए। यदि कोई यह सोचता है कि आहार का बिल्कुल परित्याग करके समाधि लगा लेंगे, तो यह सम्भव नहीं है।

तपः स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः।

क्रियायोग में तीन वस्तुएँ होती हैं— तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान।

इन्द्रियों को विषयों में न जाने देना, मन को विषयों से रोकना, चित्त में बुरे संस्कारों को पैदा न होने देना, और बुद्धि से चिन्तन को उत्कृष्ट बनाये रखना तप है।

धूप में बैठना, जाड़े की ऋतु में शीत में बैठना, पानी में बैठे रहना, यह सब शरीर को कष्ट देना है। इसको कहते हैं काया कष्ट। यह हठयोग है, आसुरी तप है। गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं कि जो अपने अन्तःकरण को पीड़ा देते हुये कठोर तप करते हैं, उनके तप को आसुरी तप कहा जाता है।

अभी ४२ डिग्री का तापमान चल रहा है। आप सारे कपड़े उतारकर यदि धूप में बैठें और चारों तरफ आग सुलगा लें, तो दुनिया में यह प्रसिद्धि फैल जायेगी कि देखो! यह इतना बड़ा तपस्वी है कि तपती दोपहरी में बैठा है। लेकिन यह मात्र आसुरी तप माना जायेगा।

राजसी तप किसको कहते हैं? अपनी प्रतिष्ठा के लिये संसार को बताकर तप करना। जैसे, कोई दो साल साधना करेगा, तो उसका समापन कैसे करेगा? पूरे

इलाके का भण्डारा करेगा कि देखो आज अमुक महाराज की इतने साल की तपस्या पूरी हुई है। सब लोगों को भोजन करने चलना है।

सात्विक तप किसको कहते हैं? निष्काम भावना से जिसने आत्म-जाग्रति के लिये मन एवं इन्द्रियों का संयम किया है, ब्रह्मचर्य का पालन किया है, स्वाध्याय किया है, सत्संग किया है, उसको सात्विक तप कहते हैं।

स्वाध्याय का अर्थ होता है आत्म-चिन्तन। आध्यात्मिक ज्ञान देने वाले धर्मशास्त्रों का अध्ययन करना और सत्संग करना स्वाध्याय कहलाता है।

कोऽहम् कुतः आगतोऽस्मि, कुत्र गमिष्यामि।

मैं कौन हूँ? कहाँ से आया हूँ? कहाँ जाऊँगा? इनका चिन्तन करते रहना स्वाध्याय है। उपन्यास पढ़ना

स्वाध्याय नहीं है।

प्रणिधान, जो पाँचवा नियम भी है, का अर्थ है परमात्मा पर सर्वस्व समर्पण। समाधि की ओर ले जाने वाली वस्तु है "ईश्वर प्रणिधान" अर्थात् परमात्मा पर सब कुछ समर्पित कर देना। न मैं सिद्ध हूँ, न देवता हूँ, न महामुनि हूँ, न ब्रह्ममुनि हूँ। इन सारे द्वन्द्वों से उपर उठकर केवल तू है और यह तेरा पसारा है। "मैं तो तुम्हारी कीयल।" बस एक बात याद रख लीजिये कि मैं केवल आपकी हूँ। न मेरे पास ज्ञान है, न भक्ति है, और न किसी तरह का बल है। यह भावना जब आ जाती है और सब कुछ उस प्रियतम को सौंप दिया जाता है, तो उसे कहते हैं— ईश्वर प्रणिधान।

समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्।

समाधि की अवस्था कब प्राप्त होती है? परमात्मा पर अटूट समर्पण से। समर्पण सबसे बड़ी चीज है। समर्पण कहने के लिये तो बहुत सरल है, किन्तु वास्तव में सबसे कठिन वस्तु है।

पत्नी कहती है कि मेरा शरीर तो आपका है, वास्तव में उसने समर्पण नहीं किया होता है। पति कहता है कि मैं तो केवल तुम्हारा हूँ। दोनों एक-दूसरे को धोखा दे रहे होते हैं। जहाँ किसी का हित प्रभावित हो, वह वचन भूल जायेगा। पिता कहता है— "बेटा! मैं तो तुम्हारे लिये ही यह सब कर रहा हूँ।" पुत्र भी यही कहेगा, "पिता जी! यह शरीर आपका है।" शिष्य कहता है गुरु से, "गुरुदेव! मेरा तन-मन आपका है।" लेकिन यथार्थ में समर्पण किसी में नहीं होता। हर कोई एकलव्य नहीं बन सकता, हर कोई शिवाजी नहीं बन सकता, और न हर

कोई महाराजा छत्रशाल जी की तरह समर्पण करने वाला बन सकता है।

स्वार्थमय सबको बनाया है यहां करतार ने।

जिस दिन मनुष्य स्वयं की चिन्ता करना बन्द कर अपने परमात्मा का चिन्तन करना शुरू कर देगा, उस दिन वह सामान्य नहीं रहता। शिवाजी ने केवल एक बात समझी कि गुरुदेव का आदेश क्या है। छत्रशाल जी ने केवल एक बात समझी कि मेरे प्रियतम अक्षरातीत का आदेश क्या है। आप चितवनी में बैठते हैं, तो आप यह चिन्ता मत कीजिये कि क्या होने वाला है। जिसको आप दिल में बसा रहे हैं, उसको चिन्ता करनी है।

एक बार श्री देवचन्द्र जी ऐसे ही चिन्तित रहने लगे। वे सोचते थे कि बिहारी जी अब बड़े हो रहे हैं। यमुना भी

बड़ी हो रही है। इनका क्या होगा? राज जी ने उनसे कहा कि आपको जो काम दिया गया है, वही कार्य करते रहिये। बिहारी जी और यमुना जी की चिन्ता करने का काम आपका नहीं। कहने का तात्पर्य क्या है? यह हमारे लिये सिखापन है।

हम सोचते हैं कि हमारे बेटे का क्या होगा? हमारी पोती का क्या होगा? हमारे समाज का क्या होगा? ऐसा संशय इसलिये बना रहता है, क्योंकि उस प्रियतम को आपने समर्पण नहीं किया। जब तक आप समर्पण की भाषा नहीं समझेंगे, एक-दो वर्ष नहीं लाखों वर्षों तक कोई आँखें बन्द करके चितवनी करता रहे, तब भी चितवनि लगने वाली नहीं, और न ही समाधि की प्राप्ति होगी।

समाधि सिद्धिः ईश्वर प्रणिधानात्।

मनुष्य में अहम् होता है और अहम् के बीज में क्या होती है— अस्मिता। जैसे बाहर हवा बह रही है, पवन के बीज में क्या है? वायु। यश के बीज में क्या है? कीर्ति। आनन्द के बीज में क्या है? उमंग। सौन्दर्य के बीज में क्या है? शोभा। उसी तरह से अहंकार भी मिट जाता है, तो अस्मिता रहती है।

एक अहंकार होता है, तामस अहंकार, अर्थात् मेरे जैसा इस पृथ्वी पर कोई ज्ञानी नहीं है। राजस् अहंकार क्या है? परमात्मा की कृपा से मैं एक उच्च स्तर का ज्ञानी हूँ। मैं ज्ञानियों की चरण धूलि हूँ, यह सात्विक अहंकार है। कोई यह नहीं कहता कि मैं मूर्खों की चरणधूलि हूँ। ज्ञानियों की चरणधूलि बनना तो सरल है। मूर्खों की चरणधूलि बनना कौन स्वीकार करेगा? ये तीनों तरह के अहंकार हैं। यदि तीनों मिट जाते हैं, तो भी अस्मिता का

बीज बना रहता है कि मुझे ज्ञान चाहिये। चाहे थोड़ा चाहिये। जहाँ ये "मैं" आ जाती है, वही अस्मिता है। मैं हूँ ही नहीं, ये बात याद रखिये।

मैं बिना मैं मरे नहीं।

परात्म की मैं लीजिये। अब परात्म का स्वरूप किसका है— राज जी का। परात्म का तन किसका है— राज जी का। अक्षरातीत का दिल ही तो परात्म के रूप में है और आपकी आत्मा क्या है— परात्म का प्रतिबिम्ब।

जैसे आप यहाँ बैठे-बैठे सो गये। सोते हुये आप दिल्ली चले गये। दिल्ली में इण्डिया गेट के सामने खड़े होकर आप वहाँ का दृश्य देख रहे हैं। आपके शरीर से कुछ निकलकर तो गया नहीं। आपका वजन भी सोते समय उतना ही है, जितना जाग्रत अवस्था में है। लेकिन

आपका एक रूप दिल्ली में इण्डिया गेट के सामने खड़ा है। उसके भी दो हाथ, दो पैर होंगे, वैसी ही नासिका होगी। जैसे आप जाग्रत अवस्था में बोलते थे, सपने में भी वैसे ही बोल रहे हैं। वैसे ही आपकी परात्म की जो नजर है, सुरता के रूप में राज जी के दिल से होकर अपने श्रृंगार के साथ इस संसार में जीव के ऊपर बैठकर खेल को देख रही है, जिसे कहते हैं आत्मा।

सिफत ऐसी कही मोमिन की, जाके अक्स का दिल अर्स।

लेकिन यह जो आपने पाँच तत्वों का पुतला धारण कर रखा है, यही सबसे बड़ी बाधा है। यह साधन है। इसके बिना संसार में राज जी मिल भी नहीं सकते, लेकिन इसका मोह हमें राज जी से दूर किये जा रहा है। "पिण्ड और ब्रह्माण्ड" में धनी की लीला चल रही है। पिण्ड में हमारी आत्मा जीव के ऊपर विराजमान है,

लेकिन इसका मोह जहाँ हमें माया में फँसाता है, वहीं इसका सही उपयोग हमें धनी से मिलाप करा देता है।

जो मूल स्वरूप हैं अपने, जाको कहिए परआत्म।

सो परआत्म संग लेयके, विलसिए संग खसम॥

चितवनि करते समय आपको अपनी परात्म का श्रृंगार सजना होगा। यदि कोई सोचे कि परात्म का श्रृंगार किये बिना इस शरीर से हम परमधाम चले जायेंगे, तो सबसे बड़ी भ्रान्ति है। आपकी परात्म क्या है? श्यामा जी की स्वरूपा है।

यहाँ जितने सुन्दरसाथ बैठे हैं, उनमें किसी का रंग साँवला है, किसी का रंग भूरा है, कोई लम्बा है, कोई गोरा है, कोई ठिगना है। कोई आत्मा स्त्री का शरीर लिये बैठी है, तो कोई आत्मा पुरुष का शरीर लिये बैठी है,

कोई बूढ़े के तन में है, तो कोई बच्चे के तन में है। यह शरीरों की आकृति है। इन सबको भुला दीजिये। आपके पास इतना ज्ञान है, आप इतने बड़े तपस्वी हैं, मठाधीश हैं, गृहस्थ हैं, ऊँचे कुल के हैं कि नीचे कुल के हैं, सब को भुला दीजिये। आप इस पृथ्वी के मालिक हैं, यह भी भुला दीजिये। जब तक आप "मैं" का अस्तित्व रखेंगे, आपके अन्दर प्रेम नहीं आ सकता क्योंकि—

केसरी दूध न रहे रज मात्र।

शेरनी का दूध सोने के बर्तन में ही सुशोभित होता है, पीतल या ताम्बे के बर्तन में नहीं, एल्यूमीनियम के बर्तन में नहीं। अक्षरातीत का प्रेम कब आयेगा?

जब मैं था तब हरि नहीं।

जब आप अपने अस्तित्व को मिटा देंगे, तो

अक्षरातीत का प्रेम आयेगा। विरह में तो यह भान हो सकता है कि मुझे धनी चाहिये, मेरी आत्मा तड़प रही है, लेकिन प्रेम में "मैं" समाप्त हो जाती है। उस समय अस्मिता भी नहीं रहेगी। केवल "तू" रह जाता है।

कर्मकाण्ड में भी हमारी संस्कृति में यह शिक्षा दी जाती है— **"इदं न मम्।"** हम आहुति देते हैं, तो कहते हैं कि यह मेरा नहीं है, लेकिन "मेरा" के लिये ही तो झगड़ा होता है। "मैं" हूँ और "मेरा" यह है। गृहस्थी लड़ता है कि मेरी सम्पत्ति है, विरक्त भी लड़ता है कि मेरा आश्रम है। मैं और मेरे के चक्कर में गृहस्थ भी बन्धन में है, विरक्त भी बन्धन में है। जिसने इस मैं और मेरे को छोड़ दिया, "तू" और "तेरा" को याद कर लिया, दिल में बसा लिया, उसी की चितवनि लगेगी, उसी की समाधि लगेगी। इसलिये नियम का पाँचवा लक्षण है प्रणिधान—

सर्वस्व समर्पण।

चितवनि के समय तो संसार को भूल जाइये। ऐसा कहने का यह भाव न समझ लीजिये कि मैं यह कह रहा हूँ कि आप घर-द्वार बेचकर सब में बाँट दीजिये और बच्चों को भगा दीजिये, क्योंकि राजन स्वामी ने कहा है कि मैं और मेरा छोड़ना है। जब तक चितवनि में बैठें, तब तक सब कुछ छोड़ दीजिये। शेष समय तो परिवार को भी पालना होता है, समाज को भी देखना होता है, लेकिन यह मानिये कि यह मेरा नहीं है। यह तो मैं अवश्य कहूँगा।

जनक जी को यह बोध था कि एक उत्तरदायित्व का पालन करने के लिये राजा बनाकर मेरे शरीर को बैठाया गया है। वास्तव में मैं राजा नहीं हूँ। मैं तो परमात्मा की आज्ञा से एक कर्त्तव्य का निर्वाह कर रहा

हूँ।

आप घर के मालिक हैं, तो अर्थ का संग्रह कीजिये, गृह निर्माण कीजिये, लेकिन दृष्टा के रूप में, मोह से ग्रसित होकर नहीं। यदि आप यह सोचते हैं कि यह मेरा घर है, तो यह भ्रम है। यह घर आपका घर नहीं है। आपका शरीर इस शरीर जैसा नहीं है। यह शरीर इस संसार को चलाने के लिये एक साधन मात्र है। आपको जो धन दिया गया है, वह भी आपका नहीं है। कुछ समय के लिये धन आपके पास है, बाद में आपसे ले लिया जायेगा। शरीर भी आपसे ले लिया जायेगा, और घर तो जबरन ले लिया जायेगा। जीते जी तो आप घर छोड़ेंगे नहीं। दस दिन के लिये भी आयेंगे, तो भी चिन्ता रहेगी— घर चलना है, घर चलना है।

जब शरीर छूट जायेगा तो, जिनके पीछे आपने

अपनी सारी जिन्दगी गुजारी, वही आपके लाडले आपके मुख में आग डाल देंगे और आपके शरीर को जलाकर आपकी राख को नदियों में फेंक देंगे। जीते जी संसार को नहीं छोड़ते, तो मरने के बाद तो छोड़ना ही पड़ता है, लेकिन यही आश्चर्य की बात है कि मनुष्य इसको समझ नहीं पाता कि मेरा क्या है।

जहाँ समर्पण की बात आती है, वहाँ केवल तू रह जाता है। दुःख है तो भी मुस्कुराहट कि मेरा प्रियतम है, वह देखेगा। सुख है तो उछलने-कूदने नहीं लगेंगे कि मेरे पास इतनी धन-दौलत हो गई। यही भावना रखनी चाहिये कि यह सब धाम धनी का है, मेरा कुछ भी नहीं। हर स्थिति में, चाहे सुख हो या दुःख हो, हानि हो या लाभ हो, जय हो अथवा पराजय हो, सभी अवस्थाओं में सम रहना ही तप है।

द्वन्द्व सहनं तपः।

द्वन्द्व किसको कहते हैं? सुख भी द्वन्द्व है, दुःख भी द्वन्द्व है। राग भी द्वन्द्व है, द्वेष भी द्वन्द्व है। हानि भी द्वन्द्व है, लाभ भी द्वन्द्व है। शीत, उष्ण, सर्दी, गर्मी, लाभ, हानि, जय, पराजय, मान, अपमान सभी द्वन्द्व हैं। और इन सारे द्वन्द्वों में जो एक समान रहता है, वही तपस्वी है।

आप देखते हैं कि खेल होता है, तो जो जीतता है वह उछलने लगता है और जो हारता है वह रोने भी लगता है। जो सच्चा खिलाड़ी होगा, वह क्या करेगा? वह उछलेगा भी नहीं और मुँह भी नहीं लटकायेगा क्योंकि वह तो एक समान अवस्था में बना हुआ है।

जो महान व्यक्ति होता है, वह सभी अवस्थाओं में

अपने को समान रखता है। फूलों के हार पहनाइये, तो फूल कर कुप्पा भी नहीं होगा। और कहीं जूते पड़ गये, तो दुःखी भी नहीं होगा।

हमारी एक संकीर्णता है कि हम दूसरे पन्थों के महापुरुषों का नाम लेने में अपमान समझते हैं। दत्तात्रेय जी ने चौबीस गुरु किये थे, वेश्या को भी गुरु मान रखा था। वह रास्ते में जा रहे थे, देखा कि यह वेश्या कितनी व्याकुल होकर अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही है। इतनी व्याकुलता से यदि मैं भी भक्ति करूँ, तो परमात्मा क्यों नहीं मिलेगा। उससे शिक्षा ली।

वही प्रसंग मैं चला रहा हूँ। एक घटना आपको बताता हूँ— काशी में वहाँ के पण्डितों से ऋषि दयानन्द का शास्त्रार्थ हो रहा था। एक तरफ केवल कमर में लंगोट बाँधे हुए, पूरा शरीर नंग-धड़ंग रखे दयानन्द, दूसरी

ओर काशी के राजा के एक दर्जन विद्वानों का समूह। शास्त्रार्थ हो रहा था कि "वेद में मूर्तिपूजा है या नहीं?"

दयानन्द जी के प्रश्नों का उत्तर न विशुद्धानन्द दे सके, न कोई अन्य पण्डित दे सका। दस हजार विरोधी लोग खड़े थे। जब देखा कि हमारे पण्डित हार रहे हैं, तो राजा ने अपने पण्डितों की झूठी जयकार लगा दी कि दयानन्द हार गये और परिणाम यह हुआ कि लोगों ने जूते, चप्पल, पत्थर, जिसको जो मिला दयानन्द के ऊपर फेंकना शुरू कर दिया।

एक विद्वान सन्यासी यह दृश्य देख रहे थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा— "चलो मैं देखता हूँ कि दयानन्द का चेहरा कैसा है?" एक-दो घण्टे के बाद जाकर देखा कि दयानन्द तो खूब हँस रहे हैं और बगीचे में टहल रहे हैं, जैसे कि कुछ हुआ ही नहीं। उनसे बात करके आये

और अपने शिष्यों से बोले कि देखो! एक दिन दयानन्द की पताका सारी दुनिया में फैल जायेगी और ये आज जो पत्थर फेंकने वाले हैं, सिर नीचा करके रहेंगे। आज मैं उस महामानव को देखकर आया हूँ। उसके चेहरे पर तो उदासी का कोई लक्षण ही नहीं है। जिसने इतने अपमान को सहन कर लिया, संसार में कोई उसको जीतने वाला नहीं है। यह बात ध्यान में रखिये, क्योंकि वह तप के शिखर पर पहुँच गया।

बड़े से बड़ा तपस्वी भी अपमान पाकर तिलमिला जाता है, लेकिन जो अपमान मिलने पर भी धैर्य बनाये रखता है, सम्मान मिलने पर भी फूलकर कुप्पा नहीं होता, निश्चय ही वह महान है। यदि हजारों आदमी आपकी आरती करने के लिये खड़े हो जायें या साष्टांग लेट जायें, तो आप सोचेंगे कि मैं कितना बड़ा हो गया हूँ।

कभी आकाश की तरफ आँख खोलकर तो निहारिये। आपकी पृथ्वी जैसी असंख्य पृथ्वियों से भी बड़े नक्षत्र आकाश में घूम रहे हैं। इनको बनाने वाला परमात्मा कैसा होगा? उसकी महिमा से ही आपकी महिमा है, आपकी कोई व्यक्तिगत महिमा नहीं है।

जब हम किसी बड़े मठ के स्वामी बन जाते हैं या किसी राज्य के राजा बन जाते हैं, तो अभिवादन करने वालों की भीड़ लग जाती है, तो हम फूलकर कुप्पा हो जाते हैं कि मैं इतना बड़ा हो गया हूँ। किन्तु यह हमारी सबसे बड़ी भूल होती है। यह गौरव हमें उस परमात्मा को देना चाहिये। यदि हमने सम्मान और अपमान को एक तराजू पर तौल दिया, तो याद रखिये सारा संसार एक दिन हमारी राह का अनुगामी बन जायेगा। इसलिये ऋषि ने कहा – "द्वन्द्व सहनं तपः।"

तपस्वी कौन है? जो सभी द्वन्द्वों को सहन करता है। योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं—

सुखे दुःखे समं कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्यसि॥

हे अर्जुन! लाभ, हानि, जय, पराजय, मान, अपमान, सुख, दुख में तू समान हो जा। युद्ध करना तेरा कर्त्तव्य है, किन्तु निष्काम भावना से तू युद्ध कर। धर्म की रक्षा के लिये कर्त्तव्य कर, राज्य का भोग करके विषय—सुख को पाने के लिये नहीं।

यही हमारा मानव जीवन होना चाहिये। चितवनी की राह पर चलने वाले सुन्दरसाथ को यह ध्यान रखना चाहिये कि वे हर अवस्था में अपने को सम रखने का प्रयास करें। बड़प्पन ऊँचे आसन पर बैठने से नहीं होता।

यदि आप चाँदी के सिंहासन पर बैठ गये, मठाधीश हो गये, तो इसका आशय यह नहीं कि आप परमहंस हो गये। आप ज्ञान के आसन पर विराजमान होइए, विनम्रता के आसन पर विराजमान होइए।

अब जो घड़ी रहो साथ चरने, होए रहियो तुम रेणु समान।

इत जागे का फल एही है, चेत लीजो कोई चतुर सुजान॥

कोई चेतो चतुर सुजान, किस परिप्रेक्ष्य में कहा गया है? एक बार परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी ने एक कार्यक्रम में समाज की सारी विभूतियों को इकट्ठा कर रखा था। उसमें पण्डित कृष्णदत्त शास्त्री जी भी थे, जामनगर के महाराज धर्मदास जी थे, ठाकुरदास जी भी थे, और धर्मगुरु पण्डित प्यारेलाल जी भी थे। सभी महानुभावों ने सोचा "मैं बड़ा-मैं बड़ा।" मैं क्यों किसी के

आगे शीश झुकाऊँ।

जब सब लोग लेटे हुये थे, परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी आये और एक-एक के चरण छूने लगे। अब तो सब लोग अपने-अपने पलंग से उठकर खड़े हो गये, क्योंकि सबको मालूम था कि ये तो मानेंगे नहीं, सबके चरण छूयेंगे, और अन्ततोगत्वा यही हुआ। सबने मिलकर निर्णय किया कि हम कितने अभिमान में भरे हुए थे। हम सोचते थे कि हम बड़े हैं, हम बड़े हैं। परमहंस वास्तव में यही हैं, जिनको अभिमान छू तक नहीं गया।

याद रखिये, जिसके पास जितनी विद्वता होगी, वह उतना ही विनम्र होगा। जो सच्चा धनवान होगा, वह कभी धन का अहम् नहीं करेगा। जो जितना आध्यात्मिक बल से सम्पन्न होगा, वह कभी सोने-चाँदी के छत्र और चँवर का प्रयोग नहीं करेगा, कभी मठाधीश होने का लोभ नहीं

करेगा। विनम्रता उसकी सबसे बड़ी सम्पदा है।

बुद्ध को गालियाँ पड़ रही हैं, महावीर स्वामी को गालियाँ पड़ रही हैं, ईसा को सूली पर कील से ठोका जा रहा है, और उन सबके चेहरे पर मुस्कुराहट है। इससे बड़ी विनम्रता और महानता क्या हो सकती है। दुनिया एक न एक दिन इनके चरणों में झुकी।

यदि हम अकड़ ले लेते हैं कि तुमने हमसे ऐसा क्यों कहा? हमारी इज्जत चली गई। परिणाम क्या होगा? हम सामान्य पुरुषों की तरह हो गये। गाली का उत्तर गाली से देने वाला महान नहीं होता। हमें आत्म-सम्मान नहीं खोना चाहिये, लेकिन अभिमान भी नहीं करना चाहिए। अभिमान पाप का मूल है और स्वाभिमान आत्म-कल्याण का मूल है।

स्वाभिमान और अभिमान में अन्तर क्या है? अभिमान होता है रूप का, अभिमान होता है धन का, अर्थात् बाह्य पदार्थों का अहंकार करना अभिमान है। आत्मा का भाव रखना कि मैं आत्मा हूँ, इसको कहते हैं स्वाभिमान। स्वाभिमान कभी भी न खोइए।

यदि आप किसी गरीब को दुत्कार देते हैं और धनवान के आगे हाथ जोड़े खड़े होते हैं, तो यह अपने स्वाभिमान को बेचने जैसा है। आप अपने देश की निन्दा करते हैं और विदेश की महिमा गाते हैं। यह स्वाभिमान को खोना है। न विदेश की महिमा गाइये, न अपने देश की निन्दा कीजिये। जो जैसा है, वैसा ही कहिये। इसको कहते हैं स्वाभिमान।

योगी को इन सारे द्वन्द्वों से परे होकर कूटस्थ होना चाहिये और अपनी सांसारिक उपलब्धियों का कभी भी

अहम् नहीं पालना चाहिये। इसे कहते हैं द्वन्द्व से रहित होना। यही तप है। चारों ओर आग जलाकर धूप में बैठना तप नहीं है। ब्रह्म में विचरण करना तप है।

ऋतं तपः दम तपः सत्यं तपः स्वाध्याय तपः ब्रह्मचर्यम् तपः।

यथार्थ सत्य, निरपेक्ष सत्य को मानना। ऐसा सत्य, जिसको प्रमाणित करने में किसी की अपेक्षा न हो, और एक होता है सापेक्ष सत्य, जिसको सिद्ध करना पड़े कि यह सत्य है। सत्य को किसी भी रूप में मानिये, यह तप है। धर्मग्रन्थों का स्वाध्याय करना, ब्रह्म के प्रेम एवं स्वरूप में विचरण करना, यही ब्रह्मचर्य है। यदि आप राज जी का ध्यान करते हैं, तो आप तपस्वी हैं। आपको तपस्वी कहलाने के लिये बोर्ड लगाने की आवश्यकता नहीं है।

यदि कोई व्यक्ति फल खाने लगता है, तो क्या कहता है? देखो! मैं तपस्वी हूँ। यह तो अहम् की वृद्धि है। जो सच्चा तपस्वी है, वह फलाहार मात्र से अपने को तपस्वी क्यों कहेगा? जो सच्चा ज्ञानी है, अपने आगे ज्ञान की उपाधि क्यों लगायेगा? जो सच्चा प्रेमी है, वह परमहंस कहलाने के लिये ललचायेगा क्यों? उसको तो अपना प्रियतम मिल चुका है। वह संसार से किसी प्रतिष्ठा की आशा नहीं करेगा।

चितवनी के सन्दर्भ में जो पाँच नियम हैं— शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान, उसकी मैं व्याख्या कर रहा था।

दुःखी होने का कारण क्या है? असन्तोष।

रहीमदास जी ने कहा है—

गोधन गजधन बाजिधन, और रतनधन खानि।

जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समानि॥

आपको एक कुन्तल हीरे मिल जायें, फिर भी क्या आपको सन्तोष हो सकेगा? उत्तर मिलेगा— नहीं। यदि आपने सन्तोष—धन प्राप्त कर लिया, तो सारी पृथ्वी का धन भी मिट्टी के समान लगेगा। आपने बीतक में जयराम कंसारा का हाल तो देखा ही है। श्री जी ने कितने कठोर शब्दों से उनको जाग्रत किया।

संसार के पास सन्तोष नहीं है। लेकिन सन्तोषी होने का मतलब यह नहीं कि हम आलसी बने रहें। हमारे देश के लोगों ने पुरुषार्थ छोड़ दिया और क्या कहना शुरू कर दिया—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।

दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

जब सबको देने वाला परमात्मा ही है, तो काम करने की क्या आवश्यकता है? अध्यात्म निठल्लापन पैदा नहीं करता।

इस देश में लगभग अस्सी लाख महात्मा हैं, लेकिन दुःख की बात है कि यदि अस्सी लाख में एक लाख भी पुरुषार्थी महात्मा होते, तो हिन्दू धर्म की दुर्दशा नहीं होती। ये मठों में सोते रहते हैं, आराम करते रहते हैं। यदि आप समाज को कुछ ज्ञान नहीं दे सकते, तो आप वनों में चले जाइये, मठों में क्यों रह रहे हैं, आश्रमों में क्यों रह रहे हैं? जब आप समाज का दिया हुआ अन्न ग्रहण करते हैं, तो आपको बदले में समाज को ज्ञान देना

होगा, अन्यथा निष्क्रिय बने रहना पाप है। पुरुषार्थी व्यक्ति ही अध्यात्म के शिखर पर चढ़ता है, आलसी व्यक्ति कभी नहीं। आलसी व्यक्ति न तो स्वाध्याय कर सकता है, न सेवा कर सकता है, और न ध्यान कर सकता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में वह आगे नहीं बढ़ सकता।

एक बार दो आलसी सो रहे थे। एक व्यक्ति उधर से गुजरा। एक ने कहा, "भाई! इधर आकर जाओ। मेरा डण्डा वहाँ पर गिरा है, उसको उठाकर मेरे हाथ में पकड़ा दो।" वह व्यक्ति बोला, "तुम हट्टे-कट्टे हो, स्वयं भी तो उठा सकते हो।" तभी दूसरा आलसी बोला, "यह तो महाआलसी है। कल एक कुत्ता आकर मेरा मुँह चाट रहा था। यह मेरे पास ही लेटा था, लेकिन इसने कुत्ते को भगाया नहीं।" तुम दूसरों से आशा रखते हो कि कोई

तुम्हारे कुत्ते को भगा दे। तुम क्या करोगे?

आप देखिये कि जिस हिन्दू धर्म में अस्सी लाख महात्मा रहते हों, उस हिन्दू धर्म की इतनी दुर्दशा कि अस्सी प्रतिशत हिन्दुओं को गायत्री मन्त्र याद नहीं। अस्सी-नब्बे प्रतिशत लोगों ने चारों वेद नहीं देखे। एक हजार पन्थ हैं, बारह सौ जातियाँ हैं, जिनमें लड़ाई-झगड़े चलते ही रहते हैं। ये पत्थरों और पेड़ों की पूजा में लगे रहते हैं। इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा? और वह भी अस्सी लाख महात्माओं के रहते-रहते। संसार में अस्सी लाख मौलवी नहीं होंगे, और न अस्सी लाख पादरी ही होंगे। केवल खाना, पीना, और सो जाना सन्यास के लक्षण नहीं हैं।

कुम्भ के मेले पर नागा महात्माओं का जुलूस निकलता है। ये दुनिया को दिखाते हैं कि हम नंगे हैं,

सबसे बड़े त्यागी हैं। यदि उनके स्नान करते समय बीच में कोई बेचारा गृहस्थी आ गया, तो उसकी शामत नहीं। उसकी मौत ही उस दिन आनी है। दूसरे पन्थ का भी कोई महात्मा आ गया, तो उसको उठाकर फेंक देंगे। यह कैसा अध्यात्म है?

पुरुषार्थ का तात्पर्य है निष्काम पुरुषार्थ। श्री कृष्ण योगेश्वर हैं, लेकिन सारा कार्य कर रहे हैं। राज्य का संचालन भी कर रहे हैं। युद्ध की सारी नीति भी वही बना रहे हैं। अर्जुन के सारथी भी हैं और रथ पर बैठे-बैठे अपनी ब्राह्मी अवस्था में गीता के अठारह अध्याय का श्रवण भी करा दिया।

निठल्ला व्यक्ति कभी भी ध्यान-साधना नहीं कर सकता। आलस्य और प्रमाद आपका सबसे बड़ा शत्रु है। इसलिये धन का मोह न कीजिये, संसार का मोह न

कीजिये, हाय-हाय न मचाइये, लेकिन निठल्ले मत रहिये। अपना समय आध्यात्मिक चिन्तन में लगाइये, स्वाध्याय में लगाइये, ज्ञान का अर्जन और उसका प्रकाश फैलाने में लगाइये। इसलिये जो मलूकदास जी के वचन हैं, उसका ऐसा अर्थ नहीं करना चाहिये कि निठल्ले बैठे रहो। सृष्टि में कोई भी स्थिर नहीं है। हवा चल रही है, यदि रुक जाये तो क्या होगा? सूर्य एक जगह ही दिखने लगे, पृथ्वी की गति रुक जाये, नक्षत्रों की गति रुक जाये, तो क्या होगा? सृष्टि का प्रलय हो जायेगा।

हमको किसने अधिकार दिया निठल्ले बैठे रहने का? जो समाज का सबसे ऊँचा वर्ग है, जिससे आशा की जाती है कि वह समाज को ज्ञान देगा, वही निठल्ले होकर अपने आश्रमों, मन्दिरों, और मठों में सोये रहें, तो निश्चित है कि उस समाज का पतन हो जायेगा। इसलिये

सन्तोष का तात्पर्य है, "निष्काम कर्म करते रहना।"

पढ़ना हमारा कर्त्तव्य है, उत्तीर्ण होते हैं तो उछलना नहीं और असफल होते हैं तो रोना नहीं। कृषि करना हमारा कर्त्तव्य है, फसल सूख गई तो छाती पीटकर रोना नहीं, और यदि फसल ज्यादा हो गई तो उछलना-कूदना नहीं। व्यवसाय करने पर एक करोड़ का घाटा हो गया तो अटैक आने लगा, दस करोड़ का लाभ हो गया तो मूँछे अकड़ने लगी। यह दोनों ही अज्ञानता है। आप फल की इच्छा से रहित होकर कर्म करते जाइये। इसको कहते हैं निष्काम भाव से, सन्तोष वृत्ति बनाये रखना। हमें खेल में द्रष्टा होना है, स्वयं खेल नहीं बनना है।

तुम आईयां छल देखने, भिल गईयां माहें छल।

छल को छल न लागहीं, ओ लहरी ओ जल॥

इसलिये योगदर्शन में लिखा है—

सन्तोषात् अनुत्तम सुख लाभः।

सन्तोष की प्रवृत्ति जिसने अपना ली, उसको उत्तम से उत्तम सुख की प्राप्ति होती है। सुखी कौन हैं? जो सन्तोषी है। आज एक गाड़ी है। अगले साल इच्छा है कि चार गाड़ियाँ हो जायें, उसके बाद चाहेंगे कि दस गाड़ियाँ हो जायें, फिर भी सन्तोष नहीं। इन्हीं तृष्णाओं को पूरा करते-करते हम बूढ़े हो जायेंगे और आध्यात्मिक शान्ति से कोसों दूर हो जायेंगे। इसलिये जो मिला है, उसी में मुस्कुराते रहिये।

परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी कहा करते थे कि कभी घी घने अर्थात् कभी घी के बने अच्छे व्यञ्जन मिल गये, कभी मुट्ठी भर चने, और कभी वे भी

मने अर्थात् कभी हो सकता है कि दो मुट्ठी चना भी न मिले। तब भी आप मुस्कराते रहिये। आपके चेहरे पर कोई गिला-शिकवा न हो, क्योंकि हाथ किसने पकड़ा है? अक्षरातीत ने पकड़ा है। चिन्ता कौन करेगा? जिसका कोई न हो। आपके सिर पर तो अक्षरातीत हैं, फिर भी आप चिन्ता में क्यों डूबे रहते हैं?

ऋतं तपः दम तपः सत्यं तपः।

अर्थात् मन, वाणी, एवं कर्म से सत्य का पालन करना ही तप है। स्वाध्याय तप है। सुन्दरसाथ यदि प्रतिदिन एक घण्टा स्वाध्याय करते हैं, जिसमें एक घण्टे में पाँच सौ चौपाई पढ़ते हैं या दस पृष्ठ पढ़ लेते हैं, तो एक महीने में तीन सौ पृष्ठ पढ़ लेंगे और एक वर्ष में तीन सौ पृष्ठों की बारह किताबें पढ़ लेंगे। दस वर्षों में एक सौ बीस किताबें पढ़ लेंगे। आप कल्पना कीजिये, इसी तरह

से यदि आप एक घण्टे नियमित स्वाध्याय करते हैं, तो आप कहाँ से कहाँ पहुँच जायेंगे।

आयरलैण्ड के एक लेखक हुए हैं, जिनका नाम जार्ज बर्नाड शॉ है। वह प्रतिदिन केवल पाँच पृष्ठ लिखते थे और विश्व के प्रसिद्ध लेखक हो गये। जो प्रतिदिन पाँच पृष्ठ लिखेगा, एक महीने में डेढ़ सौ पृष्ठ लिखेगा, और वर्ष में समझ लीजिये कितने ग्रन्थ लिख लेगा? यह है समय का सदुपयोग। एक निश्चित समय पर एक कार्य अवश्य कीजिये।

योगेश्वर श्री कृष्ण को देखिये। अपनी रानियों के बीच में रहते हैं, महल में रहते हैं, सखाओं के साथ रहते हैं, सबके साथ हैं, पर अन्दर से उनका ध्यान कहीं और है। जनक जी को देखिये। सबके बीच सिंहासन पर बैठे हैं, किन्तु अन्दर से कहीं और हैं। महाराज छत्रसाल जी को

देखिये, सिंहासन पर बैठे हैं, लेकिन अन्दर से सिंहासन पर नहीं हैं, उनकी सुरता परमधाम में घूम रही है।

संसार के सारे कार्यों को आप निपटाइए, लेकिन यह न मानिये कि यह मेरा घर है, यह मेरा धन है, यह मेरा शरीर है। मैं और मेरे के चिन्तन से रहित होकर दृष्टा भाव से आप संसार के सारे कार्यों को करते जाइये। इसलिये ज्ञान की जरूरत है, विवेक, वैराग्य की जरूरत है। केवल यह कह देना कि हम घर में ही रहकर कमल के फूल की तरह रहेंगे, तो कमल के फूल की तरह बनने के लिये कमल की तरह आपको निर्लिप्त बनना पड़ेगा।

कमल में क्या गुण है? उसमें सौन्दर्य है, कोमलता है। आप कमल के फूल की तरह अपने हृदय को सुन्दर बना लीजिये। जब काम, क्रोध, मद, लोभ, अहंकार से रहित हो जायेंगे, तो आप घर में रहकर भी संसार से

अलग रहेंगे। लेकिन यदि आप कमल के फूल की तरह अपने हृदय को भक्ति से कोमल नहीं बना सके, निर्मल नहीं बना सके, तो आप अखण्ड का रस नहीं ले पायेंगे।

आपके अन्दर कमल जैसी ज्ञान की, भक्ति की, विनम्रता की सुगन्धि नहीं फैली, तो आप चाहे जंगल में आश्रम बनाकर रहें या घर में रहें, दोनों जगह आपको माया दबोच लेगी। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय के विषय में मैंने कह दिया। प्रतिदिन आप स्वाध्याय करेंगे, तो यही ज्ञान आपको शिखर तक पहुँचा देगा। योगदर्शन में लिखा है—

स्वाध्यायात् इष्ट देवता सम्प्रयोगः।

स्वाध्याय से ऋषि, मुनि, और विद्वानों का सत्संग मिलता है। यदि आप प्रतिदिन स्वाध्याय करते रहेंगे, तो

परिणाम क्या होगा? आपके ज्ञान में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जायेगी। हिन्दुस्तानियों की आदत है, व्यर्थ की गप्पे मारने की।

अभी कुछ दिन पहले मैं वडोदरा से आ रहा था। मेरे डिब्बे में एक अमेरिकन जोड़ा आकर बैठ गया। पति-पत्नी थे। तीन-चार घण्टे बैठे रहे और मैंने देखा कि चार घण्टों में उन्होंने कभी भी जोर से निरर्थक बात नहीं की। मेरे पास दोपहर के सूरज का अंग्रेजी अनुवाद था। मैंने उन्हें वह किताब दी। कभी वह पढ़ता, कभी उसकी पत्नी पढ़ती। जो हमसे बातें हुई, उन्होंने उसे अपने लैपटाप में सुरक्षित कर लिया। शेष समय में उन्होंने कुछ और पुस्तकें निकालकर पढ़ लीं, लेकिन मेरे अगल-बगल उस डिब्बे में जितने भी भारतीय थे, किसी को भी मैंने पढ़ते हुए नहीं देखा। सभी गप्पे मार रहे थे, शोर मचा रहे

थे। कोई ताश खेल रहा था, तो कोई मोबाईल पर जोर-जोर से बातें कर रहा था। किसी को भी समय की कीमत का पता नहीं। यही हमारा निठल्लापन है। बहनें बैठ जायेंगी, तो केवल माया की बातें करेंगी। चार भाई बैठ जायेंगे, तो केवल निन्दा ही निन्दा करेंगे। यह नहीं समझते कि जो हमारा समय व्यर्थ चला जायेगा, वह इस सृष्टि में दोबारा मिलने वाला नहीं है। यह स्वाध्याय है।

यदि आप स्वाध्याय से अपने ज्ञान की वृद्धि करते रहेंगे, तो परिणाम क्या होगा? आपका ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा और इसके द्वारा आपका सम्बन्ध ऊँचे से ऊँचे आध्यात्मिक व्यक्तित्व से होना शुरू हो जायेगा। इस देश के पुस्तकालय सूने पड़े रहते हैं। अपने ज्ञानपीठ का पुस्तकालय भी मैं कहूँगा कि सूना है। इसके निर्माण में तीस लाख से अधिक खर्च हुआ है, पर मुझे कभी नहीं

दिखा कि तीस व्यक्ति बैठकर इसमें पढ़ रहे हों।

हमें अपनी प्रवृत्ति बदलनी पड़ेगी। यदि आप चितवनि की राह पर चलते हैं, तो यह ध्यान रखना होगा कि हमारा एक-एक मिनट मूल्यवान है। हमारा मन चितवनि में लगे, सेवा में लगे, सत्संग में लगे, या स्वाध्याय में लगे। किसी-न-किसी कार्य में आप लगे रहिये। व्यर्थ की निन्दा, चुगली, वार्ताओं में आपको कुछ भी उपलब्धि नहीं होने वाली है। ये पाँच नियम हैं— शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर प्रणिधान। सबसे मुख्य है ईश्वर प्राणिधान।

आप पाँच यमों का पालन कर लीजिये, चार नियमों का पालन कर लीजिये, धारणा-ध्यान खूब लगाइए, लेकिन जब तक आपको समझ की भाषा नहीं आती, आपकी समाधि कभी भी लगने वाली नहीं है, आपको

कभी भी राज जी का दीदार नहीं होगा। जिसने प्रेम की राह पा ली, उसने समर्पण की भाषा सीख ली। समर्पण वह करेगा, जिसने अपना दिल देना सीखा हो। हर व्यक्ति अपने बारे में सोचता है। जब आप दूसरों के बारे में सोचने लगेंगे, तो निश्चित है कि आप एक दिन शिखर पर पहुँच जायेंगे।

राजा रन्तिदेव के राज्य में एक बार अकाल पड़ा। लगभग कई महीनों तक वे भूखे रहे। पहले तो उन्होंने अपने सारे खजाने को लुटा दिया। जब कुछ नहीं बचा, तो महाराज स्वयं भूखे रहने लगे। कई दिनों तक भूखा रहने के पश्चात् कहीं से कुछ अन्न मिला। महाराज, उनके पुत्र, और महारानी ने सोचा कि आज कई दिनों के बाद भोजन मिलेगा।

उसी समय एक भिक्षुक आ जाता है। राजा, उनके

पुत्र राजकुमार, और उनकी पत्नी ने उसका एक भाग दिया। फिर कोई दूसरा आ जाता है। फिर कोई तीसरा आ जाता है। तीनों ने अपना आहार दे दिया और जैसे ही शयन हेतु जाने के लिये तैयार हुये, विष्णु भगवान प्रगट हो गये, "रन्तिदेव! सृष्टि में तुम्हारे जैसा कोई लाल ही नहीं, कोई महान नहीं।" यदि वे स्वयं खा लेते, तो आज कोई रन्तिदेव को याद नहीं करता।

बड़े-बड़े सेठों को क्यों रोग होता है? क्योंकि वे केवल अपने लिये जीते हैं। वे करोड़ों रुपये कमाकर अपने बेटे, पोते-पोतियों को देना चाहते हैं। उनके बेटे, पोते-पोती अपने बेटे, पोते, पोतियों को देना चाहते हैं। यह परम्परा चलती रहेगी, लेकिन दुनिया उनको कभी भी याद नहीं करेगी, क्योंकि वे अपने लिये जी रहे हैं, संसार के लिये नहीं जी रहे हैं। संसार में लाखों-करोड़ों

लोग भूखे हैं, नंगे हैं। हमें सबके कल्याण के बारे में सोचना चाहिये। अपने लिये तो पशु-पक्षी भी सोचते हैं।

कुत्ते को देखिये, जब तक उसके मुँह में रोटी का टुकड़ा रहेगा, तब तक सारे इलाके के कुत्ते उस पर टूट पड़ते रहेंगे। कुत्तों के कभी झुण्ड क्यों नहीं होते? क्योंकि कुत्ते कभी बाँटकर खाना नहीं जानते। जो मानव मानव को लूटता है, जो मात्र अपने बारे में सोचता है, उसकी तुलना पशुओं से की जाती है। आप परमधाम की ब्रह्मात्मा हैं, इसलिये आपसे अपेक्षा की जाती है कि आप दीन-दुखियों के बारे में सोचिये, आप सबके कल्याण का चिन्तन कीजिये, सबके बारे में सोचिये। यदि आप सबके बारे में सोचते हैं, तो आपके बारे में राज जी सोचेंगे। यदि आप केवल अपने ही बारे में सोचेंगे, तो राज जी आपके बारे में क्यों सोचेंगे?

हाँ, अपने बारे में यह सोचिये कि मेरे अन्दर अज्ञानता कितनी है? मेरे मन में विकार कितना है? दूसरों के विकारों को दृष्टिगत मत कीजिये। आत्म-चिन्तन कीजिये कि आज मैंने किसको कितना कटु वचन बोला? आज मैंने किसी का धन हरण तो नहीं किया? आज मैंने किसी को चाँटा तो नहीं मारा? आज मैंने अभक्ष्य तो नहीं ग्रहण किया? आज मैंने चितवनि तो बन्द नहीं कर दी? मुझे भविष्य में क्या करना है?

रात्रि को सोने से पहले राज जी का ध्यान करके अपने अवचेतन मन में आदेश दीजिये कि मैं निर्विकार हो रहा हूँ। यही संकल्प करके सो जाइये। फिर देखिये, कुछ ही दिनों में आप बदले हुए नजर आयेंगे। लेकिन इसके लिये आवश्यकता है, एक दृढ़ संकल्प की। यही दृढ़ संकल्प आपको आगे की तरफ ले जायेगा।

आज पाँच यम, पाँच नियमों की व्याख्या हो गई। मैं आशा करूँगा कि जो कुछ मैंने धाम धनी की कृपा से कहा है, आप इसे आत्मसात् करने का प्रयास करेंगे। कभी भी हमें अपने अन्दर पूर्णता का अहंकार नहीं करना चाहिये कि मेरे जैसा कोई ब्रह्मचारी नहीं, मेरे जैसा कोई त्यागी नहीं। "मैं" का पालन अहम् की वृद्धि करता है। यदि आपमें इश्क आ गया, तो इश्क का भी अहम् न कीजिये कि मेरे अन्दर इश्क है। किसी भी क्षेत्र में "मैं" न पालिये, क्योंकि आपको जो दिया जा रहा है, वह राज जी की कृपा से दिया जा रहा है। आप अपने ज्ञान का अहम् न पालिये। कोई व्यक्ति अज्ञानी है, तो उसकी अज्ञानता का उपहास उड़ाकर उसको लज्जित न कीजिए।

एक बार स्वामी विवेकानन्द विदेश गये हुये थे। एक

बार वे ऐसी बस्ती से गुजरे, जिसमें वेश्याएँ रहती थीं। उन वेश्याओं ने अपने हाव-भाव से उनको लुभाना चाहा, विवेकानन्द की आँखों से आँसू बहने लगे कि ये भी तो आत्मायें हैं। ये मेरे स्थूल बलशाली शरीर को देखकर पागल हुई जा रही हैं। इनको यह पता ही नहीं कि मेरी दृष्टि कहाँ है। इनके आत्मोद्धार के लिये विवेकानन्द की आँखों से आँसू बह रहे हैं। कहने का तात्पर्य है कि आप सारे संसार के कल्याण की भावना से जीवन बिताइये क्योंकि—

उदार चरितानाम् तू वसुधैव कुटुम्बकम्।

जिनका हृदय उदार होता है, उनके लिये सारी पृथ्वी का क्षेत्र ही अपना परिवार होता है। आप सुन्दरसाथ में कभी ये दीवारें मत खड़ी कीजिये कि मैं पंजाबी हूँ, मैं नेपाली हूँ, मैं गुजराती हूँ, मैं यू.पी. का हूँ।

यह महापाप है। सबके कल्याण के बारे में सोचिये। पहले दूसरों को खिलाइये, तब अपने बारे में सोचिये। पहले दूसरों के सुख का चिन्तन कीजिये, तब अपने बारे में सोचिये। फिर देखिये आप जहाँ जायेंगे। बिना पुकारे आपके राज जी आपके साथ-साथ जायेंगे, आपका नाम लेकर पुकारा करेंगे, आपके हृदय में प्रेम की सरिता बहेगी, और उस सरिता में अक्षरातीत श्री युगल स्वरूप के चरण कमल रहेंगे। जब वे आ गये तो बाकी क्या रहा।

तुम आये सब आईया, दुख गया सब दूर।

श्री महामति कहें सुख क्यों कहूँ, जो उदया मूल अंकूर॥

अब कल से अध्यात्म के अन्य विषयों पर व्याख्यान होगा।



तृतीय पुष्प

अब मैं सिद्धियों के बारे में कुछ कहना चाहूँगा। एक बात और बता देता हूँ, धारणा-ध्यान के बारे में। इतने सुन्दरसाथ बैठे हैं, आपमें से कितनों की इच्छा है आकाश में उड़ने की? मैं तरीका बता देता हूँ। आप उड़ भी सकते हैं, लेकिन राज जी से दूर हो जायेंगे। हाँ, दुनिया में पूजा शुरू हो जायेगी। साई बाबा के मन्दिर में करोड़ों का सोना चढ़ाया जा रहा है। लोग परमात्मा के नाम पर नहीं देते, लेकिन साई बाबा के नाम पर देते हैं, क्योंकि वे किसी को जिन्दा कर देते हैं, किसी को धन दे देते हैं, और किसी का रोग ठीक कर देते हैं।

दुनिया कहती है कि होगा कोई परमात्मा। वे बेचारे तो कह-कहकर थक जाते हैं कि सबका मालिक एक। दुनिया कहती है कि हमें यह शब्द नहीं सुनना है। हमारे

मालिक, हमारे परमात्मा तो आप ही हैं क्योंकि आप हमको धन देते हैं, आप हमारे बेटे की नौकरी लगा देते हैं, आप हमारी सारी कामनाओं को पूरा कर देते हैं। योगदर्शन में लिखा है—

ते समाधौ उपसर्गाः व्युत्थाने सिद्धयः।

ये जो सिद्धियाँ हैं, समाधि में बाधक हैं। कुल आठ सिद्धियाँ इस प्रकार हैं— अणिमा, गरिमा, लघिमा, वशित्व प्राप्ति, ईशितृत्व, प्राकामत्व, सर्वकाम, अवसायित्व। अणिमा— बहुत सूक्ष्म हो जाना। लघिमा— बहुत हल्का हो जाना। गरिमा— बहुत भारी हो जाना।

आप इतने सूक्ष्म हो गये कि अन्तर्धान हो गये, सबके सामने बैठे हैं किन्तु दिखाई नहीं पड़ रहे। इसके लिये क्या करना होगा? आपको भूतों (पाँच तत्वों) पर

विजय प्राप्त करनी होगी। पाँच तत्वों पर विजय प्राप्त करने की विशेष विधि है। उनमें धारणा-ध्यान द्वारा उन पर विजय प्राप्त की जाती है।

त्रयम् एकत्र संयमः।

धारणा, ध्यान, समाधि तीनों का मिश्रित रूप संयम करना कहलाता है। जहाँ भी मैं यह बोलूँगा कि यहाँ संयम करने से यह होता है, तो समझ लीजिये कि धारणा, ध्यान, समाधि की बात कही जा रही है। आप आकाश में कैसे उड़ेंगे? आप रुई का ध्यान कीजिये। रुई बहुत सूक्ष्म होती है। रुई के फूहे में आँखे बन्द करके धारणा, ध्यान, समाधि लगायेंगे, एकाग्र मन से उसको देखते रहेंगे, तो आपका शरीर भी रुई के फूहे की तरह हल्का हो जायेगा। आपको कुछ सालों के बाद ऐसी स्थिति मिल जायेगी कि इच्छानुसार जब चाहे, जहाँ

चाहे, आप पंछी की तरह उड़कर जा सकते हैं।

हाँ, पूजा करवानी हो, तो आप इसको करना शुरू कर दीजिए। दुनिया मिल जायेगी, शीश भी झुकायेगी। योगिराज के नाम से आपके जयकारे लगेंगे। अभी देखते हैं न, साईबाबा के कितने जयकारे लगते हैं। बेचारे साई बाबा तो भिक्षा माँगकर भोजन करते थे और उनके भक्तों ने उनका सोने का सिंहासन बना दिया, सोने की मूर्तियाँ बना दीं। उनका जीव भी सोच रहा होगा कि दुनिया कितनी पागल है। जो मैं कहता था, दुनिया नहीं कर रही है, लेकिन अपने स्वार्थ के लिये दुनिया मेरे नाम पर सोने के मन्दिर बना रही है, सोने के सिंहासन बना रही है।

सिद्धि का प्रदर्शन क्या है? अहम् का प्रतीक। परमात्मा की सत्ता को चुनौती देना। जो इस प्रकृति का विधान है, उसके विधान को उलटाने का प्रयास है।

मनुष्य के दो पैर हैं, वह पैरों से चल सकता है। लेकिन प्राणों पर विजय प्राप्त करके, जिसने उदान वायु को जीत लिया, वह नदी के जल पर आसानी से चल सकता है। जैसे थल पर चलते हैं, वैसे ही वह जल पर भी चल सकता है। यदि योगी में अणिमा सिद्धि आ गई, तो वह शिला-पत्थर में प्रवेश कर सकता है।

अन्तर्धान होने का तरीका मैं बताता हूँ, लेकिन मैं एक आग्रह कर देता हूँ। यदि आप इसकी तरफ चल दिये, तो राज जी आपको किसी भी कीमत पर नहीं मिलेंगे, क्योंकि आपके अन्दर बहुत बड़ा अहम् आ जायेगा। आपने किसी के सामने सिद्धि का प्रदर्शन किया नहीं कि वह जाकर दस लोगों से कहेगा। फिर दुनिया आपके आगे आकर दरवाजे पर बैठी रहेगी कि महाराज! कल मुकदमा है, हमारी जीत होगी कि नहीं? हमारे घर

चोरी हो गई है, बता दीजिये हमारा धन कहाँ गया? लोग यह भी पूछ सकते हैं कि पता नहीं हमारे घर बेटा होगा कि बेटी? बेटियाँ तो कई हो गई हैं, बेटा होने का आशीर्वाद भी आपको देना होगा। आप दुनिया वालों की इच्छा पूरी करते-करते शरीर छोड़ देंगे, उनकी तृष्णा कभी पूरी नहीं होगी और आपके हाथ से राज जी भी निकल जायेंगे। न खुदा ही मिलेगा, न ही दुनिया मिल पायेगी। इसलिये योगदर्शन में पहले ही मना कर दिया गया है कि कोई भी मनीषी चमत्कार दिखाकर दुनिया को आकर्षित न करे।

अन्तर्धान होने के बारे में मैं बताता हूँ। आप अपने स्वरूप की धारणा कीजिये। आपका नख से शिख तक कैसा रूप है, जब आप इसमें संयम (धारणा, ध्यान, समाधि) करेंगे, तो आपके पास अन्तर्धान होने की सिद्धि

हो जायेगी। आप सबके सामने बैठे रहेंगे, जहाँ संकल्प लिया, आप किसी को दिखाई नहीं देंगे। यह सिद्धि आपको मिल सकती है। यदि आप दुबले-पतले हैं और किसी की शक्ति खींचना हो, तो उसमें संयम कीजिए। हाथी में संयम कर लेंगे, तो हाथी का बल आप खींच लेंगे।

महाभारत के युद्ध में ऐसा ही हो रहा था। योगेश्वर श्री कृष्ण जब देखते हैं कि अर्जुन के सामने प्रतिद्वन्द्वी बहुत शक्तिशाली है, तो योगबल से उसकी शक्ति खींच लेते थे और वह कमजोर हो जाता था। परिणाम स्वरूप, अर्जुन का शिकार बन जाता था। इसलिये योगी को शक्तिशाली होने के लिये आधा-आधा किलो घी खाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह तो संकल्प मात्र से जिसका बल चाहेगा, खींचकर अपने में ले सकता है।

नाभिचक्रे काय व्यूह ज्ञानम्।

जब आप नाभिचक्र में संयम करेंगे, तो पूरे शरीर की संरचना आपको मालूम हो जायेगी, जो बड़े-बड़े डाक्टरों को भी मालूम नहीं होगी। कितनी नाड़ियाँ हैं, शरीर की प्रक्रिया क्या चल रही है? आप समाधि में जान सकते हैं।

ध्रुवे तत् गति ज्ञानं।

यदि आप ध्रुव तारे में संयम करते हैं, तो तारों की गति का आपको पूरा ज्ञान हो जायेगा, जो आधुनिक विज्ञान के पास भी नहीं है।

मूर्ध ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम्।

यदि आप शंकर जी का दर्शन करना चाहते हैं, हनुमान जी का दर्शन करना चाहते हैं, भगवान राम का

दर्शन करना चाहते हैं, महावीर और गौतम बुद्ध का दर्शन करना चाहते हैं, योगेश्वर श्री कृष्ण का दर्शन करना चाहते हैं, तो आपको मूर्धा ज्योति में संयम करना पड़ेगा। परिणाम क्या होगा? आप जिस महापुरुष का संकल्प करेंगे, वही आपको दर्शन देगा, लेकिन परमात्मा का दर्शन नहीं होगा। यदि सूक्ष्म पदार्थों में संयम(धारणा, ध्यान, समाधि) करेंगे, तो उनका गुण आपमें आ जायेगा और आप आकाश में उड़ने लगेंगे।

आज हिन्दू समाज परमात्मा का धारणा-ध्यान नहीं जानता। उसने शालिग्राम बना दिया। नदी का बहता हुआ पत्थर लाया और कह दिया, ये तो हमारे विष्णु भगवान हैं। जब मैं बचपन में सुना करता था कि वृन्दा ने भगवान को श्राप दे दिया कि "जाओ तुम पत्थर हो जाओ", तो मेरे मन में बचपन में यह बात उठी कि यदि भगवान ही

पत्थर हो गये तो सृष्टि को चला कौन रहा है? यदि आप शालिग्राम का ध्यान करेंगे, तो क्या होगा? आपके अन्दर वही जड़ता आनी शुरू हो जायेगी। ध्याता में ध्येय के गुण आते हैं। यदि आप शिवलिंग का ध्यान करेंगे, तो शिवलिंग के जड़त्व का दोष आपमें आ जायेगा।

जैसे अभी मैंने कहा— आप अपने शरीर का संयम करेंगे, तो आपके शरीर के अन्तर्धान होने की सिद्धि आपको मिल जायेगी। उदान वायु को वशीभूत कर लेने के बाद, आप आकाश में आसानी से उड़ सकते हैं, नदी पर चल सकते हैं। पंचप्राणों पर जिसने विजय प्राप्त कर लिया, पंचभूतों पर विजय प्राप्त कर लिया, वह मृत्यु को जीत लेता है।

योगाग्रिमयं शरीरं।

श्वेताश्वेतर उपनिषद में लिखा है कि पंचभूतों पर विजय प्राप्त करने वाले का शरीर योगाग्नि का बन जाता है। जब तक महाप्रलय नहीं होगी, तब तक मौत उसके पास नहीं आयेगी। अश्वत्थामा, बलि, व्यास, विभीषण, कृपाचार्य, और परशुराम जी के पास ये विद्या है। उन्होंने योगबल द्वारा महाप्रलय तक शरीर को रखने की सिद्धि प्राप्त की है। न उनको भूख लगेगी, न प्यास लगेगी।

हाँ, आपको मैं एक और सिद्धि बता देता हूँ। आपको पानी भी पीने की जरूरत नहीं पड़ेगी। दुनिया में पूजा शुरू हो जायेगी कि देखो यह ऐसा व्यक्ति है, जिसने दस सालों से पानी ही नहीं पिया। यह भोजन भी नहीं करता है। आपसे मिलने के लिये लोगों का ताँता लगा रहेगा। यदि आपकी इच्छा हो और आप प्रसिद्धि पाना चाहते हों तो आप यह कर सकते हैं, लेकिन आप यह

चाहें कि प्रसिद्धि भी मिल जाये और राज जी भी मिल जायें, तो यह नहीं होगा।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः।

यदि आप प्रतिदिन कण्ठकूप में संयम कर लेते हैं, जैसे भोजन करने में जितना समय लगता है, उतने समय के लिये आप कण्ठकूप में समाधिस्थ हो जाइये, तो आपको चौबीस घण्टे के लिये भोजन उपलब्ध हो जायेगा। न पानी पीने की जरूरत, न खाना खाने की जरूरत। जिनको प्रत्यक्ष जानना हो "Autobiography of a Yogi – योगी की आत्मकथा" पुस्तक लाइब्रेरी में भी रखी है, पढ़ लें।

एक वृद्ध योगिनी थी। बचपन में उनको बहुत खाने की आदत थी। मायके वाले भी ताना मारते थे, माँ भी

फटकारती थी, "तू इतना खाती है। जब तू ससुराल जायेगी, तेरा गुजारा कैसे होगा?" उसको खाने की आदत पड़ गई। बेचारी उस लड़की की शादी हो गई। ससुराल में भी जब देखो तब भूख। सास भी तंग होकर बहुत दुःखी करने लगी। यह कैसी है कि घर का आधा भोजन ही खा जाती है, फिर भी इसकी भूख नहीं जाती।

तब वह दुःखी हो गई। उस योगिनी की मैं सच्ची घटना बता रहा हूँ। यह कोई काल्पनिक बात नहीं है। "योगी की आत्मकथा" में उस योगिनी का चित्र भी आप देख सकते हैं। दुःखी होकर गंगा के किनारे चली गई कि मैं गंगा में डूबकर अपने प्राण छोड़ दूँगी। दुनिया में हर कोई मुझसे घृणा करता है कि मैं दिन-रात खाती रहती हूँ। जैसे ही नदी के किनारे पहुँचती है, एक महात्मा से भेंट होती है। महात्मा समझ जाते हैं।

उस सिद्ध पुरुष ने कहा, "बेटी! तुझे क्या दुःख है?" वह रो-रोकर अपनी व्यथा बताने लगती है, "महाराज! मुझे इतनी भूख लगती है कि मैं अपने को रोक नहीं पाती और हर जगह से मुझे घृणा झेलनी पड़ रही है। इसलिये मैं आत्महत्या करना चाहती हूँ।" उस महात्मा ने कहा, "अच्छा, मैं तुमको ऐसी विद्या बता सकता हूँ कि तुमको जीवन में एक भी दाना नहीं खाना पड़ेगा और पानी भी पीने की जरूरत नहीं पड़ेगी।" उन्होंने वही विद्या बताई— **"कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः।"**

जहाँ कण्ठकूप होता है, वहाँ पाँच प्राण होते हैं— प्राण, अपान, व्यान, समान, और उदान। पाँचों के अलग-अलग कार्य हैं। इनके पाँच उपप्राण होते हैं— कृकल, नाग, देवदत्त, कूर्म, और धनंजय। इनके भी

अलग-अलग कार्य होते हैं। वहाँ जो संयम करेगा, धारणा, ध्यान, समाधि कर लेगा, उस स्थान विशेष पर, तो उसको भूख-प्यास नहीं लगेगी। पञ्चमहाभूतों का जो समष्टि है, वहाँ से उनको आहार प्राप्त हो जाता है, यद्यपि ऐसा करना सृष्टि की मर्यादा के विपरीत है।

इस सिद्धि का पालन करके उस योगिनी ने तीस साल से भी ज्यादा समय से न तो अन्न का एक दाना ग्रहण किया, न कभी एक गिलास पानी पिया। बस शरीर को जैसे लगता था कि भोजन की आवश्यकता है, समाधिस्थ हो जाया करती थीं।

अन्तर्धान की बात मैंने बताई। अपने शरीर के रूप में ध्यान-समाधि करने के बाद आप कहीं भी इच्छानुसार अन्तर्धान (अदृश्य) हो सकते हैं। जिनकी सुषुम्ना प्रवाहित हो जाती है, वह त्रिकालदर्शी हो जाता

है। योगदर्शन में लिखा है—

प्रातिभात् वा सर्वम्।

हृदय के अन्दर प्रकट होने वाले दिव्य ज्ञान से आपको सर्वज्ञता प्राप्त हो सकती है। इसके लिये आपको सम्प्रज्ञात समाधि में निष्णात होना होगा। जब आपकी सुषुम्ना प्रवाहित हो जाती है, तो आप त्रिकालदर्शी हो सकते हैं। एक लाख वर्ष पहले क्या हुआ, सब कुछ आपके दृष्टिपटल पर आ जायेगा। एक वर्ष बाद क्या होने वाला है, यह भी आप जान जायेंगे। लेकिन इसका भयंकर परिणाम भी सोच लीजिये।

यदि आपने किसी नजदीकी व्यक्ति को बता दिया कि कल क्या होने वाला है। यदि उसने भूल से किसी और को बता दिया, और मान लीजिये कि उसी के घर

चोरी हो गई तो वह कहेगा, "महाराज! मेरा इतना कीमती सामान चोरी हो गया है। आप सब कुछ जानते हैं। आप बता दीजिये कि मेरा सामान किसने लिया?" आपने बता दिया। चोर को पता लग गया कि आपने बताया है और आपको अकेले पा गया, तो क्या करेगा? यह खतरा न पालिये। इसलिये सिद्धियों का प्रदर्शन कहीं न कहीं आपके लिये भी घातक हो सकता है।

यह माया की स्वार्थी दुनिया है। आपसे केवल माया की चाहत करेगी। जो दुनिया परमात्मा की नहीं हुई, आपकी थोड़े ही हो सकती है। दुनिया परमात्मा से प्रेम नहीं करती, परमात्मा को केवल स्वार्थ का साधन मानती है। मैंने कई बार चर्चा में दृष्टान्त दिया है।

एक राजा था। उसके राज्य में एक नर्तकी थी। एक दिन बहुत प्रेम से नर्तकी ने राजा को नृत्य कला से रिझा

लिया। राजा सोचने लगा कि मेरी इच्छा है कि मैं इसको अपनी पटरानी बना लूँ। उसने कहा, "आज तुम जो माँगो, मैं देने के लिये तैयार हूँ।"

राजा सोचता है कि यह कह देगी कि आप मुझे अपनी पटरानी बना लीजिये। नर्तकी कहती है, "महाराज! आपके कैदखाने में मेरा प्रेमी बारह वर्षों से बन्द है, उसको छोड़ दीजिये।" राजा सिर पकड़कर बैठ गया। वह सोचने लगा कि मैं तो सोचता था कि यह मुझे चाहती है और मुझको रिझाने के लिये यह इतना अच्छा नृत्य दिखा रही है। वास्तविकता तो यह है कि यह अपने प्रेमी को ही चाहती है।

वैसे भी लोग मन्दिरों में क्यों चढ़ावा करते हैं? कोई कहता है कि मेरे बेटे का काम हो जाये। कोई चाहता है कि मेरी दुकान चल जाये। कोई चाहता है कि मेरी सर्विस

लग जाये। कोई चाहता है कि हमारी बहू को लड़का नहीं हुआ, वह हो जाये। राज जी से कोई प्रेम नहीं करना चाहता। सब लोग माया के लिये करना चाहते हैं और यदि वह काम नहीं होता तो कहते हैं कि राज जी ने हमारी बात नहीं सुनी, हमें राज जी से क्या लेना-देना।

जैसे एक कर्मचारी को वेतन दिया जाता है। किसी दिन वह काम पर नहीं आता है, तो मालिक क्या कहता है, "आज तुमने काम नहीं किया, तुम्हारा वेतन काट दिया जायेगा।" आप भी राज जी के नाम पर कहीं सेवा करें, कभी आपकी माया की इच्छा पूरी नहीं हुई तो क्या कहेंगे, "हमारा माया का काम नहीं होता है, तो मैं क्यों राज जी के लिये सेवा करूँ।" इस रोग के शिकार अभी तक जो भी सुन्दरसाथ हैं, वे निःस्वार्थ एवं पवित्र प्रेम से कोसों दूर हैं।

राज जी को पाने के लिये पवित्र प्रेम चाहिये। एक तरफ सारे संसार का राज्य हो और एक तरफ राज जी का प्रेम। जो परमधाम की आत्मा होगी, वह सारे संसार को ठुकरा देगी। उसके लिये संसार के सुख का कोई मोह नहीं।

रतन जड़ित जो मंदिर, सो उठ उठ खाने धाए।

जिसके हृदय में विरह होगा, उसके लिये हीरे-मोतियों के महल का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

एक बार मैं सरकारश्री के साथ गुजरात में बैठा था। वहाँ एक सुन्दरसाथ आया। प्रणाम करके कहने लगा, "सरकार श्री! आप ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मेरी भैंस ज्यादा दूध देने लगे, क्योंकि वह कम दूध देती है।" मुझे हँसी आ गई कि इस व्यक्ति को भैंस का दूध ही बढ़ाना

है, तो किसी परमहंस से पूछने की क्या जरूरत? वह तो दवा से भी बढ़ सकता है।

यदि हीरे-मोती के महल आपको मिल भी जायें, तो आप क्या करेंगे? एक न एक दिन तो सब कुछ छूटेगा। यदि आप सारी दुनिया का धन ले लेंगे, तो क्या करेंगे? राज जी को तो पीठ दे रहे हैं। राज जी से केवल राज जी को माँगिये।

तुम आये सब आईया, दुख गया सब दूर।

एक बार जब मैं पन्ना जी में था। अपने एक सुन्दरसाथ ने विधायक का पद जीता। उनके साथी कहने लगे, "स्वामी जी! आप मुँह से कह दीजिये कि यह मन्त्री बन जाये।" बार-बार कहने लगे। मैंने चुपचाप हँसी में टाल दिया कि मैं बँगला जी दरबार में बैठा हूँ, एक

मन्त्री का पद कितना छोटा है? मन्त्रीपद तो पाँच सालों के लिये होता है। इस देश के प्रधानमन्त्री का पद भी, राष्ट्रपति का पद भी पाँच साल के लिये है। नारायण का पद भी कितने सालों के लिये? जब तक सृष्टि है तब तक।

राष्ट्रपति के पास जाकर एक कप चाय माँगो, तो इससे बड़ी मूर्खता और क्या होगी। आप अपने प्रेम का सौदा क्यों करते हैं। प्रेम को प्रेम ही रहने दीजिये। उससे बड़ी कीमती चीज कुछ नहीं होती। आप केवल प्रेम करते जाइये। बिना कहे राज जी आपकी सारी इच्छाओं को पूरा करते जायेंगे। एक माया का पति जब अपनी पत्नी को लाता है, तो उसको खुश रखने के लिये दूना कार्य करता है कि मेरी पत्नी को कष्ट न हो, मेरे बच्चों को कष्ट न हो। आप राज जी को क्या दुनिया के रिश्ते से भी

छोटा समझते हैं?

अपनी आत्माओं को जगाने के लिये जो अक्षरातीत महामति जी के धाम-हृदय में बैठकर कामा पहाड़ी से उदयपुर तक भूखों चलता है, भूख-प्यास सहन करता है, मन्दसौर में भिक्षा में मिले हुये अन्न को ग्रहण करता है। वहाँ से लेकर औरंगाबाद-रामनगर तक, न जाने कितनी धूल से भरी हुई, तपन से भरी हुई रातें जिसने झेली होंगी। चिलचिलाती हुई धूप में जिसने अपने कदम बढ़ाये होंगे, किसके लिये? परमधाम की आत्माओं को जगाने के लिये।

उन आत्माओं ने अक्षरातीत के प्रेम को तो नहीं देखा। सुन्दरसाथ अक्षरातीत के प्रेम का मूल्यांकन कभी नहीं कर सकता। अपनी जरूर कह देगा कि मैं राज जी को इतना याद करता हूँ, इतना कुछ करता हूँ। राज जी

पर आरोप थोपते हैं। यह याद रखिये कि यदि आप एक कदम आगे बढ़ाते हैं, तो राज जी सौ कदम बढ़ाते हैं। संसार में ऐसा कोई नौकर भी नहीं होगा, जो एक बार पानी का गिलास माँगो तो दस बार जी-जी कर कहे। वह कहते हैं—

मैं लिख्या है तुमको, जो एक करो मोंहे साद।

तो दस बेर मैं जी जी करूँ, कर कर तुम्हें याद।।

साद तो हम नहीं कर सकते। एक रुमाल चढ़ाते हैं, तो फीस पहले रख देते हैं, "हमने बारह सौ रुपये का रुमाल चढ़ाया है, तो राज जी! हमारा काम कर दीजिए, फिर एक और चढ़ा दूँगा।" जैसे कि घूस दे रहे हों।

सुन्दरसाथ मेरे पास भी आते हैं, जब कोई पैसे की सेवा करते हैं, तो छिपा करके जैसा ऑफिस में किसी

क्लर्क को उसकी मेज के नीचे से छिपाकर दिया जाता है, मुझे भी छिपाकर देते हैं। मुझे हँसी आती है। उन्हें जब देना ही है, तो सबके सामने श्रद्धा से देना चाहिए। वह राज जी की सेवा में जायेगा। मैं कोई सरकारी अधिकारी थोड़े ही हूँ कि मुझे सबसे छिपाकर देते हैं।

राज जी के साथ भी वही व्यापार है, क्योंकि घूसखोरी की आदत पड़ गई है। यदि राज जी ने आपका काम किया, तो सेवा करेंगे। माया का काम नहीं हुआ, तो सेवा बन्द। यह कैसा प्रेम? ये प्रेम को कलंकित करने वाली चीजें हैं। आपका खुद का क्या है, जो आप दे रहे हैं? क्या आपका शरीर है? यदि आपका शरीर है, तो इसको अखण्ड रख लीजिये। क्या आपका घर है? कुछ भी तो आपका नहीं है। आपने तो अज्ञानता से इसको अपना बना रखा है।

मेरी मेरी करत दुनी जात है, बोझ ब्रह्माण्ड सिर लेवे।

आपकी आत्मा भी क्या आपकी है? आपकी आत्मा तो परात्म का प्रतिबिम्ब है और परात्म भी राज जी का ही तन है। आपका तो कोई अस्तित्व ही नहीं, लेकिन आपने पहाड़ जैसा एक अहम् खड़ा कर रखा है, यह मैं हूँ और यह मेरा है। यही तो सबसे बड़ी भूल है। आप साधना करके सिद्धि-प्रदर्शन करके समाज में पूजित होना चाहते हैं। इससे बड़ा भ्रम और कुछ नहीं। धाम धनी ने इसलिये सावचेत किया है—

मार प्रतिष्ठा पैजारो, जो आवे दगा देत बीच ध्यान।

अपने और धनी के बीच में प्रतिष्ठा सबसे बड़ी बाधा है। आज होड़ किसकी लगी हुई है? केवल प्रतिष्ठा की। सबसे बड़ा महाराज कौन माना जाता है? जिसके पास

बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ हों, जिसके अनुयायी जय-जयकार लगा रहे हों। यही तो सबसे बड़ा बन्धन है। आप इन सबको टुकराइये। आप राज जी से राज जी का प्रेम माँगिये। प्रेम आ जायेगा, तो बाकी कुछ नहीं रहेगा। सबसे बड़ी भूल क्या होती है? ज्ञान सत्य को दर्शाने के लिये होता है। प्रेम सत्य को पाने के लिये होता है। सिद्धियों और विभूतियों के चक्कर में पड़कर आप धनी को खो बैठेंगे।

अभी मुर्दे को जिन्दा करने वाली बात छिड़ गई थी। आपको वह भी बता देता हूँ। लेकिन आप ऐसा कभी भी न करना। परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी ने ऐसा किया था, तो उनके सद्गुरु महाराज ने बहुत डाँटा था। जब महाराज जी के बेटों ने देह-त्याग कर दिया, तो महाराज जी के पास सामर्थ्य था कि जीवित कर सकते

थे, लेकिन उन्होंने सीधे मना कर दिया। यदि मैं इनको जीवित करूँगा, तो मैं अपना शरीर छोड़ूँगा। यह तुम्हें मन्जूर है, तो कहो। तो सब लोग पीछे हट गये।

योगी के पास आत्मबल होता है। जब जीव शरीर छोड़ता है, तो उन्नीस तत्वों का सूक्ष्म शरीर उसके साथ जाता है। वह चाहे तो योगबल से उस सूक्ष्म शरीर को उस शरीर में प्रवेश कराकर उसे पुनः जीवित कर देगा। ऐसा लाहिड़ी महाशय ने किया है, महावतार बाबा ने किया है। परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी ने किया है। जो भी सिद्ध पुरुष होते हैं, ऐसा करते तो हैं, लेकिन इससे सृष्टि की मर्यादा का उल्लंघन होता है।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी चाहते, तो जटायु को पुनः जीवित कर सकते थे, लेकिन नहीं किया। आप देखेंगे, भगवान शिव ने दक्ष को पुनः जीवित कर दिया।

वह चाहते तो सती को भी जीवित कर सकते थे। उनके लिये यह कठिन नहीं था, लेकिन उन्होंने नहीं किया।

धर्म की कुछ मर्यादायें होती हैं। आपको शक्ति दी गई है, तो शक्ति का दुरुपयोग करने का अधिकार आपको नहीं है। आपके दिल में राज जी की जितनी शोभा बसती जाये, उतने ही विनम्र होइए। प्रदर्शन न कीजिए कि मैंने इतनी सिद्धि प्राप्त कर ली है। मैं इतना बड़ा सिद्ध महापुरुष हो गया हूँ। आप अपनी भक्ति का, अपने ज्ञान का, और अपनी साधना की शक्ति का अहम् कभी भी मत पालिये।

आपके पास जो ज्ञान है, वह राज जी का दिया हुआ है, वह संसार के कल्याण के लिये है। आपने भक्ति की जो राह पकड़ी है, उस भक्ति का अहम् मत कीजिये, बल्कि उस भक्ति से दूसरों को उस राह पर ले जाइये,

ताकि दूसरे भी उस अमृत की गंगा में स्नान करके भवसागर से पार हो जायें। यदि आप अनावश्यक रूप से सिद्धि का प्रदर्शन करते हैं, तो इसका आशय यह है कि आप अक्षरातीत के सामने स्वयं को अक्षरातीत के समान सिद्ध करके पूजित होने का भाव रखते हैं। यह उनकी गरिमा को चुनौती देने के समान है।

इसलिये यदि अति आवश्यक होगा, तो राज जी की कृपा से बिना आपकी इच्छा के भी चमत्कार की लीलायें हो जायेंगी। आप राज जी पर छोड़ दीजिये कि यदि राज जी चाहेंगे तो हो जायेगा। आप यह कभी मत कहिये कि मैं अपनी शक्ति से ऐसा कर दूँगा। जहाँ आपने "मैं" शब्द लिया नहीं कि वहीं से पतन की खाई खुदनी शुरू हो जाती है।

आपको बीतक का प्रसंग याद होगा, जिसमें हरजी

व्यास अस्वस्थ हैं। कान्ह जी भाई कहते हैं, "धाम धनी! आप चाहें तो इनको पुनर्जीवन दे सकते हैं। हरजी व्यास जी की मौत शिर पर थी। श्रीजी ने कहा, "राज जी के हुक्म से ठीक हो जायेंगे।" यह नहीं कहा, "कान्हजी भाई! मेरे अन्दर तो अक्षरातीत बसते हैं। मैं अक्षरातीत का स्वरूप हूँ। मैं अभी ठीक कर देता हूँ।"

उनके कथनों में कभी भी "मैं" शब्द आप नहीं देखेंगे। श्रीजी के मुखारविन्द से ऐसा निकलते ही सब कुछ हो जाता है। जो अक्षरातीत इच्छामात्र से पन्ना की नगरी को हीरे की धरती बना सकते हैं, यदि वह चाहते तो मन्दसौर को भी बना सकते थे। एक-दो हीरे बना देते, तो भीख माँगने की जरूरत ही नहीं पड़ती। उसी को बेचकर राशन खरीद लिया जाता। लेकिन नहीं, सबको उस कसौटी पर कसना है। प्रकृति की मर्यादाओं

का उल्लंघन नहीं करना है क्योंकि इससे सभी भक्ति से दूर हो जायेंगे।

सिद्धि का प्रदर्शन करने से अहम् की वृद्धि होती है। कोई कुछ सिद्धि करेगा, कोई कुछ सिद्धि करेगा। भक्ति और प्रेम का हट जाना विनाश को न्यौता देना होता है। इसलिये आपके हृदय में केवल ज्ञान और प्रेम की सरिता बहनी चाहिये। चमत्कारों के प्रदर्शन से अपने आपको दूर रखना चाहिये।

बैठे मासूक जाहेर, पर दिल न लगे इत।

मासूक मुख देखन को, हाय हाय नैना भी ना तरसत॥

माशूक श्री राज जी आपके दिल में बसे हैं। फिर आप विभूतियों का पर्दा क्यों खड़ा करना चाहते हैं? मुर्दे को जिन्दा करके, पानी पर चलकर, भविष्य की बातें

बताकर, आकाश में उड़कर, एकसाथ कई रूप धारण कर, आप संसार को क्या सन्देश देना चाहते हैं?

योगी अपने संकल्प बल से एकसाथ कई रूप धारण कर सकता है। एक पल में चन्द्रलोक में जा सकता है, एक पल में अमेरिका जा सकता है। ख्याति तो उसकी बहुत हो जायेगी, लेकिन परमात्मा की भक्ति से वह कोसों दूर हो जायेगा। अपने योगबल का कभी भी अभिमान मत कीजिये। किसी भी सिद्धि की चाहत न कीजिये। चमत्कारों से दूर हटिये।

अक्षरातीत की अनन्त सत्ता के सामने आपकी क्या सत्ता है? आप एक परमाणु की रचना का भी अधिकार नहीं रखते। सर्वशक्तिमान परमात्मा ने तो इस सृष्टि में अनन्त लोक, अनन्त तारे पैदा किये हैं। आप शून्य में धूल का एक कण भी नहीं बना सकते, फिर किसका

अभिमान? आपने सिद्धि करके, साधना करके यदि पानी पर चलना सीख भी लिया तो क्या हुआ?

सिद्धि के अभिमान में अपने मिट्टी के पुतले को सबसे दण्डवत् प्रणाम करवाना शुरू कर दिया। दुनिया जय-जयकार लगा रही है और आप फूलकर कुप्पा हो गये हैं कि देखो, मैं इतना बड़ा योगी हो गया हूँ। इतने लोग मेरे आश्रम में मेरी जय-जयकार करने में लगे हुए हैं, तो इससे बड़ी अज्ञानता कुछ नहीं।

आप खुले आकाश की तरफ देखिये। कितने तारे हैं? असंख्य लोक इन तारों के रूप में दिखाई दे रहे हैं। उनको किसने बनाया है? जिसने बनाया है, वह स्वयं आँखों से दिखाई नहीं दे रहा है। वह बोल भी नहीं रहा है कि इस अनन्त सृष्टि को बनाने वाला मैं हूँ। जो शक्ति आप पाते हैं, उसी से पाते हैं, उसकी भक्ति करके पाते

हैं। जब आप शक्ति का प्रदर्शन करते हैं, तो सर्वशक्तिमान परमात्मा हँसता है, "मेरे बनाये हुये बन्दे! तू मेरी ही सत्ता को चुनौती दे रहा है।" आजकल ऐसा ही हो रहा है।

हिन्दू समाज में सत्तर से ज्यादा लोग यह दावा कर रहे हैं कि मैं परमात्मा हूँ, मैं ही अवतार हूँ। अवतार महापुरुषों का होता है, परमात्मा का कभी भी अवतार नहीं होता। उनके भक्तों के सामने जाइये तो कहेंगे कि साक्षात् परमात्मा तो यही हैं, इनके अतिरिक्त और कौन परमात्मा है?

एक बाबा बाराबंकी में रहते थे। परमात्मा के अवतार कहलाते थे, लेकिन वह थे माफिया। वे अपने शिष्यों से तन, मन, धन सब कुछ समर्पित करवा लेते थे। जब कुम्भ के कार्यक्रम से वह आ रहे थे, तो उनके विरोधियों

ने उन्हें गोलियों से भून डाला। वे जो भगवान के अवतार कहलाते थे, कई साल जेलों में बन्द रहे। ऐसे ही जो सत्तर लोग अपने को भगवान का अवतार कहलवा रहे हैं। इनमें से कइयों का आपराधिक जीवन रहा है। किन्तु उनके पास शिष्यों की ऐसी मण्डली है, जो उनकी महिमा को इस तरह से प्रस्तुत करेगी कि जैसे लगेगा कि इनके समान और कोई है ही नहीं। हाँ, यदि आप शरीर से परे हो गये तो—

मारया कहा काढ्या कहा, और कहा हो जुदा।

एही मैं खुदी टले, तो बाकी रह्या खुदा।।

आप खुदा के स्वरूप बन जायेंगे, लेकिन आप अपने को मत मानिये कि मैं खुदा का स्वरूप हूँ। संसार मानेगा। जैसे ही आपने भाव लिया कि "मैं खुदा हूँ", तो

वह शक्ति चली जायेगी।

एक बार राजा जनक के मन में भाव आ गया कि मैं विदेह हूँ, मुझको तो अग्नि जला ही नहीं सकती। जैसे ही यह भाव आया, अग्नि पर पाँव रखते ही उनके पाँव जलने लगे। विदेह तो तब हैं, जब मैं का बोध न हो। जब मैं आ गया, तो विदेह अवस्था समाप्त। इसलिये आप सुन्दरसाथ से मैं यही कहूँगा कि आपने जो भी साधना में सफलता प्राप्त की है, ज्ञानार्जन में सफलता प्राप्त की है, जितना भी धन आपके पास है, उतना सब राज जी का मानिये।

शिवली नाम के एक सूफी फकीर हुये हैं। उनके पास एक मुस्लिम व्यक्ति बैत लेने पहुँचा। बैत लेना, जिसे हम तारतम लेना या दीक्षा लेना कहते हैं। उन्होंने एकान्त में बैठकर कहा, "बोलो ला इलाह इल्लिल्लाह शिवली

रसूल अल्लाह।" वह व्यक्ति तैश में आ गया क्योंकि वह शरियत का पक्का अनुयायी था, "आप अपने को रसूल समझ रहे हैं। मैं आपसे बैत नहीं लूँगा।" कहते हुए नाराज होकर चला गया। शिबली हँसने लगे, "अच्छी बात है, तुम इसके पात्र नहीं हो।"

दूसरा व्यक्ति आया, उसको भी शिबली ने कहा, "बोलो ला इलाह इल्लिल्लाह, शिबली रसूल अल्लाह।" वह भी खड़ा हो गया। कहा, "मैं आपसे बैत नहीं लूँगा।" उन्होंने पूछा, "क्यों?" उसने कहा, "रसूल अल्लाह को तो मैं पहले से मानता आया हूँ। मैंने तो सोचा था कि अल्लाह तआला से मिलकर आप अल्लाह के स्वरूप हो गये हैं। इसलिये यदि आप अपने को केवल रसूल मानते हैं, तो मैं आपसे बैत नहीं लूँगा।"

देखिये, उसने कितनी ऊँची बात कही। नदी सागर

में मिलने के बाद सागर का स्वरूप हो जाती है, लेकिन ढोल नहीं पीटती कि मैं सागर हूँ, वह नदी ही रहती है। तब शिबली ने कहा, "हाँ, तुम इस लायक हो, मैं तुमको ही दीक्षा दूँगा। तुमने अद्वैत के रस को पहचाना है।"

पेहेले मोको सब जानसी, तब होसी तुम्हारी पेहेचान।

हम तुम जाहेर हुये, दुनी कायम होसी निदान।।

आप किसकी अर्धांगिनी हैं? उस अक्षरातीत की। आप अक्षरातीत की महिमा गाइये, आपकी महिमा खुद फैलेगी। लेकिन यदि आप अपनी महिमा को जाहिर करना चाहते हैं, तो न अक्षरातीत की महिमा को फैला पायेंगे और न आप अपनी महिमा को फैला पायेंगे। हाँ, थोड़े से दायरे में सिमटकर रह जायेंगे। आप अपने अस्तित्व को मिटा दें। वाणी कहती है—

एही मैं खुदी टले, तो बाकी रह्या खुदा।

आपने "मैं और मेरा" जिस दिन हटा दिया, उस दिन आप राज जी के दिल में मिल गये। अब आपका अस्तित्व कुछ है ही नहीं। अब आपका शरीर तो होगा, किन्तु बोलेगा कौन? जिसको आपने अपना दिल दिया है। उसको अपने दिल में बसाया है। दुनिया समझेगी कि आप ही बोल रहे हैं, किन्तु आप अपने अन्दर "मैं" का पर्दा कभी भी न होने देना क्योंकि जहाँ "मैं" आ जायेगी, "मेरा" आ जायेगा, वहाँ "तू और तेरा" हट जायेगा। परिणाम स्वरूप, आप मारिफत में प्रवेश नहीं कर सकते।

मैंने विभूतियों के बारे में आपको सचेत किया कि मुर्दे को जिन्दा करना कोई बड़ी बात नहीं होती, लेकिन प्रकृति का उल्लंघन है। आप यह चमत्कार दिखाकर किसी को आकर्षित करने का प्रयास न करें और उसमें

कभी अपने बल के अहम् का भाव न रखें कि मेरे पास
इतना ज्ञान है। मेरे जैसा तो कोई है ही नहीं।



चतुर्थ पुष्प

प्रश्न- अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी ने विष्णु भगवान के जीव के ऊपर विराजमान होकर लीला की। क्या भगवान कृष्ण ही प्राणनाथ जी हैं या नहीं?

उत्तर- जिसको अक्षरातीत कहा जायेगा, उसके आगे भगवान शब्द नहीं लग सकता। भगवान शब्द या तो अक्षर ब्रह्म के लिए प्रयोग होता है, या विष्णु जी के लिये प्रयुक्त होता है, या इस दुनिया में जिसके पास अलौकिक ज्ञान है, विवेक है, वैराग्य है, शील है, शक्ति है, ऐश्वर्य है, उसे भगवान कहा जाता है।

शंकरजी के आगे आप "भगवान" शब्द जोड़ सकते हैं। बुद्ध के आगे जोड़ सकते हैं, राम के आगे "भगवान" शब्द जोड़ सकते हैं। योगेश्वर श्री कृष्ण के लिये भी

"भगवान" शब्द जोड़ सकते हैं, किन्तु "प्राणनाथ" नहीं कह सकते हैं। गोपियों के "प्राणनाथ" श्री कृष्ण हैं। सीता के "प्राणनाथ" राम हैं। लेकिन आत्मिक दृष्टि से केवल अक्षरातीत को ही "प्राणनाथ" कहलाने की शोभा है।

प्रश्न- कलियुग में प्रतिदिन सुनने में आ रहा है कि पृथ्वी की समाप्ति होने वाली है। क्या यह सत्य है? यदि हाँ तो कब?

उत्तर- एक बात याद रखिये-

ए दिन किने न किया मुकरर, ताये पेहेचानो जिन दर्ई खबर।

आपका काम है चितवनि करके राज जी के प्रेम में डूब जाना। जब ५२ दिनों की जुदाई हुई और सखियों के अन्दर व्रज में यह बात आ गई कि नहीं, हमें केवल कन्हैया चाहिये, तब उन्होंने योगमाया में प्रवेश किया।

अभी आधे से भी ज्यादा सुन्दरसाथ की इच्छा घर चलने की नहीं है।

जब माया के कष्ट होंगे, युद्ध बढ़ेंगे, चारों तरफ दुःख ही दुःख फैलेगा, तब सुन्दरसाथ चितवनि में लगेगा। अभी तो जबरन कराना पड़ता है। जब चारों तरफ दुःख ही दुःख हो जाये, तब त्राहि-त्राहि मचेगी और सभी लोग प्रेम में डूब जायेंगे, तब समझिये कि खेल खत्म होने का समय हो गया है। अभी समय नहीं आया। कुरआन के अनुसार, पन्द्रहवीं सदी में खेल का समापन होना चाहिये। पन्द्रहवीं सदी प्रारम्भ होने में अभी कुछ साल, चार-पाँच साल बाकी होंगे। पन्द्रहवीं सदी में पहले साल से लेकर निन्यान्बे साल तक कभी भी महाप्रलय हो सकती है। लेकिन अभी तत्काल होने वाली नहीं है, क्योंकि अभी बहुत कम लोगों की इच्छा है घर चलने

की।

प्रश्न— समाधि, चितवनी, ध्यान, विपश्यना में अन्तर बताइये?

उत्तर— ध्यान का परिपक्व रूप ही समाधि है। धारणा किसको कहते हैं? चित्त की वृत्तियों को किसी लक्ष्य पर केन्द्रित करना।

देशबन्धः चित्तस्य नाम धारणा।

चित्त की वृत्ति क्या होती है? चित्त द्वारा ही ज्ञान को ग्रहण—श्रवण कर रहे हैं, कोई भी क्रिया चित्त के बिना नहीं हो सकती। चित्त में संस्कारों का कोष है। संस्कार के बिना मन में कोई विचार नहीं आ सकता। मन के संकल्प के बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता। जीव तो अपने शुद्ध स्वरूप में मात्र कूटस्थ है, दृष्टा है। हम

सामान्य भाषा में अवश्य कहते हैं कि जीव सुख-दुःख का भोक्ता है, लेकिन जीव सुख-दुःख का भोक्ता कैसे है? अन्तःकरण के माध्यम से। अन्तःकरण न हो, तो जीव अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाये।

हम लोग एक मानसिकता पाल बैठे हैं, दूसरों को घृणा की दृष्टि से देखने की। हम यह दावा बहुत कठोर शब्दों में करते हैं कि क्या प्रवाहियों (अन्य मत वालों) को आत्मा और जीव का भेद मालूम है? लेकिन शायद आप भ्रम करते हैं। यह ठीक है कि हमारे पास ऐसे ग्रन्थ हैं, जिसमें ऐसा लिखा हुआ है कि जीव और आत्मा में क्या अन्तर है। वैदिक मान्यता वाले यह मानते हैं कि जो शुद्ध चेतन है, जिसका माया से कोई संयोग नहीं, उसको कहते हैं आत्मा, और जब वही चैतन्य कारण शरीर से जुड़ गया, सूक्ष्म शरीर से जुड़ गया, स्थूल शरीर में प्रवेश

कर गया, तो उसकी संज्ञा जीव हो जाती है।

यह बात वाणी के सिद्धान्तों के अनुसार खरी सिद्ध होती है। यह अवश्य है कि हम परमधाम में अक्षरातीत की अँगरूपा चेतना को आत्मा कहते हैं। कालमाया में नारायण की चेतना के प्रतिभास को जीव कहते हैं। वैसी ही भावना यहाँ भी समझ लीजिये। जब आप चित्त की वृत्तियों को साढ़े तीन घण्टे एक लक्ष्य पर केन्द्रित करेंगे, उसको कहेंगे धारणा। जब साढ़े चार घण्टे तक वही लक्ष्य बना रहे, कोई और विषय न आये, तो उसे समाधि कहते हैं। समाधि के अनेक रूप होते हैं—

वितर्क विचार आनन्द अस्मिता रूप अनुगमात् सम्प्रज्ञातः।

सम्प्रज्ञात समाधि के चार भेद होते हैं— १. वितर्क अनुगत, २. विचार अनुगत, ३. आनन्द अनुगत, और

४. अस्मिता अनुगत।

वितर्क अनुगत समाधि के दो भेद होते हैं— १. सवितर्क समापत्ति, २. निर्वितर्क समापत्ति। इसी प्रकार विचार अनुगत समाधि के भी दो भेद होते हैं— १. सविचार समापत्ति और २. निर्विचार समापत्ति।

सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि को सबीज समाधि और निर्बीज समाधि कहते हैं। समाधि का आशय है, जो आपने धारणा में लक्ष्य निर्धारित किया है, पहले छह घण्टे तक लगातार उस पर केन्द्रित रहा जाये तो आप समाधि अवस्था को प्राप्त हुए माने जायेंगे। लेकिन यदि आपकी धारणा किसी जड़ वस्तु पर है, आप शुष्क भावों से समाधि लगा रहे हैं, तो ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता।

देखिये, अभी प्रसंग आया है, विपश्यना क्या है? विपश्यना का तात्पर्य होता है— विशेष रूप से देखना। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है—

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रम् दिशः च न अवलोकयन्।

नासिका के अग्र भाग में देखो। विपश्यना में क्या किया जाता है। किसी मूर्ति का, फोटो का, या किसी गुरुदेव का ध्यान या धारणा नहीं की जाती। बौद्ध मत के अनुसार न कोई आत्मा है और न कोई परमात्मा है। बुद्ध ने ऐसा कहीं नहीं माना है। बुद्ध ने आत्मा यानी जीव का भी अस्तित्व माना है, परमात्मा के अस्तित्व को भी माना है, लेकिन उनके शिष्यों ने उनके आशय को उल्टा कर दिया।

मुहम्मद साहब ने जो कहा, आज उनको मानने

वाले उनके कथनों के विपरीत आचरण करते हैं। मुहम्मद साहब ने नहीं कहा कि जबरन धर्म परिवर्तन कराओ। लेकिन उनके देह-त्याग के पश्चात् आयतों में जो फेरबदल हुआ, वह सारी दुनिया में आतंकवाद का मूल है।

झरने का पानी गिर रहा है, तो गिर रहा है, कभी रुकेगा नहीं। उसी तरह से जिस लक्ष्य को लेकर आपने धारणा बनायी है, लक्ष्य भासित होता रहे, कोई और चीज चित्त में न आये, कोई विचार आपके मन में न आये, उसको कहते हैं ध्यान। और जब साढ़े पाँच-छह घण्टे तक वही स्थिति बन जाये, तो उसको कहते हैं समाधि।

समाधि उसको नहीं कहते कि जमीन में गड्ढा खोद दिया और दसवें द्वार में ले जाकर प्राण को चढ़ा दिया।

एक महीने तक बैठे रहे। दुनिया जय-जयकार कर रही है कि योगिराज महाराज आ गये। एक महीने से तो उन्होंने कुछ खाया-पीया नहीं। ऐसी जड़ समाधि से कभी भी परमात्मा का दर्शन नहीं हो सकता।

चैतन्य समाधि, प्रेममयी समाधि ही परमात्मा से मिला सकती है। परमात्मा का साक्षात्कार हठयोग की क्रियाओं से नहीं हो सकता। कई ऐसे योगी भी होते हैं, जो एक साल नहीं, कई-कई सौ वर्षों तक जमीन के अन्दर जड़ समाधि में बैठे रहते हैं।

एक बार मैं अपने सुन्दरसाथ के यहाँ कानपुर गया था। उन्होंने मुझे बताया कि एक बार एक महात्मा यहाँ कई सौ वर्षों की समाधि लगाये हुये मिले थे। अचानक किसी चीज की खुदाई हो रही थी। कुछ अजीब सा लगा। जब लोगों ने वहाँ खुदाई करनी शुरू की तो एक महात्मा

मिले अन्दर से। उन्होंने पूछा कि कौन सा युग चल रहा है, कौन सा सन् चल रहा है? सबने बताया कि यह तो भारत की आजादी का समय चल रहा है, अंग्रेज यहाँ से चले गये। वे थे अकबर के जमाने के अर्थात् लगभग ५०० वर्षों से जड़ समाधि लगाये बैठे थे। लेकिन उनसे यदि पूछा जाये कि क्या उन्हें परमात्मा का दर्शन हो गया? तो उत्तर मिलेगा, नहीं। जब दसवें द्वार में प्राणवायु प्रविष्ट हो जाती है, तो शरीर की सारी क्रियायें बन्द हो जाती हैं। न श्वास ले सकते हैं और न श्वास छोड़ सकते हैं।

ईसा मसीह ने जो कहा, उनके अनुयायियों ने कई सौ वर्षों के बाद उनकी विचारधारा को शब्दों में बताया। महावीर स्वामी ने कोई पुस्तक नहीं लिखी। गौतम बुद्ध ने कोई पुस्तक नहीं लिखी। उनके विचारों का जो संकलन

परम्परागत रूप से शिष्यों में आता रहा, उसे कालांतर में शब्दों का रूप दे दिया गया, उसमें पक्षपातपूर्ण मिलावट से विकृति फैल गई। ज्ञान-चक्षुओं से देखना ही विपश्यना है।

मैं एक दृष्टान्त देता हूँ अवस्थाओं का। शुकदेव बहुत निर्मल हैं, महारास का वर्णन करते हैं। उनको यह भी मालूम नहीं है कि स्त्री किसको कहते हैं, पुरुष किसको कहते हैं। वे सोलह वर्ष की अवस्था में सरोवर के किनारे से जा रहे थे। उसमें अप्सरायें स्नान कर रही थीं। उनको देखकर अप्सराओं के ऊपर कोई असर नहीं पड़ा। थोड़ी देर के बाद व्यास जी वही से जाते हैं, तो वे छिपकर अपने कपड़े पहनने लगती हैं।

व्यास जी पूछते हैं, "मैं वयोवृद्ध हूँ, मुझको देखकर तुमने कपड़े क्यों पहन लिये? मेरा युवक पुत्र इधर से

अभी गुजरा है। उसको देखकर तुमको लज्जा क्यों नहीं महसूस हुई?" अप्सरायें कहती हैं, "ऋषिराज! आपके पुत्र को तो मालूम ही नहीं है कि स्त्री किसको कहते हैं और पुरुष किसको कहते हैं। इसलिये हमको कोई लज्जा नहीं आई। आप हमको अप्सरा की दृष्टि से देखते हैं। इसलिये आपको भी पुरुष रूप में मानकर हमें लज्जा महसूस हुई और हमने कपड़े पहन लिये।"

शुकदेव जी के पास प्रेम का रस है, दिव्य प्रेम। प्रेम का तात्पर्य वासना है। जो शरीर की भूख मिटाना चाहता है, वह भी प्रेम शब्द का प्रयोग करता है। वस्तुतः वह वासना है। शुकदेव उस दिव्य प्रेम के राही हैं, जो रास का वर्णन कर सकने में समर्थ है।

स्वर्ग के सिंहासन पर कौन बैठेगा? जो इतना तपस्वी हो कि उसको स्वर्ग की अप्सरायें मोह में न डाल

सकें। इसलिये तो उसको इन्द्र बनाया जाता था, और जो भी उस स्वर्ग को पाना चाहता था उसको परीक्षा देनी पड़ती थी। फिर वह सिंहासन खाली हो जाता था। इसलिए जो व्यक्ति जितने ऊँचे शिखर पर पहुँचेगा, वह उतना ही दिव्यता लिये हुए होगा। रास का वर्णन कौन करेगा? महारास का वर्णन करने का अधिकार किसी सांसारिक पुरुष को नहीं है क्योंकि वह लौकिक दृष्टि से ही देखेगा।

अक्षर ब्रह्म अक्षर धाम में रहते हैं। अक्षर ब्रह्म की महिमा में "सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म", "प्रज्ञानम् ब्रह्म" आदि कितने शब्द वर्णित कर दिये गये। लेकिन वह अक्षर ब्रह्म अक्षर धाम में रहते हुए भी अक्षरातीत की नख से शिख तक की शोभा देखने का अधिकार नहीं रखते। मूल मिलावा में पहुँचने का अधिकार नहीं रखते। इससे आप

प्रेम की महत्ता को समझ सकते हैं।

आप सारा जीवन तप कीजिये, योग साधना कीजिये, कितना भी निर्विकार बनिये, किन्तु शुकदेव जी की बराबरी आप नहीं कर सकते, शंकर जी की बराबरी नहीं कर सकते, विष्णु भगवान की भी बराबरी नहीं कर सकते। सनकादिक, जो अक्षर की वासनायें हैं, वे तो पाँच साल की अवस्था में ही निकल गये थे। उनको तो मालूम ही नहीं है कि काम विकार किसको कहते हैं। लगभग तीस लाख की संख्या में सुन्दरसाथ हैं। हममें से कोई भी इस योग्यता को नहीं पहुँच सकता कि वह सनकादिक, शुकदेव, और कबीर जी की बराबरी कर सके। लेकिन इनको भी मूल मिलावा में पहुँचने का अधिकार नहीं है। केवल एक रास्ता बचता है, प्रेम का रास्ता।

एक तरफ एक व्यक्तित्व है गौतम बुद्ध का, महावीर स्वामी का। महावीर स्वामी भी निर्विकार हो चुके हैं, क्रोध, लोभ, मोह से भी रहित हैं। गौतम बुद्ध भी निर्विकार हैं। उनको भी मालूम नहीं कि स्त्री किसको कहते हैं और पुरुष किसको कहते हैं, लेकिन शुकदेव जैसा प्रेम-रस गौतम बुद्ध के अन्दर नहीं है। तप में गौतम बुद्ध अद्वितीय हैं। शील का गुण उनके पास है। कोई गाली दे रहा है, तो भी मुस्कुरा रहे हैं। उनमें कोई विकार नाम की वस्तु नहीं है।

महावीर स्वामी के कान में एक किसान लकड़ी डाल देता है, खून बहने लगता है, लेकिन उनके चेहरे पर विकार नहीं झलकता। हम तप में महावीर स्वामी के समान भी नहीं बन सकते, लेकिन महावीर स्वामी निराकार तक ही पहुँचते हैं। गौतम बुद्ध अनुभव में

निराकार तक पहुँचते हैं। जैसा कि मैंने कहा कि अर्धनिद्रा, अर्धजाग्रति, सुषुप्ति जैसी अवस्था में, स्वप्न जैसी अवस्था में, उन्होंने कहा कि चित्त की वासनाओं को दूर करके, सारे संस्कारों को दग्ध करके, अखण्ड की राह में मैंने शाश्वत जीवन को प्राप्त किया है। अब मेरा पुनः जन्म नहीं होगा।

जो भी योगी सम्पूर्ण वासनाओं का क्षय करके, चित्त के संस्कारों का क्षय करके, मन, चित्त, बुद्धि को कारण में लय करके, उस अव्याहत गति से महाशून्य, निराकार में भ्रमण करते हैं, या कभी-कभी ध्यान की सूक्ष्म दृष्टि से अव्याकृत की झलक पा लेते हैं, क्योंकि अव्याकृत का प्रतिबिम्ब ही नारायण के रूप में है, वे नारायण के स्वरूप में ओत-प्रोत हो जाते हैं।

रामकृष्ण परमहंस भी नारायण के स्वरूप में ओत-

प्रोत हो जाते हैं, लेकिन रामकृष्ण परमहंस जैसा निर्मल हृदय वाला व्यक्ति कोई विरला ही होता है, जिनके आसन के नीचे विवेकानन्द ने परीक्षा लेने के लिए रुपये का एक सिक्का रख दिया था, तो वह तड़पने लगे थे। किसी अशुद्ध व्यक्ति के पास जाने पर उनका हाथ टेढ़ा हो जाता था। उनकी पूरी रात ध्यान में बीत जाती है। सवेरे से ध्यान में बैठे हैं, पूरा दिन बीत जाता है। इस अवस्था में पहुँचे हैं रामकृष्ण परमहंस। वह भी निराकार से आगे अपनी गति नहीं बना पा रहे हैं।

हमारी तुलना उस बदनसीब से की जा सकती है, जिसके पास एक पूरा कक्ष हीरों से भरा पड़ा है, लेकिन चाबी उसके पास नहीं है। चाबी उसने गुम कर दी है। अब कह रहा है कि मैं क्या करूँ? मेरे पास एक कमरा—भर हीरे पड़े हैं, किन्तु चाबी मैंने गुम कर दी है, ताला

बन्द है। मैं भूख से मरा जा रहा हूँ। मेरे शरीर के कपड़े भी फट गये हैं।

मेरा कहने का आशय आप समझ गये होंगे। सिद्धार्थ के पास जो तप-त्याग था, शील-सन्तोष था, वह हमारे पास नहीं है। हमारे समाज के बड़े-बड़े परमहंसों के पास भी वह गुण नहीं आया है, जो गौतम बुद्ध के पास था। लेकिन तारतम ज्ञान का प्रकाश न मिलने से उन्होंने शून्य में समाधि लगाई। जैसे चित्त का गुण है, आप जिसकी धारणा करेंगे, चित्त की वृत्तियाँ जिसमें लगी रहेंगी, वही समाधि में दृष्टिगोचर होगा।

जैसे सड़क के किनारे पर पत्थर लगे होते हैं, जिन पर किलोमीटर की माप लिखी रहती है कि अमुक नगर से अमुक नगर इतने किलोमीटर दूर है। आप उसके आगे बैठ जाइये। दस घण्टे बैठे रहिये, पत्थर के टुकड़े को

धारणा में लाते रहिये। शालिग्राम के टुकड़े को धारणा में लाते रहिये, शिवलिंग को धारणा में लाते रहिये, तो क्या दिखेगा? वही शिवलिंग, शालिग्राम, या पत्थर का टुकड़ा। कभी आयेगा, कभी ओझल हो जायेगा।

अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचेंगे, तो आप शून्य समाधि तक पहुँचेंगे, जिसमें सब कुछ शून्य ही शून्य हो रहा है। राजकुमार सिद्धार्थ को कई गुरु मिले। उन्होंने सांख्य और पतञ्जलि के योगदर्शन के अनुसार पुरुष और प्रकृति को जाना। अपनी शुद्ध चेतना से आत्मद्रष्टा हुआ जाता है। सात दिन-सात रात की अखण्ड समाधि के पश्चात् भगवान बुद्ध सभी वासनाओं से रहित हो गये। अपने चित्त, मन, बुद्धि को कारण में लय कर दिया। उपनिषद् में कहा गया है—

यदा पंच अवतिष्ठन्ते, ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिः चैव न विचेष्टते, आहुःतम् परमां गतिं॥

जहाँ पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने मूल कारण मन में लय को प्राप्त हो जायें, तथा मन, चित्त, बुद्धि, अहम् सभी अपने कारण स्वरूप में लय को प्राप्त हो जायें, उसको परम गति कहते हैं। यह अवस्था गौतम बुद्ध ने प्राप्त कर ली थी। आप शुद्ध हो गये, सभी संस्कारों को आपने दग्ध कर लिया, लेकिन यह जो भाव बना है कि मैं हूँ। गौतम बुद्ध ने "मैं" के अस्तित्व का समापन कर लिया।

एक गहन दार्शनिक तथ्य की बात मैं आपको कह रहा हूँ, जिसको न जानने से सारा बौद्ध मत भ्रम में भटका पड़ा है। बुद्ध का आशय यह था कि जब सम्यक् समाधि में स्वयं का अस्तित्व मिट गया कि मैं हूँ ही नहीं,

तो मैं अपने को क्या कहूँ? इस अवस्था में मैं स्वयं को आत्मा की उपाधि कैसे दूँ? जैसे एक नदी है। नदी जब सागर में मिल गयी तो नदी का अस्तित्व समाप्त हो गया, लेकिन यह नहीं कह सकते कि नदी थी ही नहीं। नदी तो है, लेकिन उसका स्वयं का अस्तित्व समापन की तरफ है।

बुद्ध के कहने का यही आशय था कि मैं जिस अध्यात्म के शिखर पर पहुँचा हूँ, उसमें मैं का अस्तित्व ही नहीं है। "मैं" का अस्तित्व दो रूपों में रहता है। एक तो लौकिक "मैं" और एक चेतना के शुद्ध स्वरूप की "मैं"। मैं ज्ञानी हूँ, राजा हूँ, यह लौकिक "मैं" है, इसको तो हटाना ही पड़ेगा। जब इन सारे द्वन्द्वों से परे होकर आप अपने आत्म-स्वरूप में स्थित होंगे, तो उस शब्दातीत अवस्था में स्वयं को आत्मा शब्द से कैसे

सम्बोधित कर सकते हैं? यदि आप नहीं हैं, तो ध्यान-समाधि कौन लगा रहा था?

बौद्ध दर्शन का एक अंग है क्षणिकवाद, एक अंग है शून्यवाद। उनका मूल सिद्धान्त क्या है? हर क्षण कम्पन हो रहा है और हर क्षण प्रत्येक वस्तु का रूप बदल रहा है। यह बात तो बिल्कुल सही है। आज जो मकान देखते हैं, कुछ सालों के बाद पुराना दिखता है। हमारे रूप में पल-पल परिवर्तन हो रहा है। पल-पल गति हो रही है। अणु, परमाणु, इलेक्ट्रान, प्रोटान, सभी गतिशील हैं, क्योंकि गति ही अणु का कारण है। जिस क्षण यह गति मिट जायेगी, महाप्रलय हो जायेगी।

जो चैतन्य (चेतन) है, वह जड़ से अलग है। कल्पना कीजिये कि हमारे शरीर में चेतना (जीव) का अस्तित्व नहीं है, तब भी शरीर के अणु-परमाणु तो गति

कर ही रहे हैं, उसमें और इनमें कुछ तो भिन्नता होनी चाहिये। ये जो मेरे सामने थम्भे दिख रहे हैं, इनके अणु-परमाणु में भी गति हो रही है, लेकिन इनमें प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मन, गति, इन्द्रियों के विकार, अन्तःकरण, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ये लक्षण नहीं हैं, इसलिए इनको जड़ कहा जाता है। जड़ और चेतन में भेद होता है। हम यह कहें कि चेतन नाम का कोई पदार्थ जड़ से पृथक् नहीं होता, यह भ्रम है।

बुद्ध ने समाधि अवस्था में जिस लक्ष्य को पाया था, उसमें स्वयं की चेतना अनन्त चेतना में अपने अस्तित्व को विलीन करती है, इसलिये कहा जाता है कि मैं हूँ ही नहीं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं होता कि आत्मा का अस्तित्व ही नहीं है। क्षणिकवाद का सिद्धान्त भी कुछ हद तक सत्य है, शून्यवाद का सिद्धान्त भी सत्य है,

लेकिन परम सत्य नहीं। इसके परे चेतना का शुद्ध स्वरूप होता है, और उसके परे है चेतन का भी चेतन, वह परमतत्त्व जो अनन्त प्रेममयी है, अनन्त आनन्दमयी है, अनन्त ज्ञानमयी है। मैंने इन विभूतियों की बातें आपके सामने रखीं।

हठयोग का एक और उदाहरण देता हूँ। गुरु गोरखनाथ के गुरु हैं मत्स्येन्द्रनाथ। मैं यह बातें इसलिये कह रहा हूँ कि आप काफी कुछ सत्य को जानने की तरफ अपने कदम बढ़ा सकते हैं, क्योंकि मैं जिस-जिस व्यक्ति की बात कर रहा हूँ, ये सभी अपने-अपने क्षेत्र के बड़े हैं। मत्स्येन्द्रनाथ ने हिमालय की बर्फीली चोटियों में घोर साधना की, जहाँ तापमान शून्य से भी तीस सेन्टीग्रेड नीचे रहता है। सामान्य व्यक्ति इसको झेल नहीं सकता।

योगदर्शन के विभूतिपाद में इसका वर्णन किया गया है कि जो योगी पंचभूतों पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह शिला में भी प्रवेश कर सकता है। यदि कीचड़ में चला जायेगा, कीचड़ उसको स्पर्श नहीं करेगा। इच्छा अनुसार कहीं भी जा सकता है। आकाश में उड़ सकता है। वैसी सारी सिद्धियाँ मत्स्येन्द्रनाथ के पास थीं। गोरखनाथ जी ने भी उनको ग्रहण किया, लेकिन हठयोग तक सीमित रह गये। चैतन्य समाधि को प्राप्त न करने के कारण, वह भी ब्रह्म-साक्षात्कार से वंचित रह गये।

गौतम बुद्ध समाधि के शिखर तक तो पहुँचे, आत्म-स्वरूप में स्थिर हो गये, लेकिन जिस निर्बीज समाधि (असम्प्रज्ञात योग) का उन्होंने वर्णन किया, उसमें निरालम्ब समाधि (बिना किसी आधार के समाधिस्थ अवस्था) में होकर उन्होंने अपने आत्म-

स्वरूप को देखा। और जब आत्म-स्वरूप को शाश्वत आनन्द में संयुक्त कर लिया, तो कह दिया कि मैं हूँ ही नहीं। उनके अनुयायियों ने "मैं नहीं हूँ" का अर्थ यह लगा लिया कि आत्मा है ही नहीं, परमात्मा है ही नहीं, क्योंकि परमात्मा के नाम पर ही उस समय सारा पाप कर्म हो रहा था।

जब धर्म की बागडोर तामसी पुरुषों के हाथ में चली जाती है, तो विनाश निश्चित है। उस समय धर्म की बागडोर उन पण्डितों और पुरोहितों के हाथ में थी, जो माँस खाते थे, शराब पीते थे, जो वेद के मन्त्र का रट्टा तो लगा लेते थे, लेकिन मन्त्रों की व्याख्या उनको नहीं आती थी, और जो आती भी थी, वह वाममार्ग के अनुसार थी।

वेद के किसी भी मन्त्र में नहीं लिखा है कि पशुओं

की हत्या करो। उन वाममार्गी विद्वानों ने अर्थ निकाला कि पशुओं को काट करके हवन करोगे, तो देवता खुश होंगे। तुम्हें सुख-समृद्धि देंगे और तुम्हें स्वर्ग मिलेगा। ब्रह्मा, विष्णु, और शिव तुम्हारे ऊपर खुश रहेंगे। गौतम बुद्ध, जो समाधि के शिखर तक पहुँचे हुये थे, वह ब्रह्मा, विष्णु को परमात्मा क्यों मानते? स्वर्ग के लिये गायों की, बछड़ों की, भेड़ों की हत्या उनसे देखी नहीं गई। उस समय हजारों पशु एकसाथ यज्ञ में काटे जाते थे। गौतम बुद्ध ने कहा कि तुम परमात्मा के नाम पर इन भोले-भाले बेजुबान पशुओं की गर्दन काट रहे हो, तो मैं तुम्हारे ऐसे परमात्मा को नहीं मानता।

पुरोहितों ने कहा कि ऐसा वेद में लिखा है। गौतम बुद्ध ने उनको सिखापन देने के लिये कहा कि यदि तुम्हारे वेद में ऐसा लिखा है, तो मैं तुम्हारे ऐसे वेद को

भी नहीं मानता, क्योंकि हिंसा करना धर्म नहीं होता। मैं शाश्वत धर्म को मानता हूँ। इसलिये उनको शिक्षा देने के लिए बुद्ध ने जो कुछ कहा, उनके शिष्यों ने उसका विकृत रूप ले लिया। आज सारा बौद्ध मत नास्तिकवाद की तरफ उमड़ पड़ा है।

विपश्यना, ध्यान, समाधि, और चितवनी में थोड़ा-थोड़ा सूक्ष्म अन्तर है। ध्यान का अर्थ होता है—

ध्यानं निर्विषयं मनः।

मन का विषय से रहित हो जाना ही ध्यान है। इसमें जो लक्ष्य है, केवल वह ही दृष्टिगत होता है, कोई दूसरा विषय आपके मन में न आये। आपके चित्त में किसी भी अन्य विषय का संस्कार न पैदा हो। जैसे आप राज जी का ध्यान कर रहे हैं, तो आपके चित्त में यह बात कभी

नहीं आनी चाहिये कि कल के लिये राशन है या नहीं, कल मेरी छुट्टी है या नहीं। यदि यह बात आ गई, तो इसका आशय यह है कि आपका ध्यान भंग हो गया। स्थूलता से सूक्ष्मता तक जब तक आप कदम नहीं बढ़ायेंगे, तब तक आप ध्यान में डूब नहीं सकते।

सुन्दरसाथ जी! कभी भी पुस्तक पढ़कर, बिना किसी के निर्देशन के, आपको योगी बनने का प्रयास नहीं करना चाहिये। कितने ही सुन्दरसाथ को मैंने उस गलती से रोका है, जब उन्होंने गीता में पढ़ लिया कि दोनों भौंहों के बीच में ध्यान करने वाला परम गति को प्राप्त होता है। उन्होंने समझा कि दोनों भौंहों के बीच का स्थान यह होता है। इसको कहते हैं भृकुटी। यहाँ पर आप धारणा करेंगे, तो आपको बुरे-बुरे सपने दिखाई देंगे, सिर में दर्द हो सकता है, आप पागल भी हो सकते

हैं।

रतनपुरी में रहते समय एक महात्मा आये थे। वे सिक्ख पन्थ के अनुयायी थे। वह कहने लगे कि आप प्राणायाम कम करते हैं। देखिये, मैं प्रतिदिन आठ सौ कपालभाति करता हूँ। काफी बातें हुईं। कुछ सालों के बाद मुझे पता चला कि वह भी पागल हो गये। बिना किसी योग्य गुरु के निर्देशन के मनमानी करने का यह परिणाम हो सकता है। इसलिए योगदर्शन में लिखा है—

अथ योग अनुशासनम्।

जब श्री कृष्ण जी ने कहा था कि दोनों भौंहों के बीच में ध्यान करना है, तो ऊपर का जो स्थान है इसको कहते हैं त्रिकुटी, और दोनों भौंहों के बीच का जो स्थान है इसको कहते हैं भृकुटी। यदि आप त्रिकुटी में

मन को रोकेंगे, चित्त की वृत्तियों का निरोध करेंगे, तो आपको ॐ की ध्वनि सुनाई पड़ेगी, आपके ज्ञान-चक्षु खुल जायेंगे, आप दिव्य-द्रष्टा बन जायेंगे, सुषुम्ना प्रवाहित होने लगेगी। आगे आपको अलौकिक सिद्धियाँ भी मिलनी शुरू हो जायेंगी। लेकिन दो अँगुल नीचे भृकुटी में ध्यान किया नहीं कि आप पागलपन के शिकार हो सकते हैं।

ध्यान का अर्थ होता है, जिससे एकमात्र लक्ष्य ही भासित हो। सिद्धार्थ को एक ही धुन सवार थी कि जन्म-जन्मान्तरों से मैं भटक रहा हूँ, मुझे शाश्वत शान्ति चाहिये, और ऐसा मार्ग जो संसार के सारे लोगों को भवसागर के बन्धन से मुक्ति दिला दे। इसलिये पहले उन्होंने हठयोग का रास्ता लिया था। महीनों, वर्षों तक धूप में पड़े रहना, शीत में पड़े रहना, तीन-तीन समय

प्राणायाम करना, अन्न का एक दाना ही ग्रहण करना, परिणामस्वरूप शरीर क्या हो गया? हड्डियों का ढाँचा। नदी में स्नान करने जाते हैं, चलने की ताकत नहीं, किसी तरह से चले जाते हैं।

आप सुन्दरसाथ तो ऐसा कष्ट चार दिन नहीं झेल सकते। उस राजकुमार सिद्धार्थ से पूछिये, जिसने पहले कभी धूप और शीत का कष्ट नहीं देखा था, किन्तु वह सुकोमल, सुन्दर राजकुमार एक वृक्ष के नीचे सात वर्षों तक रह गया। जो ठण्डे क्षेत्र में रहने वाले सुन्दरसाथ हैं, वे यहाँ की गर्मी से घबराते हैं। कई सुन्दरसाथ गर्मी से घबराकर चले भी गये हैं। वह राजकुमार सिद्धार्थ था, जो धुन का पक्का था, जिसने तय कर लिया—

इह आसने शुष्यति वा शरीरं, त्वक् अस्थि मासं विलयं प्रयाति।

इस आसन पर बैठे-बैठे भले ही मेरा शरीर सूख जाये, हड्डियों का ढाँचा बन जाये, रक्त सूख जाये, किन्तु जब तक मैं ज्ञान प्राप्त नहीं करूँगा, बोधि लाभ प्राप्त नहीं करूँगा, मैं अपने आसन से उठूँगा नहीं। यह दृढ़ संकल्प करके वे सात दिन, सात रात समाधि में बैठे रहे थे। उनका आसन उठा नहीं। शरीर वासनाओं से रहित हो चुका है। उनके सामने मायावी दृश्य प्रस्तुत होते हैं, अत्यन्त सुन्दर रमणियाँ प्रकट होती हैं, तो उपेक्षा से दृष्टि हटा लेते हैं। भयानक राक्षसों का समूह प्रगट हो जाता है कि किसी तरह से उनका ध्यान विचलित हो, लेकिन वे राग-द्वेष से परे हो चुके हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार सबको जीत चुके हैं।

उन्होंने शुद्ध ज्ञानमयी दृष्टि में स्थित होकर सत्य को पाया। इन्द्रियों को उनके कारण में लीन किया। मन को

उसके कारण में लीन किया। बुद्धि और अहम् को कारण में लीन किया। जो अव्यक्त चेतना थी, वह संस्कारों के कारण ही तो जन्म धारण कर रही थी। जब सारे संस्कारों का क्षय हो गया, तो पुनर्जन्म कहाँ से सम्भव है? अपने आत्म-स्वरूप में स्थित हो गये।

अब अखण्ड की अनुभूति होने लगी। उन्हें बोध हो गया कि सारा जगत स्वप्नवत् है। क्षण-क्षण इसका रूप बदल रहा है। यह तो परमाणुओं का समूह है। उन्हीं परमाणुओं की स्थूलता से सृष्टि का प्रकटन हो रहा है। उन्होंने जीवन, जीव के कर्म, फल, एवं भोग को देखा। जन्म-मरण के चक्र को देखा और एक ही रास्ता निकाला कि सारे दुखों की जड़ में तृष्णा है। तृष्णा का कारण चित्त के संस्कार हैं। जब यह कारण में लय हो जायेंगे, तो जन्म-मरण का चक्र छूट जायेगा। इसलिए

जिस विशेष ज्ञान-दृष्टि से देखा, उस पद्धति को विपश्यना कहा गया।

विपश्यना का अर्थ है— विशेष ज्ञान-दृष्टि से देखना। इससे पहले हम सामान्य आँखों से देख रहे होते हैं। उस पद्धति में क्या होता है? श्वासें आ-जा रही हैं। इस नासिका से श्वास आ रही है, उस नासिका से जा रही है, उधर से श्वास आ रही है, इधर से जा रही है, यह पहला चरण है। बाद में धीरे-धीरे स्वांसी पर मन को एकाग्र किया जाता है। उसके पश्चात् पूरे शरीर में ज्ञान-दृष्टि से देखा जाता है कि संवेदना कहाँ हो रही है?

आपको बैठने में तकलीफ हो रही है, आप द्रष्टा होकर देखिये। आप आराम से हैं, इसको भी द्रष्टा होकर देखिये। आपकी किसी ने बहुत प्रशंसा कर दी है, तो भी द्रष्टा होकर देखिये। आपकी निन्दा हो रही है, तो भी

घबराइये नहीं, द्रष्टा होकर देखिये। द्रष्टा होकर देखने का तात्पर्य यह है कि आप चित्त को सारे संस्कारों से रहित करने का प्रयास कर रहे हैं। उसके लिये योगेश्वर श्री कृष्ण ने सबसे सरल तरीका बताया—

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रम् दिशंश्च न अवलोकयन्।

अर्थात् इधर-उधर न देखते हुये नासिका के ऊपर ध्यान कीजिये। यह हिन्दू समाज का दुर्भाग्य है कि इसमें पत्थरों की पूजा, चित्रों की पूजा शुरू हो गई। अब तो पेड़ों की पूजा होने लगी है, मजारों की भी पूजा हिन्दू करते हैं। "गोगा जाहर पीर" पता नहीं कितने सौ साल पहले शरीर छोड़े होंगे? अब जगह-जगह उनके मन्दिर बन गये हैं। उनको भी परमात्मा के समान माना जाने लगा है। पता नहीं पौराणिक हिन्दुओं के कितने परमात्मा हैं? किस पर मन एकाग्र करें? इसीलिये हिन्दू जाति का

दिन-प्रतिदिन पतन हो रहा है।

बुद्ध ने कहा परमात्मा है या नहीं है, इस बात को भुला दो। पहले तो अपने स्वरूप में स्थित हो जाओ। जो आपका मन संसार में भटक रहा है, उसको रोको। जो आपके चित्त में जन्म-जन्मान्तरों के विषयों के संस्कार जमे पड़े हैं, उनको हटाओ। इसके लिये सूक्ष्मता की तरफ चलना पड़ेगा। श्वांस आ रही है, श्वांस जा रही है, संवेदना हो रही है, उस पर मन को एकाग्र करो, तभी आत्मदर्शन होगा।

आत्मदर्शन का अभिप्राय है, स्वकीय (निज) स्वरूप का दर्शन। मैं हूँ कौन? कितने जन्मों से मैं भटक रहा हूँ। अन्ततोगत्वा, जब स्वकीय स्वरूप का भी जो आपको बोध हुआ कि "मैं हूँ कौन", वह शाश्वत सत्य में विलीन कर देंगे, तो सत्य आपको स्वतः ही प्राप्त हो

जायेगा।

आत्मा और परमात्मा की दार्शनिक झिक-झिक देखनी हो, तो छः संस्कृत के आचार्यों को बुलाइये जो छः शास्त्रों के विद्वान हों। उनमें एक व्याकरणाचार्य भी रख लीजिये, एक भागवताचार्य रख लीजिये, और चार ऐसे विद्वान रख लीजिये जो चारों वेद पढ़ें हों। फिर नाटक देखिये। हो सकता है कि ये सारे विद्वान आपस में लात-घूँसे मारना भी शुरू कर दें। एक अपनी व्याख्या में कहेगा, "नहीं, हमारा मत यह है।" दूसरा कहेगा, "नहीं, ऐसा होगा।" उनमें शब्द-ज्ञान तो है, अनुभूति का ज्ञान नहीं है, ऋतम्भरा प्रज्ञा नहीं है।

इसी कारण बुद्ध ने कहा कि शब्दों के जाल में फँसकर तुमने गाय की, घोड़े की, मनुष्य की बलि कराई। क्या तुम्हारा परमात्मा यही है, जो पशुओं का

खून पीता है? यज्ञशाला तो सुगन्धित पदार्थों से सुशोभित होनी चाहिए थी और तुमने भोले-भाले बछड़ों को काटना शुरू कर दिया, भेड़ों को काटना शुरू कर दिया। जिस गाय को इतना पवित्र माना जाता है, उस गाय की तुम हत्या करते हो, घोड़े की हत्या करते हो, बैलों की हत्या करते हो, कहते हो कि हम यज्ञ कर रहे हैं। इससे हमारा देवता खुश होगा, हमारा परमात्मा खुश होगा। यह सब आडम्बर है। मैं ऐसे किसी परमात्मा को नहीं मानता, जो पशुओं के रक्त से प्रसन्न होता हो।

परिणाम यह हुआ कि देश में नास्तिकवाद का बोलबाला हो गया। बुद्ध ने जो कुछ कहा अक्षरशः सत्य कहा, लेकिन बुद्ध के कथनों को न उनके अनुयायियों ने समझा, न तत्कालीन समाज ने समझा क्योंकि ज्ञान में तमोगुण सबसे बड़ा शत्रु है। वेद के मन्त्रों को रटा तो

गया, लेकिन उसके वास्तविक अर्थ पर किसी ने विचार नहीं किया। इसलिए वेद ने कहा है—

यः तत् न वेद किम् ऋचा करिष्यति।

यदि उस परमात्मा को नहीं जाना, तो केवल ऋचाओं को रटकर क्या करोगे? आज भी काशी में चले जाइये, सब पुरुष सूक्त का पाठ करने वाले झूम-झूमकर या हाथ का इशारा करके स्वरों के उतार-चढ़ाव में ऐसा दर्शायेंगे जैसे कि प्रकाण्ड विद्वान हों, लेकिन उनको अर्थ नहीं आता। यदि अर्थ नहीं मालूम है, तो केवल रट्टा लगा लेने से विशेष लाभ नहीं होता।

गौतम बुद्ध के समय में ऐसे ही पण्डितों का बोलबाला था, जो वेदों के नाम पर पशुओं की हिंसा करते थे। जो दर्शन के विद्वान थे, उन्होंने भी विकृति

फैला रखी थी। इसलिये भगवान बुद्ध ने सबका खण्डन कर दिया और विपश्यना की राह बतायी तथा कहा, "अपनी प्राणवायु पर मन को केन्द्रित करो। जैसे-जैसे मन रुकता जायेगा, राग, द्वेष, सुख, दुःख, सारी संवेदनाओं से आपका निज स्वरूप पृथक होता जायेगा। बाद में, आप आत्म-स्वरूप में स्थित हो जाओगे। उसके पश्चात् क्या होगा, यह जानने के लिये किसी तर्क-वितर्क की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जो अवस्था प्राप्त होगी उसमें बुद्धि का कोई काम ही नहीं होगा।"

बुद्धि न विचेष्टते आहुः तां परमां गतिम्।

क्योंकि जब बुद्धि रहेगी ही नहीं, तो आप सोचेंगे कैसे? उन्होंने यह कहा कि मैं जो रास्ता बता रहा हूँ, उस रास्ते पर चलकर देखो। है या नहीं, यह सोचना तुम्हारा काम नहीं। एक बार भगवान बुद्ध जा रहे थे, एक

व्यक्ति मिला, कहा कि क्या परमात्मा है? भगवान बुद्ध कहते हैं कि किसने कहा कि परमात्मा है, परमात्मा तो नहीं है। थोड़ी देर और आगे गये, एक व्यक्ति मिला और बोला, "भगवन! क्या परमात्मा नहीं है?" भगवान बुद्ध कहते हैं, "किसने कहा कि परमात्मा नहीं है। परमात्मा तो है।"

आनन्द को बहुत आश्चर्य हुआ कि भगवान एक जगह तो कहते हैं कि परमात्मा है, जबकि दूसरी जगह कहते हैं कि नहीं है। बुद्ध कहते हैं कि आनन्द! तुम नहीं समझोगे। मैं इन व्यक्तियों को विचारधारा से बाँधना नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ कि ये स्वयं आत्मदर्शी बनें। जो मैं रास्ता बता रहा हूँ, उस रास्ते पर चलें, और वास्तविक सत्य को जानें कि परमात्मा का स्वरूप क्या है? एक विचारधारा में बँध जाने से ये केवल शब्दों के ज्ञान में

उलझ जायेंगे, सत्य देखने का प्रयास नहीं करेंगे। इसलिये जो पद्धति सत्य का दर्शन कराये, उसको कहते हैं विपश्यना।

अभी मैंने आपको शुकदेव जी का उदाहरण दिया, अक्षर ब्रह्म का उदाहरण दिया। शुकदेव जी को समाधि की वही अवस्था प्राप्त है, जो भगवान बुद्ध को प्राप्त है। शुकदेव जी भी निर्विकार हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि सारे द्वन्द्वों को उन्होंने जीत लिया है। दूसरे शब्दों में, ज्ञान की साक्षी के लिये वे जनक के पास जाते हैं, तो राजा जनक उनसे जानबूझकर नहीं मिलते। राजा जनक ने अपनी दिव्य-दृष्टि से देख लिया था कि शुकदेव आ रहे हैं। तीन दिन शुकदेव जनक के राजमहल के बाहर बैठे रहते हैं। जनक जी ने पहले द्वारपालों से कह दिया था कि तीन दिन तक घुसने नहीं देना। वे घुसना

चाहते हैं, द्वारपाल झिड़की देकर भगा देते हैं।

आपमें से कोई ऐसा सुन्दरसाथ है, जो इतनी सहनशीलता रखता हो? यदि आप सुन्दरसाथ आयें और आपको कमरा मिलने में पाँच मिनट की देरी हो जायेगी, तो आप रुठकर चले जायेंगे कि दोबारा सरसावा नहीं जाना और आपको पानी पिलाने के लिये छोटे-छोटे बच्चे पहले ही दरवाजे पर खड़े रहते हैं।

जनक आते हैं। समझ गये कि इन्हें तितिक्षा है। तितिक्षा किसको कहते हैं? सुख-दुःख, लाभ-हानि आदि सारे द्वन्द्वों को सहन करने की क्षमता ही तितिक्षा है।

द्वन्द्व सहनं तपः।

सभी द्वन्द्वों को सहन कर लेना ही तप है। जनक

आते हैं। आदर करके ले जाते हैं, लेकिन अभी परीक्षा की घड़ी पूरी नहीं हुई है। शुकदेव को छप्पन प्रकार के व्यञ्जन परोसे जाते हैं। शुकदेव के शयन कक्ष में पूरा श्रृंगार किया हुआ है। षोडश वर्षीया कन्यायें उनके पलंग के चारों तरफ बैठा दी जाती हैं। नृत्य किया जाता है कि शुकदेव पर किसी भी तरह मोह का आवरण पड़े। शुकदेव ध्यानावस्थित हो जाते हैं। किसी भी रमणी की तरफ आँख नहीं उठाते, किसी से घृणा भी नहीं करते, ध्यान करके शयन करते हैं। प्रातःकाल उठ जाते हैं। ध्यान करते हैं। ऐसे हैं शुकदेव।

क्या हमारा आचरण ऐसा है? हम सुन्दरसाथ तो शुकदेव के त्याग-तप के हजारवें हिस्से के बराबर भी त्याग नहीं कर रहे, लेकिन शुकदेव को भी परमधाम का ज्ञान प्राप्त नहीं था। मैं इसलिये कह रहा हूँ कि आप जैसा

बदनसीब न इस ब्रह्माण्ड में कोई हुआ है, न कभी होने वाला है। यह प्रणामी (निजानन्दी) समाज ऐसा है, जिसके पास सारे ज्ञान रूपी धन की थाती तो है, किन्तु वह कराह रहा है, चीख-चिल्ला रहा है कि मैं भूखा मर रहा हूँ।

शुकदेव अक्षर की वासना है, निराकार को पार करके बेहद मण्डल में महारास का दृश्य देखते हैं। भगवान शिव कैलाश की गुफा में बैठकर दिव्य समाधि द्वारा अखण्ड में अपनी जगह बनाते हैं। भगवान विष्णु दिन-रात समाधि में लगकर ध्यान द्वारा उस मन्जिल को प्राप्त करते हैं। सनकादिक (सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, और सनातन), ये चारों ब्रह्मा जी के मानस पुत्र हैं। पाँच साल की उम्र में ही लग चुके हैं। किसके लिये? दिव्य ज्ञान की प्राप्ति के लिये। ये दिन-रात

ध्यान-समाधि में रहते हैं। इन्होंने भी निराकार के बन्धन को पार कर लिया है। निराकार के बन्धन को पार करके अखण्ड बेहद मण्डल में अपनी जगह बनाई है।

इन पञ्चवासनाओं का एक ही लक्ष्य है- अक्षर ब्रह्म। सारी सत्ता किसमें समाहित है? अक्षर ब्रह्म में। अक्षरातीत ही अक्षर ब्रह्म के रूप में लीला कर रहे हैं। लेकिन वह स्वरूप भी मूल मिलावा में जाने का अधिकार नहीं रखता, क्योंकि उसके पास प्रेम नहीं है।

जब अक्षर ब्रह्म मूल मिलावा में नहीं जा सकते, तो शुकदेव को भी, सनकादिक को भी जाने का अधिकार नहीं। कबीर जी को भी मूल मिलावा में जाने का अधिकार नहीं मिल सकता, और गौतम बुद्ध को भी नहीं मिल सकता। जब गौतम बुद्ध को नहीं मिल सकता, तो हठयोग के जितने भी आचार्य हैं, चाहे मत्स्येन्द्रनाथ जी

हों या गुरु गोरखनाथ जी हों, उनको भी नहीं मिल सकता।

पतञ्जलि की जो योग की विद्या है, वह आपको आत्म-स्वरूप में स्थित करा देगी। जैन मत का वीतराग योग भी इसी लक्ष्य को प्राप्त करायेगा।

वीतराग का अर्थ क्या होता है? राग से रहित हो जाना। जिसके सारे राग समाप्त हो चुके हैं। वह वीतराग कहलाता है। जिस योग से यह लक्ष्य प्राप्त होता है, उसे वीतराग योग कहते हैं। जिस पद्धति से चेतना के धरातल पर संस्कारों एवं कर्मफल भोग की वासनाओं से रहित होकर सृष्टि के चक्र को जाना जाता है, उस पद्धति को क्या कहते हैं— विपश्यना।

चित्तवृत्ति निरोधः योगः।

जिससे चित्त की वृत्तियों के निरोध द्वारा ही चित्त में जन्म-जन्मान्तरों के जो भी संस्कार हैं, सब का निरोध करके अपने शुद्ध आत्म-स्वरूप में स्थित हुआ जाता है, उसे कहते हैं पतञ्जलि का योगदर्शन। जो योग दर्शन कहता है, वही वीतराग योग कहता है, वही गौतम बुद्ध का विपश्यना योग कहता है। लेकिन आजकल एक होड़ सी चल गई है।

योगदर्शन वाले कहेंगे कि हम सच्चे हैं, ये विपश्यना वाले झूठे हैं, विपश्यना वाले कहेंगे कि जो हम जानते हैं, वह दुनिया में किसी को भी मालूम नहीं है और हमारा ज्ञान सबसे ऊँचा है। वीतराग वाले कहेंगे कि नहीं, हमारा ज्ञान सबसे अच्छा है, विपश्यना वालों से भी श्रेष्ठ है। यह सारा साहित्य ज्ञानपीठ के पुस्तकालय में रखा हुआ है।

आजकल तो एक प्रवृत्ति और चल गई है। रजनीश

के साहित्य में एक बात मिलती है कि भगवान बुद्ध और महावीर स्वामी दोनों ही समकालीन थे, लेकिन दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। रजनीश अपने समय के प्रखर वक्ता थे। और तरुण सागर जी, जिनकी सभाओं में वर्तमान में लाखों की भीड़ इकट्ठी होती है, ऐसे मनीषी भी यदि गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी में छोटे-बड़े की कल्पना कर लें, तो दुःखद स्थिति बनती है।

बुद्ध के अन्दर अपने अहम् का कोई भाव नहीं था, महावीर स्वामी के अन्दर भी कोई अहम् का भाव नहीं था। लेकिन आज इनके अनुयायियों में घोर युद्ध है। जैन मत के अनुयायी सिद्ध करेंगे कि महावीर स्वामी गौतम बुद्ध से ज्यादा बड़े थे। गौतम बुद्ध के अनुयायी सिद्ध करेंगे कि भगवान बुद्ध महावीर स्वामी से ज्यादा बड़े थे और उन्होंने लिखित में भी ये सारी बातें ग्रन्थों में लिख

रखी हैं।

विपश्यना को मानने वाले भी अपने ग्रन्थों में यही बात लिख रहे हैं कि पतञ्जलि के योगदर्शन में जो कुछ बातें योग की मिली हैं, वह विपश्यना पद्धति से ली गई हैं। श्री कृष्ण ने भी विपश्यना से ही सीखकर गीता में इसकी तरफ संकेत किया है। प्रश्न यह है कि गौतम बुद्ध का जन्म तो ढाई हजार साल पहले हुआ और योगेश्वर श्री कृष्ण जी ने जो गीता में पाँच हजार वर्ष पहले कहा था, उस समय तो विपश्यना की पद्धति ही नहीं थी, फिर यह कैसे हो गया?

यदि हमारे अन्दर पक्षपात और संकुचित मानसिकता आ जाती है, तो हम सत्य का पालन करना नहीं चाहते और भ्रमवश हम किसी सम्प्रदाय विशेष से बन्ध जाते हैं तथा उस सम्प्रदाय की गलत मान्यताओं

को भी सही सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तथा दूसरों की सत्य मान्यताओं को भी झूठा साबित करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसी स्थिति में हम धर्म के सच्चे राही नहीं होते, हम एक सम्प्रदाय के राही बन जाते हैं, क्योंकि सम्प्रदाय की बेड़ियाँ हमें कभी उससे मुक्त होने का रास्ता नहीं देती और यही दुर्भाग्य है।

सभी मतों में द्वेष फैला हुआ है। दूसरों को छोटा बनाना, अपने मत के अनुयायियों को ही बड़ा बनाना, अपने ही मत की विचारधारा को सही साबित करना और दूसरी सभी विचारधाराओं को मिथ्या सिद्ध कर देना। इसी प्रकार के पक्षपातपूर्ण रवैये के कारण आज मानव समाज का बहुत अधिक अहित होता जा रहा है।

अभी साढ़े ग्यारह बज गये हैं। ध्यान, विपश्यना, चितवनि, और समाधि का विषय अभी पूरा नहीं हुआ है।

कल इसको और विस्तार से समझाने का मैं प्रयास करूँगा। मन के बारे में भी बताया जाएगा।

सत्य क्या है, जानिये, और इस सत्य को समाज में फैलाइए। सत्य को अंगीकार कीजिए। किसी रूढ़िवादी विचारधारा से जुड़ना नहीं चाहिये। हमारा समाज रूढ़िवादिता से ग्रसित हो चुका है क्योंकि हमारे समाज में वाणी के सत्य को अंगीकार नहीं किया जाता। उसने भागवत से अपने सारे संस्कार ले लिये।

जितनी ऊर्जा हम माथा रंगने में लगायें, माला जपने में लगायें, भागवत के किस्से-गप्प सुनने में लगायें, भागवत की आरतियाँ करने में लगायें, या शरीयत के बन्धनों में फँसे रहकर व्यय करें, उतनी ऊर्जा यदि हम चितवनी द्वारा अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत को दिल में बसाने में लगायें, तो पता नहीं हम कहाँ से कहाँ पहुँच

जायेंगे। लेकिन हमारे साथ शरीरयत जोड़ दी गई है।

यदि आपके गले में कण्ठी है, तो वह सुहाग का चिह्न माना जाता है। गले में लकड़ी बाँधना सुहाग का चिह्न नहीं है। सुहाग का चिह्न तो हमारी आत्मा का प्रेम है। यदि आत्मा के अन्दर प्रेम नहीं है, तो कण्ठी बाँधने से भी कुछ नहीं होगा। इसलिये हमें सत्य को देखना है। जो वाणी में कथित है, वही सत्य है। हमारा समाज यदि वाणी का अनुशरण नहीं कर रहा है, वाणी के विपरीत बोल रहा है तो हम समाज की बातों को मानने के लिये मजबूर नहीं हैं।

हम केवल श्री प्राणनाथ जी की वाणी को मानेंगे, जो उनके आवेश द्वारा कही गई है। इसलिये सुन्दरसाथ में जागरुकता फैलानी अति आवश्यक है। सभी उस सत्य को मानें, जो अक्षरातीत श्री प्राणनाथ जी ने वाणी में

कहा है। संसार क्या कहता है, इसकी चिन्ता न कीजिये।
आप सत्य पर चलेंगे, तो भी संसार पत्थर मारेगा।

नदी का प्रवाह जब बह चलता है, तो उसमें
रुकावट बनने वाले पत्थर को या तो बालू बनना पड़ता
है या चुपचाप खड़ा रहना पड़ता है। पानी अपनी जगह से
निकल जाता है, वैसे ही आप सत्य की उस नदी के
समान बनिये, जो अपना रास्ता स्वयं ढूँढ लिया करती
है। आपकी आत्मा अपने प्राणेश्वर अक्षरातीत से मिले।
यही हमारे जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य होना चाहिये।



पंचम पुष्प

प्रश्न- आप कहते हैं कि हठपूर्वक राज जी नहीं मिलते, जबकि युगलदास जी महाराज जी ने हठपूर्वक अपनी आँखों पर पट्टी बाँधी और राज जी ने आकर दर्शन देकर क्या उनकी पट्टी नहीं खोली? कृपया हमें समझाने की कृपा करें।

उत्तर- एक बात याद रखिये। हठ करने का अधिकार सबको नहीं होता। राजा अपनी महारानी का हठ पूरा कर सकता है, दासी का हठ पूरा नहीं करेगा। दासी को बाहर निकालकर अपने धन द्वारा कई दासियाँ इकट्ठी कर सकता है, लेकिन महारानी को महल से निकालने का अधिकार उसको भी नहीं होता।

महारानी के निकालते ही प्रजा विद्रोह कर सकती है

और राजा भी दुःखी हो सकता है, क्योंकि राजा के दिल का सम्बन्ध महारानी से है। वह महारानी के लिये तड़प सकता है, दासी के लिये नहीं तड़प सकता। इन्द्रावती जी ने भी तब कहा है—

जिहां हूं तिहां तमे आओ।

जब विरह में स्वयं को डुबो दिया, अपनी "मैं" का आवरण हटा दिया जो जीव के साथ जुड़ा हुआ था। हर सुन्दरसाथ इन्द्रावती जी की राह पर नहीं चल सकता। हर सुन्दरसाथ युगलदास जी नहीं बन सकता। युगलदास जी ने अपनी आँखों पर पट्टी अवश्य बाँधी, किन्तु उसके पहले वे कई वर्ष घोर साधना कर चुके थे। परमधाम का अनुभव कर चुके थे। तब उन्होंने कहा, "राज जी! इस पट्टी को आप ही खोलेंगे", और पट्टी बाँधकर परमधाम का वर्णन करते रहे।

वर्णन करते-करते सारे परमधाम का वर्णन किया। तब श्री जी ने आकर प्रत्यक्ष दर्शन दिया, उनकी पट्टी खोली, और ऐसी मान्यता है कि उन्होंने श्री जी के चरणों में शीश झुकाया और हमेशा के लिये तन छोड़ दिया। लेकिन यह तो ध्यान रखिये, जब युगलदास जी ने यह हठ किया होगा, उसके पहले कितने वर्षों की साधना उनके साथ जुड़ी है?

आपके मन में शान्ति है नहीं, विकारों में मन फँसा हुआ है। कभी धन का मद, कभी रूप का मद, कभी प्रतिष्ठा का मद आपको व्याकुल किये हुए है। और आप भी यदि युगलदास जी की नकल करेंगे, तो वह राज जी क्यों पूरा करेंगे? इसलिये यदि हठ करना है, तो महारानी बनिये। दासी या दास बनकर आप उस हठ को पूरा नहीं करवा सकते।

इन्द्रावती जी की आत्मा ने भी हब्शा में कहा, "धाम धनी! आप मेरे सामने आओ।" आप नकल कर लें कि मैं भी बिना खाये रह जाऊँगा और राज जी को हब्शा की तरह बुला लूँगा, तो ऐसा नहीं है। यह देखिये कि मिहिरराज का जीव मरु राजा का जीव है, जहाँ सूक्ष्म शरीरधारी ऋषि-मुनियों का निवास है।

जिन्होंने "Autobiography of a Yogi" (योगी की आत्मकथा) किताब पढ़ी होगी, या पुस्तकालय में एक किताब है "हिमालय के योगियों की गुप्त सिद्धियाँ", उसमें यह वर्णन है कि कलाप ग्राम हिमालय का वह स्थान है, जहाँ कोई सामान्य व्यक्ति नहीं जा सकता। आप वहाँ आधुनिक साधनों से जायेंगे, तो भी आपको कुछ नहीं दिखाई देगा। जो समाधि अवस्था को प्राप्त योगी होते हैं, उन्हीं को दर्शन होता है कि किस तरह से

सूक्ष्म शरीरधारी ऋषि-मुनि वहाँ विचरण कर रहे हैं। भागवत में इसे कलाप ग्राम के नाम से वर्णित किया गया है।

लाहिड़ी महाशय को उनके गुरु ने रानीखेत से आगे बुलवाया था। यह स्थान कैलाश से लेकर मानसरोवर और बद्रीनाथ क्षेत्र तक में फैला हुआ है, लेकिन वहाँ के रहने वालों को भी इसके बारे में कुछ पता नहीं है।

पूर्व जन्म से ही श्री देवचन्द्र जी और श्री मिहिरराज जी के जीव देवापि और मरु इतने बड़े योगी रह चुके हैं। आपका जीव तो कलियुग के ऐसे वातावरण में है, जिसमें सबको अपने मन के बारे में पता है। यदि आपका हृदय निर्मल नहीं हुआ, उस स्तर तक नहीं पहुँचा, तो आपकी प्रार्थना क्यों सुनी जायेगी?

एक लड़की है, उस देश के राजा से कुछ परिचय भी नहीं और जिद करके राजमहल में घुसने की कोशिश करे, तो क्या होगा? द्वारपाल उसको घुसने नहीं देगा। यदि उस कन्या का सम्बन्ध राजा से हो जाता है, तो जो द्वारपाल घुसने नहीं देते थे, वही द्वार पर जाने पर अभिवादन करेंगे और कहेंगे कि महारानी जी! अन्दर प्रवेश कीजिये।

बस इतनी सी बात है। आप जब तक विरह में डूबकर, प्रेम में डूबकर, अपनी "मैं" का समापन नहीं कर सकते, आप एक पट्टी नहीं, सौ पट्टियाँ बाँधें, तो भी राज जी खुश नहीं होंगे। हाँ, अधिकार पाने से पहले कर्त्तव्य पूरा करना होगा। आप अपने को उस योग्य बनाइए कि राज जी भी आपके विरह-प्रेम से पिघल जायें, अन्यथा केवल धोखा देकर जिद करने से राज जी कभी भी

आपकी प्रार्थना नहीं सुनेंगे।

प्रश्न- योग के सिद्धान्त के अनुसार साधक को केवल एक ही केन्द्र पर ध्यान करने का आदेश है। वाणी के आधार पर हम राजश्यामा जी तथा पच्चीस पक्षों में अलग-अलग ध्यान लगाते हैं। क्या यह उचित है? इससे ध्यान में एकाग्रता कैसे लायें?

उत्तर- सुन्दरसाथ जी! सागर और श्रृंगार से पहले परिक्रमा ग्रन्थ का वर्णन किया गया है और परिक्रमा ग्रन्थ की पहली ही चौपाई प्रेम के प्रसंग से शुरू होती है।

अब कहूं रे इस्क की बात, इस्क शब्दातीत साख्यात्।

जो कदी आवे मिने सब्द, तो चौदे तबक करे रद।।

परिक्रमा से पहले खिल्वत ग्रन्थ अवतरित हुआ, जिसमें परमधाम के मूल मिलावा की सुगन्धि दी गई है।

उस सुगन्धि को पाने के लिये आपको प्रेम की राह अपनानी पड़ेगी।

जब आया प्रेम सोहागी, तो मोहजल लेहेरां भागी।

मोहजल की लहर क्या है? मन के बन्धन में हम फँसे पड़े हैं। मैं और मेरा— यही तो मोहजल की लहरें हैं। मैं हूँ और मेरा यह कुछ है। शरीर मेरा है, संसार मेरा है, यह गृह मेरा है, ये मेरे रिश्ते—नाते, मेरी पत्नी—बच्चे हैं, और मैं हूँ। इसको मिटा दीजिये, माया मिट जायेगी, लेकिन मैं और मेरे का बन्धन कौन तोड़ेगा? केवल प्रेम।

जिसके हृदय में प्रेम आयेगा, वह मैं और मेरा का बन्धन तोड़ेगा। कल मैंने ध्यान के प्रसंग में बताया था कि किस तरह से राजश्यामा जी की शोभा को बसाते—बसाते आपके अन्दर विरह का रस आना शुरू होगा। विरह का

रस जब परिपक्व होगा, तो प्रेम का रस आयेगा। प्रेम का रस आने पर आप और धनी एकरस हो जायेंगे। तब आपके सम्मुख युगल स्वरूप साक्षात् आ जायेंगे।

एकरस होइये इस्क सों, चले प्रेमरस पूर।

फेर-फेर प्याले लेत हैं, स्याम स्यामा जी हजूर॥

इसलिये धाम धनी ने परिक्रमा ग्रन्थ में सबसे पहले प्रेम का वर्णन किया। परमधाम को देखना है, तो प्रेम लाइये और स्थूलता से सूक्ष्मता की तरफ चलिए। परिक्रमा ग्रन्थ में पच्चीस पक्षों का वर्णन किया जा रहा है।

पच्चीस पक्ष क्या हैं? राज जी के हृदय का प्रकट रूप। वहाँ कोई नदी नहीं है, कोई पहाड़ नहीं है, कोई महल नहीं है, लेकिन सब कुछ है।

अक्षरातीत के हृदय में जो प्रेम और आनन्द क्रीड़ा

कर रहा है, वही प्रेम और आनन्द यमुना जी के रूप में दस धाराओं में दिखाई दे रहा है। वह जल दुनिया का जल नहीं है। दूध से भी करोड़ों गुना उज्ज्वल और मिश्री से भी अनन्त गुना मीठा, वह जल है। कहने का तात्पर्य क्या है? अक्षरातीत के हृदय में जो प्रेम और आनन्द का रस बहता है, वही यमुना जी के रूप में प्रवाहित होता है।

जो यमुना जी के सात घाट दर्शाये गये हैं, वे इस बात के प्रतीक हैं कि मन की सात वृत्तियाँ होती हैं। यमुना जी के जल के रूप में प्रवाहित होने वाली वृत्ति रूप उस जल में क्रीड़ा करने के लिये मन की वृत्तियों को इसमें डुबो दीजिये, अर्थात् सखियों का मन, श्यामा जी का मन, सभी पशु-पक्षियों का मन यमुना जी के रूप में प्रवाहित होने वाले जल में क्रीड़ा कर रहा है। यह भाव है।

यह न समझिये कि केल, लिबोई, अनार, अमृत,

जामुन, नारंगी, और वट— ये सारे तो इस दुनिया के वृक्ष हैं, इनके माध्यम से दर्शाया जा रहा है। इनसे सुन्दर— सुन्दर वृक्ष इस संसार में है। उनका नाम क्यों नहीं लिया? हिमालय में एक देवदार वृक्ष होता है, जो बहुत सुन्दर होता है। और तो और, ईरान में एक ऐसा वृक्ष (चिनार) होता है, जिसकी सुन्दरता से आपका मन मुग्ध हो जायेगा। उसका नाम नहीं लिया गया।

इनमें लाक्षणिकता है कि केले का वृक्ष किस तरह से कोमलता लिये हुए है। सखियों के शरीर में जो कोमलता है, स्निग्धता है, उसको दर्शाने के लिये केले का दृष्टान्त दिया गया है। लिबोई किसका प्रतीक है? लिबोई का रंग पीला होता है। यह कान्ति का प्रतीक है। अनार क्या है? आप देखते हैं कि अनार के दाने सटे—सटे रहते हैं। वह वहदत (एकत्व) का प्रतीक है। इसलिये इन सारे वृक्षों

का नाम लिया जा रहा है। इन वृक्षों के स्थूल प्रतीकों के द्वारा आपको परमधाम का सौन्दर्य, कोमलता, सुगन्धि, एकत्व आदि को दर्शाने का प्रयास किया गया है, ताकि हमारी मायावी बुद्धि किसी तरह से उस स्वलीला अद्वैत के एकत्व के रस को समझ सके।

सारी दुनिया कहती है कि अक्षरातीत आनन्दमयी है, तो वह आनन्द के लिये क्या करता है? परमात्मा है, यह सब जानते हैं। परमात्मा चेतन है, दुनिया यह भी जानती है, तो परमात्मा क्या निठल्ला बैठा रहता है या मौनी बाबा बनकर बैठा रहता है अथवा क्या करता है?

इसका उत्तर संसार में किसी के पास भी नहीं है कि जब परमात्मा आनन्द का सागर है, तो उसके आनन्द की लीला कैसी है? परिक्रमा ग्रन्थ में वर्णित लीला मानवीय भावों के रूप में दर्शाने का एक लघु प्रयास है।

जैसे सागर के जल को भी घड़े में भर दिया जाये और कह दिया जाये कि यह सागर है। गंगा के जल को गिलास में भरकर दिखलाया जाता है कि मैंने अपने कमरे में गंगा को रख रखा है। जबकि यथार्थता यह होती है कि गंगा को नहीं रख रखा होता है, बल्कि गंगा के जल से एक गिलास भरकर उसको अपने कमरे में रखा जाता है। बस इतनी सी बात है।

अक्षरातीत के अनन्त सौन्दर्य, अनन्त प्रेम, अनन्त आनन्द को परिक्रमा ग्रन्थ में दर्शाया गया है। इसलिये चाहे हौज कौसर हो, माणिक पहाड़ हो, पुखराज पहाड़, पश्चिम की चौगान, छोटी रांग की हवेली, या बड़ी रांग की हवेली हो, चौबीस हांस का महल हो। ये सब क्या हैं? अक्षरातीत के हृदय से प्रवाहित होने वाले प्रेम और आनन्द के सागर की लहरों का प्रकट रूप हैं।

सूक्ष्मता में हमारा मन कम भटकेगा, लेकिन जब लीला रूप में दर्शाया जायेगा कि देखिये— यमुना जी का जल हौज कौसर में मिलता है, हौज कौसर में चार घाट आये हैं, और जो हौज कौसर के मध्य टापू महल आया है कि ऐसी भावना कीजिए कि उसकी चाँदनी में चतुर्दशी की रात को राज जी के साथ हम बैठे हैं। जब उस प्रेममयी लीला का वर्णन होगा, तो जो हमारा मन संसार में भटक रहा है, वह वहाँ की नूरी शोभा के अनन्त आनन्द में मग्न हो जायेगा।

धीरे—धीरे इन पच्चीस पक्षों की शोभा से हमें सागर में ले जाया जा रहा है। सखियों के श्रृंगार को दर्शाया जा रहा है, राज जी के श्रृंगार को दर्शाया जा रहा है, श्यामा जी के श्रृंगार को दर्शाया जा रहा है। पच्चीस पक्षों से और सूक्ष्मता में ले जाया गया, राज जी, श्यामा जी, और

सखियों की तरफ।

श्रृंगार में मारिफत की अवस्था का वर्णन है, तो परिक्रमा और सागर में हकीकत की अवस्था का वर्णन है। श्रृंगार में एक-एक अंग का वर्णन हो रहा है। बताया गया है कि सभी पच्चीस पक्ष, श्यामा जी, सखियाँ, खूब-खुसालियाँ राज जी के हृदय से प्रकट होने वाले स्वरूप हैं। परमधाम में वैसे कोई वस्तु प्रकट नहीं होती, "व्यक्त" शब्द कह सकते हैं। क्योंकि कोई चीज प्रकटती है, तो इसका आशय है कि उसके पहले प्रकट नहीं थी। बर्फ है, बहने लगता है तो जल कहलाता है। जब जम जाता है, तो वही पानी तो बर्फ कहलाता है।

अक्षरातीत का हृदय, जो अनन्त सौन्दर्य, प्रेम, और आनन्द से परिपूर्ण है, जब वह क्रीड़ा करने लगता है, तो उसको कहते हैं, श्यामा जी, सखियाँ, पच्चीस पक्ष। जब

सागर का जल लहरों के रूप में न उछले, केवल शान्त पड़ा रहे, उसको कहते हैं मारिफत। और यह श्रृंगार में उसी अवस्था का वर्णन है, जिसमें श्यामा जी का श्रृंगार नहीं, सखियों का श्रृंगार नहीं, केवल राज जी के एक-एक अंग में डुबोया जाता है, इसलिये आपको जो चितवनि कराई जाती है, वह मूल मिलावा की चितवनि कराई जाती है।

चितवनि का प्रारम्भ मूल मिलावा से होता है और समापन भी मूल मिलावा से ही होता है। राजश्यामा जी के दीदार बिना आप पच्चीस पक्षों में घूम नहीं सकते और पच्चीस पक्षों में घूमने के बाद अन्ततोगत्वा राज जी के दिल में ही डूबना पड़ेगा। इसलिये पहली और अन्तिम कक्षा मूल मिलावा है। राज जी के सौन्दर्य में डूबे बिना आप कुछ नहीं कर सकते।

प्रश्नकर्ता का जो आशय है कि साधक को एक ही केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिये या पच्चीस पक्षों में ध्यान लगाना चाहिये? पहली बात तो यह है कि यदि आप पच्चीस पक्षों की शोभा देखना चाहते हैं, तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन यह जो अष्ट प्रहर की लीला के आधार पर सवेरे उठापन किया जाता है, फिर पाँचवी भूमिका से पहली या तीसरी भूमिका में आते हैं, भोग लगाया जाता है, फिर दोपहर का भोजन, फिर शयन, फिर वनों की सैर, पुनः कभी कृष्ण पक्ष में नृत्य की लीला, फिर शयन। इतनी चितवनि करने के लिये लगभग छह घण्टे चाहिये।

यदि आपने रट्टा लगा लिया और भागते जा रहे हैं, तो वह चितवनि नहीं हुई, वह चिन्तन हुआ, और उस लीला का चिन्तन जिससे आपको कुछ भी दर्शन होने

वाला नहीं है। यदि आपने पच्चीस पक्षों का सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो बहुत अच्छी बात है, लेकिन देखने के लिये आपको चितवनि करनी ही पड़ेगी।

यदि आप हौज कौसर को देखना चाहते हैं, तो पहले आपको मूल मिलावा में ही जाना होगा, राजश्यामा जी का दीदार करना होगा, तब उनकी मेहेर की छत्रछाया आपको हौज कौसर का दर्शन करायेगी, पुखराज का दर्शन करायेगी। लेकिन पुखराज का दर्शन कर लिया, हौज कौसर का दर्शन कर लिया, सभी पच्चीस पक्षों का दर्शन कर लिया, फिर आप क्या करेंगे?

अन्त में जिनके हृदय के व्यक्त स्वरूप ये पच्चीस पक्ष हैं, उन्हीं के हृदय में आपको अपनी आत्मा को भी डुबोना पड़ेगा। यदि आप पच्चीस पक्षों को देखने के इच्छुक हैं, तो भी आप पहले मूल मिलावा में जाइये और

समय निकालकर एक दिन में केवल एक पक्ष को देखिये। यदि आपने सेवा पूजा के आधार पर सारे पच्चीस पक्षों के हर भागों को देखने का प्रयास किया, तो यह बौद्धिक चिन्तन मात्र रह जायेगा।

राज जी के स्वरूप में अवश्य यह वर्णन किया जाता है, क्योंकि पाँच हजार के समूह में कुछ सुन्दरसाथ सेवा में रहते थे। उनके पास इतना समय नहीं था कि वे कई-कई घण्टे चर्चा सुन सकें और कई-कई घण्टे ध्यान में बैठ सकें। कुछ रात्रि के समय आकर कहते हैं, "धाम धनी! हमें भी तो आत्मा का आहार मिलना चाहिये।" उनके लिये ये चीज अवतरित हुई कि सारे परमधाम के पच्चीस पक्षों को साथ में वर्णित कर दिया जाता है।

इसी तरह से अष्ट प्रहर की सेवा पूजा में कई जगह ऐसे प्रसंग हैं, जिनमें पच्चीस पक्षों की शोभा को संक्षिप्त

रूप से वर्णित कर दिया जाता है। उसको दोहराने से पच्चीस पक्षों की शोभा मानस पटल पर अंकित हो जाती है। लेकिन मेरी राय यह है कि जिस भी पक्ष की शोभा को देखना चाहते हैं, उसके लिये समय दीजिये। भागने से कोई लाभ नहीं होगा। किसी दिन हौज कौसर देख लीजिये, किसी दिन माणिक पहाड़ देख लीजिये, किसी दिन पुखराज पहाड़ देख लीजिये।

यदि आप दो घण्टे की चितवनि करते हैं, तो एक घण्टा तो मूल मिलावा में अवश्य लगाइये, ताकि आपके हृदय में, रोम-रोम में प्रेम भर जाये। एक घण्टा पुखराज में लगा लीजिये। एक दिन एक घण्टा चौबीस हांस के महल में लगा लीजिये। यदि आप एक घण्टे की चितवनि कर सकते हैं, तो आधा घण्टा मूल मिलावा में लगाइये और आधा घण्टा पच्चीस पक्ष में से किसी एक पक्ष को

देखिये। यदि प्रतिदिन पच्चीस पक्षों को देखने का प्रयास करेंगे, तो दर्शन नहीं होगा।

हाँ, राज जी की मेहर से आपके अन्दर यदि प्रेम का आवेश आ गया, तो आपको एक ही दिन में पच्चीस पक्षों का दर्शन हो सकता है। लेकिन यदि आप चितवनि करके स्वयं देखना चाहते हैं, राज जी की छत्रछाया में, तो पहले प्रेम का भाव लेना पड़ेगा और उसके बिना यह सम्भव नहीं होगा।

कल जो मैंने कहा था, वह केवल ध्यान में डूबने के लिये कहा था। जैसे आपने राजश्यामा जी का श्रृंगार याद कर लिया। कभी हाथ को देख रहे हैं। चरण कमलों में चित्त की वृत्ति चली गई, आप चरणों के आभूषणों को देखने लगे। फिर एड़ियों की तरफ ध्यान गया, तो आपका ध्यान लगेगा नहीं। जिसको समाधि कहते हैं या

ध्यान में डूबना कहते हैं, वह नहीं हो पायेगा, क्योंकि आपकी बुद्धि आपके आगे चलना शुरू कर देती है। चितवनि का तात्पर्य यह है कि आपका मन, आपका चित्त, आपकी बुद्धि कोई काम न करे। केवल आपको लक्ष्य दिख रहा हो। इस्राफील से ज्यादा बुद्धिमान तो आप होंगे नहीं। इस्राफील का स्वामी कौन है? अक्षर ब्रह्म। अक्षर का फरिश्ता है इस्राफील, जो जाग्रत बुद्धि है।

जिबरील का भी स्वामी अक्षर ब्रह्म है। जिबरील ने अखण्ड बेहद का ज्ञान संसार में दिया और इस्राफील को भी परमधाम की कोई जानकारी नहीं हो सकी थी। स्वयं सत अंग अक्षर ब्रह्म, जिनके लिये उपनिषदों में, ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है—

सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म।

अर्थात् वह ब्रह्म प्रकृष्ट ज्ञान स्वरूप है, सत्य स्वरूप है। वह अक्षर ब्रह्म अक्षरातीत के सत् अंग हैं। परमधाम के अक्षरधाम में रहने पर भी मूल मिलावा में जाने का अधिकार नहीं रखते, तो आपकी बुद्धि आपको कहाँ ले जा सकती है? इसलिये बुद्धि की दौड़ को छोड़ दीजिये। इश्क की महफिल में इल्म को दरवाजे के बाहर रखकर आइये।

यदि आप चितवनि में दीदार चाहते हैं, तो बुद्धि के तर्क-वितर्क को किनारे कर दीजिये। अपने हृदय से मैं के पर्दे को हटा दीजिये, केवल प्रेम भर लीजिये। आगे आत्मा अपने आत्म-चक्षुओं को खोलकर माया के पर्दे को हटा देगी और सारे परमधाम का दर्शन करने लगेंगी।

जहाँ चितवनि है, वहाँ बुद्धि नहीं। जहाँ बुद्धि है, वहाँ चर्चनी है, चिन्तन है। परमधाम की चितवनि के लिये

चर्चनी का ज्ञान आवश्यक है। परिक्रमा ग्रन्थ की टीका में चितवनि के बारे में अच्छा विश्लेषण किया गया है। एक सौ आठ नक्शे यहाँ से छप चुके हैं। जब आप चितवनि में बैठिये, तो बुद्धि को एक आधार-भर दीजिये।

बुद्धि द्वारा कोई भी माप या गणना चितवनि में नहीं आनी चाहिये कि यह इतना लम्बा है, यह इतना चौड़ा है। पच्चीस पक्षों की शोभा को नक्शों से समझिये, किन्तु जब चितवनि में आँखें बन्द कर लेते हैं, तो केवल प्रेम का आधार चाहिये। वही प्रेम आपको परमधाम में रास्ता दिखाता जायेगा। वही प्रेम आपको बतलाता जायेगा कि आगे क्या है? प्रेम ही दीदार करायेगा।

ल्याओ प्यार करो दीदार।

बस एक चीज याद रख लीजिये कि राज जी का

जोश ही आपको कालमाया से योगमाया में ले जायेगा। वही जोश सद्गुरु के रूप में दिखेगा। आप सोचते हैं कि हमारे सद्गुरु महाराज आते हैं। वही राज जी का जोश ही सद्गुरु के रूप में आयेगा, या गुम्मत जी की सेवा का ध्यान करेंगे तब श्री जी की कृपा से राज जी का जोश आपकी आत्मा के साथ जुड़ जायेगा।

जब तक जोश नहीं जुड़ेगा, तब तक आपका मन भटकता रहेगा। इसलिये यदि जोश चाहिये, तो गुम्मत जी की सेवा का ध्यान करना पड़ेगा, या किसी ऐसे ब्रह्ममुनि सद्गुरु का ध्यान करना पड़ेगा जिसने स्वयं राज जी को देखा हो।

जब जोश आयेगा, तब आपकी सुरता योगमाया में चलेगी। इश्क आयेगा, तब परमधाम के पच्चीस पक्षों में आपकी सुरता जायेगी। इसके पहले जोश को लाने के

लिये आपको विरह में तड़पना ही पड़ेगा। आप बुद्धि के बल से न तो योगमाया में जा सकते हैं और न ही परमधाम जा सकते हैं।

यह बात ध्यान में रखिये। बुद्धि द्वारा आप अच्छे प्रवचन कर सकते हैं, परमधाम का वर्णन सुना सकते हैं। दर्शन के लिये प्रेम चाहिये और उस प्रेम को पाने के लिये आपको अपने हृदय को कोमल बनाना ही पड़ेगा। कोई अन्य मार्ग नहीं है। अपने हृदय को निर्मल बनाना ही पड़ेगा।

हृदय में प्रेम और विरह का रस भरना ही पड़ेगा। नहीं तो क्या आवश्यकता थी सबको परिक्रमा की टीका, धाम सुष्मा, एवं पटदर्शन देने की? सबको समझा दिया जाता है, परमधाम देखने में ऐसा है, परमधाम देखना है तो इस शरीर का इतना मोह क्यों? इसके लिये तो

कसौटी पर अपने को कसना ही पड़ेगा।

यहाँ ४२-४५ डिग्री सेल्सियस का तापमान चल रहा है। आप जैसलमेर के इलाके में जाइये। हो सकता है वहाँ का तापमान ५५ डिग्री सेल्सियस हो और तपती दोपहरी में सेना के जवान राइफल लेकर पहरा दे रहे होंगे। आप तो वहाँ खड़े भी नहीं हो सकेंगे।

सियाचीन में जाइये, अरुणाचल में चले जाइये। अभी कश्मीर के लद्दाख में झगड़ा लगा था, पाकिस्तान ने हमला किया था, उस इलाके में चले जाइये। वहाँ सेना के जवान प्राण को अपनी हथेली पर रखकर देश की रक्षा करते हैं। शून्य के नीचे चालीस डिग्री का तापमान होता है लद्दाख में। वहाँ सीमा पर पहरा दे रहे होते हैं।

आप भी राज जी को पाने के लिये थोड़ा-सा कष्ट

झेलने को तैयार हो जाइये। आप अपने घुटनों को जरा सा भी कष्ट नहीं देना चाहते हैं, क्योंकि आपका शरीर कोमल गद्दे पर वातानुकूलित कमरे में सोते-सोते इतना नाजुक हो चुका है कि वह केवल शरीर के आराम के लिये राज जी को ठुकरा देना चाहता है।

ऐसा शरीर किस काम आयेगा? नीतिकारों ने कहा है— **"दानेन पाणिर्न तु कंकणेन।"** हाथ की शोभा दान देने से होती है, सोने के कंगन पहनने से नहीं। इस शरीर की शोभा तभी है, जब इसके रहते-रहते राज जी का साक्षात्कार हो जाये। आप चितवनि में बैठ जाइये, यदि थोड़ी पीड़ा हो रही है तो सहन कीजिये। बाद में पीड़ा का कुछ भी पता नहीं चलेगा।

यदि अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिये पूरा समय देते हैं, राष्ट्र की रक्षा करने के लिये कोई

सैनिक सर्दी और भयानक गर्मी को झेलने के लिये तैयार है, तो अनन्त लोकों के स्वामी, अक्षर के भी प्रियतम अक्षरातीत को पाने के लिये यदि आप दो घण्टे भी नहीं दे सकते, तो राज जी कैसे मिलेंगे? जिस अक्षर को पाने के लिये भगवान शिव ने हजारों-हजारों वर्षों की समाधियाँ लगाईं, सनकादिक ने लगाई, शुकदेव ने लगाई, जन्म लेते ही सब कुछ छोड़कर चल दिये।

आपको तो बस इतना कहा जाता है कि सुन्दरसाथ जी! रात को सोते समय एक घण्टा ध्यान कर लिया कीजिये। सवेरे उठिये तो एक घण्टे ध्यान कर लीजिये। आप इतना भी करने को तैयार नहीं हैं।

भगवान शिव ने तो सबको छोड़ दिया, हमेशा के लिये हिमालय की गुफा में चले गये। शुकदेव ने अपने पिता का भी मोह नहीं रखा। पीछे-पीछे व्यास जी पुत्र-

पुत्र करके पुकार लगा रहे हैं और शुकदेव जी को सुनाई नहीं पड़ता। पिता की बात अनसुनी कर दी। सनकादिक ने ब्रह्मा जी की बात अनसुनी कर दी। कबीर जी ने संसार को ठुकरा दिया।

ये अक्षर की पंचवासनायें हैं और आप तो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि कहलाते हैं। आप दो घण्टे देने के लिये तैयार नहीं। घुटनों को जरा कष्ट देने के लिये तैयार नहीं। इच्छा तो यही है कि राज जी मिल जायें। राज जी को हमने खिलौना बना रखा है। राज जी से ज्यादा आप अपनी पत्नी से प्रेम करते हैं, पत्नियाँ अपने पति से प्रेम करती हैं, आप अपने बच्चों से प्रेम करते हैं, सगे-सम्बन्धी, दोस्तों, और सहेलियों से प्रेम करते हैं। यह मैं कड़वा सच बोल रहा हूँ।

राज जी को आगे कर दीजिये। राज जी से सबसे

ज्यादा प्रेम कीजिये तो देखिये, राज जी क्यों नहीं आते हैं? राज जी को ऐरे-गैरों में न रखें। राज जी को नौकर की तरह कहते हैं, "राज जी! मैं एक महीने चितवनि करूँगी, नहीं आओगे तो छोड़ दूँगी।" तो राज जी नहीं आने वाले।

पहले राज जी, उसके बाद संसार का कोई रिश्ता। चाहे पति हो, चाहे पत्नी हो, चाहे बच्चे हों, चाहे दोस्त हों, या सहेलियाँ हों। मैं देखता हूँ, जब चार बहनें इकट्ठी होती हैं, तो चार घण्टे बात कर सकती हैं, लेकिन उनसे पूछा जाये कि चितवनि क्यों नहीं की? कहेंगी, "क्या करें, बहुत घर का काम पड़ा होता है।" क्यों? सहेलियों से गप्पे मारने के लिये समय मिल सकता है और राज जी के लिये समय ही नहीं मिल सकता। दोषी कौन है? हमें अपनी भूलों को सुधारना होगा। जब तक हम भूलें

करते रहेंगे, हमें राज जी का दीदार नहीं होगा।

प्रश्न- प्रवाही समाज में चितवनी कैसे करायें?

उत्तर- जो भी चितवनि के प्रशिक्षक होंगे, उनको बाद में प्रशिक्षित किया जायेगा कि नये लोगों के बीच में चितवनि का रूप क्या होगा। उनको हवेलियों की तरफ नहीं जाना होगा। एक मोटे तौर पर बता दिया जाएगा। कालमाया की विवेचना उन्हें करनी होगी, पहले समझाना होगा। योगमाया की विवेचना करनी होगी, ग्रन्थों के अनुसार बताना होगा कि योगमाया का अस्तित्व कैसे है? कालमाया की रूपरेखा कैसी है? सब बता दिया जायेगा और इसके पश्चात् केवल मूल मिलावा की मोटी रूपरेखा बता दी जायेगी कि मूल मिलावा की शोभा क्या है? कालमाया, योगमाया को पार करके मूल मिलावा में परब्रह्म का अति सुन्दर किशोर युगल स्वरूप

विराजमान है। केवल उन्हीं में धारणा करना बता दिया जायेगा।

उनको अट्टाइस थम्भ का चौक, चार चौरस हवेलियाँ— यह सब ज्ञात कराने की आवश्यकता नहीं है। सौ सीढ़ियों की चढ़ाई उनको नहीं करायी जायेगी। क्योंकि ऐसा करने से उनके मन में श्रद्धा नहीं रह जायेगी। वे सोचेंगे कि परमात्मा चार चौरस हवेलियों के बाद एक हवेली में बैठा रहता है। सौ सीढ़ियाँ चढ़कर जाना पड़ता है, तो उनके मन में श्रद्धा नहीं होगी। जहाँ श्रद्धा नहीं होगी, उसको दिल में बसाना सम्भव नहीं होगा।

यह जो वर्णन आपको कराया जा रहा है, केवल सुन्दरसाथ के लिये कराया जा रहा है। नये-नये प्रवाही समाज में जाकर परिस्थिति के अनुसार राज जी-श्यामा

जी की शोभा में डुबोने का प्रशिक्षण अलग से दिया जायेगा।

प्रश्न- सद्गुरु का स्वरूप चितवनि में हमारी आत्मा के साथ कहाँ जायेगा?

उत्तर- सुन्दरसाथ जी! किसी ब्रह्ममुनि परमहंस के साथ जो भी लीला होती है, वह लीला राज जी का स्वरूप ही करता है। राज जी का जोश ही करता है। आपका सम्बन्ध किसी ब्रह्ममुनि से है, परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी से है, बाबा दयाराम जी से है, मंगलदास जी से है, सरकार श्री से है। आप ध्यान करते हैं, तो आपको लगेगा कि सरकार श्री आये हैं, परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी आये हैं, बाबा दयाराम जी आये हैं, या छत्रसाल जी आये हैं, तो उनके रूप में जहाँ तक मैं समझता हूँ राज जी का जोश, राज जी का

स्वरूप ही तो लीला करता है।

आप बैठकर तारतम का पाठ करने लगे, तो इसका पाठ ऐसे होना चाहिये कि आपकी जीभ न हिले, होंठ न हिले, शरीर न हिले। तारतम का जप करने से संसार से ध्यान हट जाता है। आप गुम्मत जी की सेवा का ध्यान करें या सद्गुरु का ध्यान करें, ऐसे ब्रह्ममुनि का सद्गुरु के रूप में ध्यान करें, जिसने अपने हृदय में युगल स्वरूप की छवि बसा रखी है। महामति जी के धाम-हृदय में युगल स्वरूप विराजमान हैं, इसलिये जब आप गुम्मत जी की सेवा का ध्यान करें, तो आपकी आत्मा के समक्ष जो स्वरूप आयेगा, वही जोश, जो मुहम्मद की रूह को सत्स्वरूप तक ले जाता है, आपकी आत्मा को भी कालमाया के, निराकार के बन्धन से निकालकर सत्स्वरूप तक ले जायेगा।

जब तक जोश नहीं आयेगा, तब तक आप कितनी भी चितवनि करते रहिये, आप निराकार से परे नहीं जा सकते। आपका मन भटक जायेगा। आप ध्यान करेंगे, मन कहीं और चला जायेगा। यदि राज जी का जोश आ गया, तो समझ लीजिये कि उस दिन दर्शन अवश्य होना है। वही जोश आपको सत्स्वरूप तक खड़ा कर देगा। अब इसके बाद आपकी आत्मा में धनी की मेहर से जो प्रेम प्रकटेगा, वह प्रेम आपको पच्चीस पक्षों में, युगल स्वरूप के नख से शिख तक की शोभा में डुबो देगा।

इसलिये पहली आवश्यकता है विरह में डूबकर अपने हृदय को निर्मल करना, ताकि हमारे साथ राज जी का जोश जुड़ जाये। यदि आपके मन में विकार है, आपका मन चंचल है, तो कहाँ से राज जी का जोश आयेगा। कहाँ से आपकी सुरता निराकार को पार करके

योगमाया में पहुँचेगी। इसलिये सुन्दरसाथ को फल पर नहीं, बल्कि क्रिया पर ध्यान देना चाहिये। बहीखाता लेकर बैठने की जरूरत नहीं है कि मैंने एक महीने चितवनि करते हुये गुजार दिया, राज जी का जोश क्यों नहीं आया, दीदार क्यों नहीं हुआ।

प्रश्न- प्रेम किसे कहते हैं?

उत्तर- प्रेम को पंथ कराल महा,

तलवार की धार पर धावन है।

जो प्रेम करने वाला होता है, वह तलवार की धार पर दौड़ता है। उसको यह नहीं दिखाई देता है कि मेरे पैर कट जायेंगे। जो पहले ही मरने से डर जायेगा, वह प्रेम क्या करेगा? जब आप पहले ही बहीखाता लेकर बैठ गये हैं कि राज जी! आपका मेहर सागर का पाठ करते हुए

छह महीने हो गये हैं, आँखें बन्द करके आपको पुकारते-पुकारते चार महीने हो गये, आप आये नहीं, तो ऐसी स्थिति में दर्शन नहीं मिलना है।

आप अपने को लुटा दीजिये। किस तरह से लुटायेंगे आप? कुछ चाहत नहीं। केवल आप के मन में यही इच्छा हो कि तू बस जाए। आप यह मत सोचिये कि राज जी आयें तो मैं कह दूँ कि मुझे प्रधानमन्त्री बना दीजिये, या ऐसा कह दीजिये कि मेरे पास इतना ज्ञान हो जाए कि सारे सुन्दरसाथ मेरे चरणों में झुकने लगें। कोई चाहत नहीं। उनसे केवल उनकी चाहत होनी चाहिए। इसे कहते हैं प्रेम।

जब प्रेम आता है, तो प्रेमास्पद के सिवाए और कुछ भी चाहत नहीं रह जाती। एक कन्या है, उस देश के राजा से प्रेम करती है, जब तक राजा को चाहती है, तब

तक तो वह प्रेम कहलायेगा, और राजा की चाहत के बदले यदि राज्य चाहती है, महल में रहने की इच्छुक है, अच्छे-अच्छे भोजन की इच्छुक है, तो उसका प्रेम कलंकित हो जाता है।

इसलिये आप राज जी से धन न माँगिये, राज जी से ज्ञान न माँगिये, राज जी से संसार में शोभा न माँगिये कि सुन्दरसाथ में मेरी वाह-वाही हो जाए, राज जी से संसार का पद न माँगिये, राज जी से केवल राज जी को ही माँगिये कि राज जी! मेरे धाम-हृदय में आकर बस जाइए। मुझे और कुछ नहीं चाहिये। परमधाम की भी कामना मत कीजिये। परमधाम वाला जब आपके दिल में बस जायेगा, तब आपसे परमधाम को कौन छीनने वाला है? प्रेम का सिद्धान्त है— जिससे प्रेम है, केवल उसको वही चाहिये। इसलिये चितवनि करते समय केवल राज

जी श्यामा जी के दीदार की आकांक्षा डालिए।



षष्ठ पुष्प

प्रश्न- धनी के विरह में पल-पल आँसू बहाने के लिये क्या किया जा सकता है?

उत्तर- आँसू जान-बूझकर नहीं बहाये जाते। जब हृदय में प्रियतम से मिलन की तड़प गहरी होती जाती है, तो आँसू स्वतः आ जाते हैं। आँसू दो तरह के होते हैं— एक तो खुशी के आँसू होते हैं और एक दुख के आँसू होते हैं। जब सांसारिक कष्ट ज्यादा होता है और उसको हृदय सहन नहीं कर पाता, तो भी आँसू निकल पड़ते हैं।

आँखें क्या हैं? हृदय का दर्पण हैं। हृदय की सारी भावनायें आँखों से प्रकट होती हैं। हो सकता है किसी के पास वाक्पटुता हो, तो वह अपने हृदय की भावनाओं को छिपा सकता है, लेकिन आँखों से नहीं छिपा सकता।

चेहरे के भावों को भी कुछ छिपाने का प्रयास किया जा सकता है, लेकिन आँखों से छिपा पाना कठिन है। आँखें बोलती हैं, आँखें सुनती हैं, आँखें देखती हैं, और आँखें हृदय में डूबती भी हैं।

जैसे-जैसे राजजी की शोभा को आप विरह में देखने का प्रयास करते हैं, वैसे-वैसे विरह की अग्नि तेज होती जायेगी और आँसू स्वाभाविक रूप से निकलते जायेंगे। चितवनि में वैसे आँसू नहीं चाहिए, जैसे कि विलाप करने में जोर-जोर से चिल्लाया जाता है।

एक बार मैं बेहट पाठ में गया था। किसी का धामगमन हो गया था। मैं गया तो वहाँ कई बहनें रो रही थीं। जो भी बहन बाद में आती थी, दस मिनट रोती थी और उसके बाद खूब हँसने लगती थी। मैंने सोचा कि ये कैसे आँसू हैं? एक-दो घण्टे के बाद सब सामान्य सा हो

गया। यह तो एक प्रक्रिया है, किसी को दर्द नहीं है। एक लोकरीति है कि रोना है और दहाड़ मारकर रोना है। चितवनि में दहाड़ मारकर रोने की आवश्यकता नहीं है।

आपको पता ही नहीं चलेगा कि मेरी आँखों से आँसू कब निकल गये, क्योंकि जब ध्यान से उठेंगे तो आपका चेहरा आँसूओं से तर रहेगा। ध्यान में आपको पता नहीं चल पायेगा कि मेरी आँखों से आँसू निकले कि नहीं। कई जगह तो किसी के मरने पर भाड़े पर रोने वाले इकट्ठे किये जाते हैं। मैंने देखा तो नहीं है, पर सुना है कि शहरों में भाड़े पर रोने वाले इकट्ठे कर लिये जाते हैं।

यह जो भक्ति है, प्रेम लक्षणा भक्ति, यह अन्तरात्मा की भक्ति है। इसमें संसार में किसी को पता नहीं लगना चाहिये कि आप क्या कर रहे हैं? आप मन्दिर में पूजा-पाठ करेंगे, दुनिया को पता चल जायेगा। प्रेम लक्षणा

भक्ति में आपके कमरे में, बगल में जो सोया होगा, उसको भी कुछ पता नहीं चलेगा।

रातों करे उजागरा।

कियामतनामा में कहा है कि जब संसार सो रहा होता है, तो परमधाम की ब्रह्मसृष्टि रात्रि को जागकर अपने प्राणेश्वर को दिल में बसाती है। जैसे-जैसे उसके विरह की आग भड़कती जायेगी, वैसे-वैसे उसके विरह की व्यथा आँसूओं के रूप में उसकी आँखों से निकलती जायेगी। इसलिए कवि ने कहा है कि "विरह व्यथा में अश्रु बहाकर जलमय तूने कर डाला।" यह स्वाभाविक है, कुछ भी करना नहीं पड़ता।

आप धनी के दीदार के लिये प्रयास कीजिये, यह प्रयास आपके विरह की अग्नि को और भड़कायेगा। जैसे

कहीं आग लगी हो, छोटी सी चिन्गारी ज्वाला में बदल जाती है, वैसे ही विरह की छोटी सी चिन्गारी भयानक ज्वाला में बदल जायेगी और तब आपको अपने शरीर की सुध भी नहीं रहेगी।

प्रश्न- चितवनी में हमें केवल सखी भाव से बैठना है या अतिरिक्त प्रयास भी करना होता है?

उत्तर- पहली बात तो यह समझिये कि अँगना भाव या सखी भाव किसको कहते हैं? इसको एक बहुत विकृत रूप दिया जा चुका है।

आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पहले, मैं कंचनपुर मटिहारी में गया था। वहाँ कई व्यक्ति थे, जो महिला का भेष बनाकर सुन्दरसाथ के आगे-आगे खूब नाच रहे थे। वैसी परम्परा हमारे समाज में कई जगह देखने को

मिलती है कि सुन्दरसाथ पूर्ण ब्रह्म गाते समय खूब नाचने लगते हैं और कोई सिर पर दुपट्टा रख लेता है, कोई दुपट्टे को रखकर नौटंकी करने लगता है कि हम अँगना बन गये हैं। यह सब मात्र बाह्य आडम्बर है। इनसे अँगना भाव का कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

महारानी लक्ष्मीबाई और दुर्गावती वेशभूषा से स्त्री हैं, अन्तःकरण से क्या हैं— वीरांगना हैं। जब रानी लक्ष्मीबाई का विवाह हुआ, तो वह झांसी आई। कुछ दिनों तक उनसे तलवार का अभ्यास छूट गया था। एक दिन उन्होंने सोचा कि विवाह होने के बाद तो मेरा अभ्यास ही छूट गया। देखूँ कि मेरी तलवार में अब कितनी ताकत है? तलवार का एक वार अपनी महल के बाहर के थम्हे पर ऐसा मारा कि पत्थर का वह थम्हा टूट गया। यहाँ कितने भाई लोग बैठे हैं? इनमें से किसी

में भी लक्ष्मीबाई जैसी बहादुरी नहीं है। वह महिला है, लेकिन दिल किसका है? पुरुष का।

वैसे ही इन्दिरा गांधी के बारे में भी कहा जाता है। इन्दिरा गांधी का शरीर स्त्री का था, दिल किसका था? पुरुष का था। बुद्ध साधना में इतने डूब गये कि वे शरीर भाव से परे हो गये।

अँगना भाव का अर्थ क्या है? सौन्दर्य, प्रेम, और माधुर्यता का मिश्रण ही अँगना भाव है। पुरुष आकर्षित होता है और नारी आकर्षित करती है। किस प्रकार से? नारी अपने प्रेम का संरक्षण चाहती है। पुरुष अपने हृदय का प्रेम लुटाना चाहता है। यही दोनों में आकर्षण का मूल है।

नारी में कूट-कूटकर माधुर्यता भरी है, समर्पण की

भावना भरी है। समर्पण, सौन्दर्य, और प्रेम की मिठास का सम्मिलित रूप ही अँगना भाव है। बस इतना समझ लीजिये, इसका किसी शरीर के अंग-प्रत्यंग से कोई रिश्ता नहीं है।

राजकुमार सिद्धार्थ तप करते-करते इस प्रकार की माधुर्य भावना में डूब गये थे कि उनके लिये किसी चींटी को भी मार देना कठिन था। बुद्ध एक बार कहीं जा रहे थे। एक भेड़ का बच्चा चल भी नहीं पा रहा था। बुद्ध ने उस बच्चे को उठा लिया और अपनी गोद में बिठा लिया। यह घटना ईसा-मसीह के साथ भी होती है। उन्होंने भी एक भेड़ के बच्चे को उठा लिया था।

एक राजा हिरण के ऊपर तीर छोड़ना चाहता था। बुद्ध उस वन में थे। उन्होंने देखा कि यह राजा हिरण के बच्चे को मार डालेगा। बुद्ध उस राजा के रथ के आगे आ

गये और कहा कि राजा, मुझे मार लो, किन्तु इस हिरण के बच्चे को न मारो। जैसे एक माता अपने बच्चे की रक्षा करती है, वैसी ही भावना गौतम बुद्ध के अन्दर भी विकसित हो गई थी।

माँ के पास यदि पुरुषत्व होता, तो वह हथियार उठा लेती कि राजा, तुम मारोगे, तो मैं तुम्हें मार डालूँगी, लेकिन नारीत्व में हथियार उठाने की भावना नहीं है। उसमें ऐसी माधुर्यता है, कोमलता है कि वह मार नहीं सकती, खुद का बलिदान देकर भी उस हिरण के बच्चे को बचाना चाहती है। इसको कहते हैं माधुर्य भावना या अँगना भाव।

परमधाम की परिक्रमा वाणी में एक चौपाई आती है, जिसमें कहा गया है—

खावंद इनों में खेलहीं, धन-धन इनों के भाग।

अर्स के जानवरों का, कायम है सुहाग॥

परमधाम में तो पशु-पक्षी हैं। कहीं ऐसा वर्णन नहीं है कि केवल शेरनियाँ ही हैं। शेर भी हैं, चीते भी हैं, बड़े-बड़े हाथी भी हैं। यह नहीं लिखा है कि केवल हथिनियाँ रहती हैं या केवल बाघिनियाँ ही रहती हैं। परमधाम में जहाँ राज जी के सिवाए सखियों को केवल अँगना भाव में दिखाया गया है, तो पुरुष भाव में पशु-पक्षियों का वर्णन क्यों किया गया है? यहाँ तक कहा गया है—

एक-एक मोमिन के अलेखे सेवक।

सेवक शब्द तो पुल्लिंग है, स्त्रीलिंग क्या होगा? सेविका। शरीर की आकृति पर मत जाइये।

आपने सुना होगा कि अभी कुछ दिनों पहले उत्तर प्रदेश के एक आई.पी.एस. अधिकारी थे। वह सखी भाव बनाकर साड़ी पहनकर कार्यालय में भी आ जाया करते थे। उनको किसी ने बहका दिया था कि देखो, ऐसी वेश-भूषा बना लोगे तो तुम्हारा परमात्मा से मिलन हो जायेगा। मैंने पहले ही कह दिया कि यह भाव की अभिव्यक्ति है, शरीर की वेश-भूषा से कोई लेना-देना नहीं। कबीर जी ने कहा है—

मैं तो पिया की बहुरिया।

बहुरिया किसको कहते हैं भोजपुरी में? पत्नी को। मैं परमात्मा की अँगना हूँ। तो इसका मतलब, क्या कबीर जी भी साड़ी पहनकर बैठते थे? नहीं।

नैनों की कलिकोठरी में, पुतली पलंग बिछाय।

नैनों की चिक डाल के, पिउ को लिया रिझाय।।

कबीर जी ने कहा है नैनों की कलिकोठरी— ये नेत्र हैं और इनके अन्दर का काला घेरा देखते हैं और उसमें काली पुतली है। नैनों की चिक डाल के— चिक कहते हैं पलकों को। दोनों पलकों को बन्द कर लिया, पिउ को लिया रिझाये। पलकें बन्द हो गईं, तो बाहर के संसार से रिश्ता टूट गया। यह पुतली क्या है? आत्मा का दिल। आत्मा के धाम—हृदय में अपने प्राणेश्वर को बसा लेना है। यही भाव है कबीर जी का।

कबीर जी अपने को क्या मान रहे हैं? प्रियतमा। यह मत समझिये कि कबीर जी दास भक्ति पर चलते थे। आपणने जावूं एणें घरे, इहां अटकले केम पोहोंचाए।

योगमाया में बिना सखी भाव के कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता। यदि आप इस शरीर का ऐसा भाव लेंगे कि मैं पुरुष हूँ, मैंने कितनों को अखाड़े में पटक दिया है, कितनों को धक्के मार दिये हैं, कितनों को घूँसे मार दिये हैं, मेरे जैसा कोई नहीं है, तो पुरुषत्व का यह भाव आपको माधुर्यता में नहीं आने देगा। हम स्त्री और पुरुष को सांसारिक दृष्टि से देखते हैं। वाणी क्या कहती है—

रुह अल्लाह मिसल गाजियों, मोमिन उतरे तब।

"मिसल गाजियों" किसको कहते हैं? मर्द मोमिनों की जमात को।

माफक रुह अल्लाह के, कोई मर्द नहीं बराबर।

रुह अल्लाह किसको कहते हैं? श्यामा जी को। वाणी कहती है कि श्यामा जी के बराबर तो कोई मर्द नहीं

है, अर्थात् श्यामा जी को एक जगह मर्द कहा जा रहा है, दूसरी जगह जब श्यामा जी का श्रृंगार किया जाता है, तो सिर पर राखड़ी आती है, साड़ी आती है, ब्लाऊज आता है, पेटीकोट आता है। उन्हें नारी वेश में चिह्नित किया जाता है। जब तक हम संसार की बुद्धि से सोचना बन्द नहीं करेंगे, तब तक परमधाम का रहस्य समझ में नहीं आयेगा।

प्रोफेसर साहब यहाँ बैठे हैं, वह आपको बतायेंगे, व्यक्तिगत रूप से मिलकर पूछ सकते हैं या आप उनको राजी कीजिये तो वे मंच पर आकर सारी बातें बतायेंगे। हर पुरुष के अन्दर स्त्री विद्यमान होती है और हर स्त्री के अन्दर पुरुष विद्यमान होता है। इसको वैज्ञानिक रीति (XY के सिद्धान्त) से वे बता सकते हैं कि किस तरह से क्या-क्या मिलता है, तब लड़का बनता है और नहीं तो

लड़की पैदा होती है।

आप जो पुरुष तन में बैठे हैं या महिला तन में बैठे हैं, यह चित्त की वासना का परिणाम है। आपकी चेतना (जीव या आत्मा) का स्त्री या पुरुष तन से कोई लेना-देना नहीं है। जो भाइयों की योनि में हैं, न जाने कितनी बार स्त्री बन चुके हैं, और जो स्त्री हैं, वे न जाने कितनी बार पुरुष बन चुकी हैं। यही तो भ्रम है। यदि आपको विश्वास नहीं तो ज्ञानपीठ के पुस्तकालय में गीताप्रेस की एक पुस्तक रखी है, पुनर्जन्म के बारे में। इसमें नाम और स्थान सहित लिखा है कि यह जीव इस जन्म में पुरुष था, इस जन्म में स्त्री बना, और इस जन्म में गाय की योनि में गया।

जब रामकृष्ण परमहंस राधा-भाव की साधना करते थे, तो उनकी अभिव्यक्ति भी वैसी ही हो जाती थी।

उनको ऐसा लगता था कि मैं राधा हूँ। इसी तरह, जब चैतन्य महाप्रभु भक्तिभाव में नाचते थे तो स्वयं को राधा ही मानते थे। भावों की अभिव्यक्ति ही पुरुष या स्त्री बना रही है।

जब श्री कृष्ण दूत बनकर कौरव-पाण्डवों का समझौता कराने लगे, तो दुर्योधन अपने सहयोगियों से कहता है- "देखो भाई! स्त्रियों की तरह से मीठी बातें सुनने के लिये तैयार हो जाओ।" क्योंकि कृष्ण कभी चिल्लाते नहीं थे। कृष्ण मीठा बोलते थे, इसलिये दुर्योधन ने उनको स्त्री कहकर चिढ़ाया।

किन्तु लक्ष्मीबाई के पास जाने में बड़े-बड़े सेनापतियों के भी प्राण सूख जाया करते थे। दुर्गावती के सामने जाने में बड़े-बड़े बहादुरों के भी प्राण सूख जाते थे कि इनकी तलवार का जवाब हमारे पास नहीं है।

आपके अन्दर स्त्रीत्व भर सकता है, आपके अन्दर पुरुषत्व भर सकता है। यह आपकी भावनाओं पर निर्भर करता है। भक्ति में प्रियतम को रिझाया जाता है, समर्पित हुआ जाता है। स्त्री ही समर्पण करती है, प्रायः पुरुष नहीं करता।

एक पति अपनी पत्नी के लिये धन लाकर दे सकता है। सब कुछ दे सकता है। स्वयं का समर्पण नहीं करेगा। हाँ, दिल से चाहेगा। उसके लिये धूप, शीत, वर्षा सारे कष्ट झेलेगा। समर्पण की जो भावना है, वह नारी तत्त्व में अधिक होती है।

इसलिये वेद ने कहा कि यदि तुम परमात्मा को पाना चाहते हो, तो नारी भाव रखो। लेकिन इसका विकृत अर्थ लगा दिया गया कि नारी की वेशभूषा धारण करके नाचने को नारी भाव यानी अँगना होना कहते हैं।

और इसका विकृत रूप हर जगह देखने को मिल रहा है। वाणी चर्चा तो किनारे हो जाती है, चितवनि किनारे हो जाती है। लोग खड़े हो जाते हैं। साठ-साठ साल के, सत्तर-सत्तर साल के लोग अँगना भाव के नाम पर उचकने लगते हैं, जैसे कि वही परमधाम की ब्रह्मसृष्टियाँ हैं। इन बाह्य आडम्बरों से अध्यात्म का कुछ भी लेना-देना नहीं है।

अँगना भाव तभी आयेगा, जब राजजी-श्यामाजी की शोभा को आप देखने का प्रयास करेंगे। जो देखेगा, वह क्या करेगा? मुग्ध हो जायेगा। आशिक माशूक को देखता है, माशूक भी आशिक को देखता है। यदि राज जी की शोभा को देखने के लिये आप तड़पते हैं, तो आपमें आशिक का लक्षण आ जाता है।

दिल में आत्मसात् करने के लिये माशूक का लक्षण

चाहिये। आशिक देखना चाहता है, किन्तु दिल में कौन बसायेगा? माशूक। माशूक की समर्पण भावना आपमें होनी चाहिये। जैसे श्यामा जी राज जी के दिल का स्वरूप है। उनके रोम-रोम में सौन्दर्य, प्रेम, और समर्पण की अनन्त मिठास भरी पड़ी है।

एक बात देखिये— यहाँ जितने भाई बैठे हैं। उनको अच्छी तरह से मालूम होगा कि जब मातायें दिसम्बर-जनवरी के महीने में अपने बच्चे को गोद में लेकर बिस्तर पर सो जाती हैं और यदि बच्चा बिस्तर को गीला कर देगा तथा किसी कारण से उठ नहीं सकता, तो माँ स्वयं गीले बिस्तर पर सोयेगी किन्तु बच्चे को गीले पर नहीं सोने देगी।

कदाचित् बच्चे को लाड-प्यार से आप अपने पास सुला भी लेंगे, लेकिन यदि वह बच्चा कपड़ा या बिस्तर

गीला कर दे, तो क्या आप अपनी पत्नी की भूमिका अदा कर सकते हैं? नहीं। आप शोर मचा देंगे कि कहाँ गई? बच्चे ने कपड़े गन्दे कर दिये हैं, इसको साफ करो। आप किसी भी कीमत पर उसको साफ करने का प्रयास नहीं करेंगे, न ही गीले पर सोयेंगे। यही पहचान होती है समर्पण भावना की।

माँ स्वयं भूखी रहती है, किन्तु अपने बच्चे को खिलाती है। उसे पति की भी चिन्ता है और बच्चे की भी चिन्ता है। अपने स्तनों का दूध पिलाती है। उस दूध में उसके हृदय की समर्पण भावना झलकती है।

जैसे माँ अपने बच्चे की भी देखभाल कर रही है और पति की भी देखभाल कर रही है, उसी तरह से लीला रूप में श्यामा जी सब सखियों को भी प्रेम दे रही हैं और उधर राज जी से भी प्रेम कर रही हैं। मेरे कहने का

सांसारिक भाव आप मत लीजियेगा। मैंने तो एक दृष्टान्त दिया है।

श्यामा जी कहती हैं कि मेरा इश्क बड़ा है। सखियों का कहना है कि आप युगल स्वरूप को हम रिझाती हैं, इसलिये हमारा इश्क बड़ा है। राज जी को सच्चाई का पता है। उनका कहना यह है, "तुम तो मेरे तन हो। तुम्हारे तनों में मैं ही लीला कर रहा हूँ। मैं ही पशु-पक्षियों के रूप में, खूब-खुशालियों के रूप में तुम्हें रिझाता हूँ। इसलिये मेरा इश्क बड़ा है।" और तीनों सच बोल रहे हैं, क्योंकि परमधाम में कोई भी झूठ बोल ही नहीं सकता। इसलिये अँगना भाव लाने के लिये उसको किसी आडम्बर में फँसने की जरूरत नहीं है।

हमें माधुर्य भावना लेनी पड़ेगी। माधुर्य भावना का तात्पर्य क्या है? एक छोटा सा बच्चा है, क्रोध नहीं

करता, उसका चेहरा मासूमियत से भरा हुआ है। आप चुटकी बजाते हैं, तो हँसने लगता है, मुस्कुराने लगता है। उसके पास क्रोध नहीं है, अहंकार नहीं है। एक करोड़पति का बेटा और एक झोपड़ी में रहने वाला बच्चा, दोनों गले मिल रहे हैं, दोनों खेल रहे हैं। कोई भेद-भाव नहीं, लेकिन जब वे बड़े हो जाते हैं, तो यह दीवार खड़ी हो जाती है कि तू कँगाल और मैं करोड़पति। जो बचपन में माधुर्यता है, वही माधुर्यता हमारे अन्दर आ जाए, क्रोध से रहित, लोभ से रहित, अहंकार से रहित, यौवन का उन्माद नहीं।

सिद्धार्थ जब बुद्धत्व को प्राप्त हो जाते हैं, तो उस अवस्था में आ जाते हैं कि कोई पत्थर मार रहा है, तो मुस्कुरा रहे हैं। गाली दे रहा है, फिर भी मुस्कुरा रहे हैं। विश्वसुन्दरी आम्रपाली आती है, उनको हाव-भाव से

मुग्ध करना चाहती है। बुद्ध शान्त बैठे हैं। उनके अन्दर काम विकार है ही नहीं। जैसे दो साल के बच्चे में काम विकार नहीं है, वैसे चालीस-पचास साल के गौतम बुद्ध के अन्दर भी काम विकार नहीं है। वहाँ कलियुग काँप उठता है।

शुकदेव अठारह साल के नवयुवक हैं और ध्यान में बैठे हैं। स्वर्ग की सर्वश्रेष्ठ अप्सरा रम्भा आती है। अप्सरा मुस्कुरा रही है और शुकदेव भी मुस्कुरा रहे हैं। दोनों के मुस्कुराने में अन्तर है। रम्भा मुस्कुरा रही है, अपने सांसारिक भावों से कि मैं शुकदेव को अपने शरीर के सौन्दर्य से मोहित कर लूँगी। शुकदेव मुस्कुरा रहे हैं कि परमात्मा की कृति कितनी सुन्दर है। शुकदेव के अन्दर कोई विकार नहीं। शुकदेव माधुर्य भाव में आ चुके हैं।

आप देखते हैं कि घर पर पत्नी ने जरा सी भूल

की, तो पति महोदय का चेहरा लाल हो जाता है। चीखना-चिल्लाना शुरू कर देते हैं। पत्नी चीख नहीं सकती, चिल्ला नहीं सकती, क्योंकि वह जाये कहाँ? उसने तो समर्पण कर दिया है। लेकिन भाइयों को यह बात याद रखनी चाहिये कि पुराना जमाना गया। अब यदि पत्नी ने शिकायत कर दी, तो आपको सीधे जेल हो जानी है या पच्चीस-तीस लाख का दण्ड देकर ही आपको छूटना पड़ेगा। लेकिन जहाँ तक मैं देखता हूँ, राम ने तो सीता का परित्याग कर दिया, जबकि सीता गर्भवती थी। सीता ने राम का कभी परित्याग नहीं किया। यह माधुर्यता है।

सूर्य से किरणें निकलती हैं। किरणों से प्रकाश फैलता है। किरणों से ही सूर्य की शोभा है, लेकिन किरणें सूर्य को अपना सर्वस्व समर्पण किये हुई हैं। लहरें सागर

से जुड़ी हैं। लहरें उमड़ती हैं और सागर में विलीन हो जाती हैं। विलीन कौन होगा? जो अपना सब कुछ लुटा चुका होगा। इसलिये जब आपके अन्दर क्रोध न रह जाये, अहंकार न रह जाये, न रूप का, न धन का, न विद्या का, आपको कोई चांटा भी मार दे और आप मुस्कुराते रहें, तो समझ लीजिये कि हमारे अन्दर अँगना भाव आ गया है। किन्तु यह तब आयेगा, जब राज जी श्यामा जी की शोभा को आप दिल में बसाने का प्रयास करेंगे।

हर पुरुष के अन्दर स्त्रीत्व है, हर स्त्री के अन्दर पुरुषत्व है। जैसे कोई व्यक्ति नृत्य कब करेगा? देखिये, भगवान शिव को क्या कहा जाता है? अर्धनारीश्वर। अर्थात् उनका आधा भाग पुरुष का है और आधा भाग नारी का है। उपनिषदों में ऐसा वर्णन आता है कि सृष्टि में

सबसे पहले कौन था? एक पुरुष अर्थात् आदिनारायण। उसने संकल्प से स्त्री और पुरुष को पैदा किया। आदिनारायण के संकल्प से ही तो स्वयंभु मनु और शतरूपा पैदा हुए होंगे या कोई भी ऋषि-मुनि पैदा हुआ होगा।

नारायण पुरुष-वाचक है। उनके संकल्प से ही स्त्री का प्रकटन होता है। इसी प्रकार सच्चिदानन्द परब्रह्म के अन्दर अनन्त प्रेम है, अनन्त सौन्दर्य है, अनन्त आनन्द है। उसकी जो मिठास है, वह क्या है? श्यामा जी। सूर्य में तेज है। तेज की जो दाहकता है, वह क्या है? वही है शक्ति। शक्ति और शक्तिमान दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

चन्द्रमा में शीतल प्रकाश है। शीतल प्रकाश में चाँदनी छिपी है। सौन्दर्य क्या है? माधुर्यता में क्या है? सौन्दर्य में कान्ति है। गुड़ कैसा होता है? गुड़ मीठा है।

गुड़ में मिठास छिपी है। उसी तरह से आप स्त्री और पुरुष को कभी भी अलग-अलग नहीं कर सकते।

ज्ञानी की उपाधि धारण करने वाले लोगों ने नारी को घृणा की दृष्टि से देखा है। वे वास्तव में नारी के स्वरूप को समझ ही नहीं पाये। नारी भोग-विलास की वस्तु नहीं है। जब से नारी को भोग-विलास की वस्तु समझा गया, तब से अध्यात्म का भी पतन हो गया।

एक बात और है। यदि नारी तपस्विनी होती है, तो सृष्टि को स्वर्ग बना देगी। यदि नारी भोग में लिप्त हो जाती है, तो सारी सृष्टि को नर्क बना देगी। सृष्टि को नष्ट करना या सृष्टि को मोक्ष की तरफ ले जाना नारी के ऊपर ही निर्भर करता है। जो भी महापुरुष हुआ है, यदि उसकी गहराई में जाकर देखें, तो उनकी माँ अत्यधिक तपस्विनी रही हैं। इसलिये किसी मनीषी ने कहा है,

"यदि आप मुझे साथ आदर्श मातायें दें, तो मैं आपको एक आदर्श राष्ट्र दे सकता हूँ।" साथ महान पुरुषों का निर्माण कौन करेगा? उनकी आदर्श मातायें।

मदालसा एक ब्रह्मज्ञानी महिला थी। वे जब बच्चों को लोरी सुनाती हैं, तो कहती हैं—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि, संसार माया परिवर्जितोऽसि।

तुम शुद्ध हो, बुद्ध हो, संसार की माया से अलग हो। यदि माँ ही अपने बच्चे को ब्रह्मज्ञानी बनाना चाहे, तो बच्चा क्यों नहीं बनेगा? इसलिये जो जननी है, जो जन्म देती है, उसी के संस्कारों का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है।

जब महाराजा छत्रसाल जी युद्ध के मैदान में होते हैं, तो उनकी तलवार का लोहा हर कोई मानता है। उनके सामने जाने में बड़े-बड़े मुगल सेनानायकों के प्राण सूख

जाते हैं। औरंगज़ेब जिसको भी भेजता है, वह सोचता है कि अब तो बिस्मिल्लाह (संसार से विदा) हो जाना है। लेकिन जब वही छत्रसाल श्री जी के सामने आते हैं, तो क्या कहते हैं—

छत्रसाल जी के पिया जी सुन्दरवर, अनते जान न देऊँ।

राखो मैं रसिक रमाय आप गृह, सब भांत सुख लेऊँ॥

वही छत्रसाल जी बदले-बदले नजर आते हैं। क्योंकि वह माधुर्य भावना में खो गये। आप देखेंगे, सेना का जो सेनापति होता है, उसके अन्दर भी माधुर्यता का एक कोना होता है। शेर जब शेरनी के पास होता है, तो उसके अन्दर भी एक माधुर्यता छिपी होती है। जिस सेना के सेनापति के सामने सैनिकों को जाने में भय लगता है, वह सेनापति भी जब अपनी पत्नी के सामने होता है, तो

वह भी माधुर्यता में डूबना चाहता है। कोई नृत्य कब करता है? जब अपनी बहादुरी को भुला चुका है।

जब सेना जीतती है तो सैनिक नाचने लगते हैं। नाचना कहाँ से होगा? यदि युद्ध के मैदान में जहाँ तोपें चल रही हों, वहाँ कोई व्यक्ति नाचने लगे, तो दूसरे सैनिक क्या कहेंगे? यह कैसा पुरुष है जो नाच रहा है? लेकिन जब वही विजयी हो जाता है, वही सेना विजयी बन जाती है, सैनिक विजयश्री प्राप्त कर लेता है, तो वह जो मना करने वाला था, वह स्वयं नाचने लगता है।

कहने का तात्पर्य क्या है? उसके अन्दर पुरुषत्व भी छिपा है, उसके अन्दर स्त्रीत्व भी छिपा है। ये लोक व्यवहार की बातें हैं।

प्रेम लीला में नौ रस होते हैं। एक वीररस होता है।

करुण रस होता है, वीभत्स रस होता है, हास्य रस होता है, वात्सल्य रस होता है, और वियोग आदि कुल नौ रस होते हैं। हमारा हृदय इन नौ रसों में क्रीड़ा करता है। लेकिन परमधाम में एक ही वहदत (एकत्व) का रस है, तो आप यह कैसे मान सकते हैं कि कौन स्त्री है, कौन पुरुष। परमधाम की बात छोड़िये।

एक बार राधा और कृष्ण आमने-सामने बैठे थे। राधा श्री कृष्ण के प्रेम में विह्वल हो गई और श्री कृष्ण राधा के प्रेम में विह्वल हो गये। कृष्ण राधा को देखते-देखते राधामय हो गये, यानी कृष्ण का सारा शरीर बदल गया। पुरुष की आकृति हट गई और वहाँ राधा की आकृति बन गई। राधा कृष्ण को देखते-देखते कृष्णमय हो गई। राधा का शरीर बदल गया और उसकी जगह कृष्ण का पुरुषमय शरीर स्थित हो गया।

कुछ देर के बाद, दोनों जब भाव दशा से हटे तो राधा का पूर्ववत् शरीर हो गया और श्री कृष्ण का पूर्ववत् शरीर हो गया। कहने का तात्पर्य है कि हृदय की भावनाओं के अनुसार वैसा शरीर बन गया। वैसे ही एक राजजी श्यामाजी के रूप में हैं।

अन्तर पट खोल देखिए, दोऊ आवत एक नजर।

अन्दर की नजर से देखेंगे, तो दोनों एक हैं। हम सुन्दरसाथ ने सांसारिक बुद्धि ज्यादा ले ली। इसलिये बार-बार सोचा करते हैं कि श्यामा जी को राज जी की बाईं तरफ ही बैठाना है। यदि भूल से आपने राज जी को बाईं तरफ बैठा दिया और श्यामा जी को दाहिने बैठा दिया, तो यह मत सोचिये कि राज जी नाराज हो जायेंगे कि मुझे बायें क्यों बिठा दिया। परमधाम माया की दुनिया नहीं है।

हर पति यही चाहता है कि मेरी पत्नी मेरी नौकरानी बनकर रहे। पति अपनी पत्नी को सीता के रूप में देखना तो चाहता हैं, लेकिन वह राम बनने को तैयार नहीं। पुरुष ने स्त्री के ऊपर शासन किया है। कौन-से पुरुष ने? जो अज्ञानी रहा है, जिसको अपनी सत्ता का मद चढ़ा है।

मैंने कई जगहों पर यह परम्परा देखी है कि जब किसी कन्या का विवाह होता है, तो उस कन्या पक्ष वाले जितने होते हैं, दामाद के पैर छूते हैं। यह कैसी परम्परा है? यह मध्यकाल की परम्परा है। राजा जब दूसरे राजाओं को हराते थे, तो अपनी सत्ता के प्रदर्शन में अपने को बड़ा सिद्ध करना चाहते थे। इसलिये राजा जो हारा हुआ है, अपनी कन्या दूसरे राजा को दे रहा है, तो अपनी विनम्रता दर्शाने के लिये उस राजा के पैर छू रहा

है। परिणाम यह हुआ कि इसने कुप्रथा का रूप ले लिया।

आज भी मुझे कई जगहों पर देखने को मिलता है कि जो पिता है, चाहे वह साठ साल का हो, अपना दामाद जो भले ही बीस साल का हो, उसके पैर छुएगा। और तो और लड़की के भी पैर छू रहा है। शास्त्रों में ऐसा कहीं नहीं है। पिता हमेशा लड़की के लिये पूज्य है। लड़की के पैर पिता छुए, यह परम्परा मध्यकाल की देन है, हमारी संस्कृति की परम्परा नहीं है।

जब राजा या जमींदार दूसरे राजा या जमींदार को हराते थे, तो वहाँ से यह विकृति चल पड़ी कन्या पक्ष को छोटा बनाने की। लेकिन याद रखिये, जो आध्यात्मिक राह पर गमन करने वाला है, उसके लिये न कोई स्त्री मायने रखती है, न कोई पुरुष मायने रखता है। यह तो शरीर का ढांचा है। किसी का ढांचा स्त्री का है, तो किसी

का ढांचा पुरुष का है। आत्म-भाव इन सबसे परे है। इसलिये अथर्ववेद के एक मन्त्र में कहा है—

त्वम् स्त्री असि त्वम् पुमानम् असि, त्वम् कुमारम् उत वा कुमारी।

त्वम् जीर्णेन दण्डेन वंचसे, त्वम् जातो भवसि विश्वतो मुखः॥

हे जीव! कभी तो तू स्त्री बन जाता है और कभी पुरुष बन जाता है। कभी तू कुमारावस्था में शरीर धारण किये हुए दिखाई देता है, तो कभी बुढ़ापे में लाठी लेकर चलने लगता है। कभी योगबल से एक साथ अनेक रूप धारण कर लेता है। यह मैं जीव की अवस्था बता रहा हूँ। जब रामकृष्ण परमहंस राधा-भाव की साधना करने लगे, तो उनके शरीर की स्थिति बहुत विचित्र हो गई थी। कैसी हो गई थी? यह मैं मंच पर कहना नहीं चाहूँगा।

अभी मैंने दृष्टांत दिया कि लक्ष्मीबाई तलवार

उठाकर पूरी अंग्रेजी सेना को चीरती हुई निकल गई थी। क्या आप लोगों में से कोई ऐसा बहादुर है, जो अपने दोनों हाथों में तलवार लिया हो और सामने हजारों की सेना खड़ी हो, साथ में कोई सैनिक भी न हो और अकेले तलवार चलाते हुये घोड़े की लगाम दाँतों में दबाकर, बिना ढाल के तलवार से पूरी सेना को चीरते हुये निकल जाए? ऐसा वीर मुझे सहारनपुर में तो क्या, पूरे उत्तर प्रदेश में भी नहीं दिखाई दे रहा। उस समय वह लक्ष्मीबाई नहीं थी। उस समय लक्ष्मीबाई के अन्दर राणा प्रताप का रक्त खौल रहा था। इसलिये अँगना भाव के बारे में मैं इतना ही कहूँगा।

जब आप चितवनि में बैठिये, तो श्यामा जी के उस माधुर्य स्वरूप की कल्पना कीजिये। कल्पना यथार्थता में बदल जाती है। आप चितवनि को कल्पना न समझिये।

कल व्याख्यान होगा— चेतन मन क्या है? अवचेतन मन क्या है? मन, चित, बुद्धि, अहंकार क्या है? तब इसका रहस्य समझना भी बहुत सरल हो जायेगा। कल या परसों इस पर व्याख्या की जायेगी। हम मन में संकल्प करते हैं और वह पूर्ण होता है।

कल्पना दो तरह की होती है— एक मिथ्या कल्पना और एक सत्य कल्पना।

सत्य कल्पना एक आधार अथवा ढांचा तैयार करती है, और जब प्रेम का रस परिपक्व होता है तो कल्पना यथार्थता में बदल जाती है। आपको श्री महामति जी ने देखकर बता दिया कि राज जी ऐसे हैं, श्यामा जी ऐसी हैं। मैंने देखा है और आपको देखना है। जो महामति जी ने देखा है, उसी देखे हुए रूप को आप हृदय में आधार बनाते हैं। जैसे—जैसे प्रेम का रस परिपक्व होता

जायेगा, वही आधार यथार्थता में बदल जायेगा क्योंकि आपका दिल वैसे ही स्वरूप को पुकार रहा होता है।

मिथ्या कल्पना तब कहलाती है, जब राज जी श्यामा जी को वाणी द्वारा आत्मसात् नहीं किया जाता। वाणी के आधार पर राज जी श्यामा जी के जिस स्वरूप की आप कल्पना कर रहे हैं, वह सत्य है और एक न एक दिन सत्यता में फलीभूत होकर रहेगा।

आप अँगना भाव लाने के लिये देखा-देखी नाचिये नहीं। कोई अभिनय करने की जरूरत नहीं है। आप ध्यान में बैठ जाइये। राजश्यामा जी के सौन्दर्य को, उनकी शोभा को, उनके प्रेममयी और आनन्दमयी स्वरूप को जैसे-जैसे दिल में धारण करते जायेंगे, वैसे-वैसे आपके अन्दर माधुर्यता आती जायेगी।

व्यवहार में देखना है, तो आप ध्यान करके उठिये और किसी को कहकर रखिये कि जब आप ध्यान से उठें तो आपके उपर कूड़ा फेंक दें। यदि आप सच्चे अभ्यासी हैं, तो पहली बार में ही आपको कूड़ा फेंकने वाले पर कोई गुस्सा नहीं आयेगा। जब रजोगुण, तमोगुण प्रज्वलित होंगे, तब आपको क्रोध आयेगा।

पहली बार में ही इतने अधिक सहनशील हो जायेंगे, जैसे आप पत्नी को डाँटते रहते हैं और बेचारी पत्नी सब सुनती है, कोई प्रतिरोध नहीं कर सकती, क्योंकि वह जाये कहाँ? उसको यही लगता है कि मेरा यही पति है, मेरा यही सर्वस्व है। हर पत्नी सुकरात की पत्नी की तरह नहीं हो सकती।

सुकरात के बारे में कहावत आपको मालूम है। सुकरात एक बार अपने शिष्यों को पढ़ा रहे थे। उनकी

पत्नी आयी, पानी का भरा हुआ घड़ा लेकर। किसी बात पर बहस होने लगी। सुकरात के सिर पर घड़ा ही दे मारा और देखिये सुकरात की महानता। सुकरात मुस्कुराने लगे। कहते हैं, "मैंने तो सुना था कि गरजने वाले बरसते नहीं। आज तो बरस भी गये।"

क्या भारत में ऐसा कोई सहनशील व्यक्ति है, जो तब भी क्रोधित न हो जब पत्नी मारे? क्योंकि सुकरात शरीर से ऊपर उठ चुके हैं। उनके शिष्यों को सहन नहीं हुआ। कहते हैं कि कैसी गुरुमाता है, जो इतनी तीखी है। हम इनको सीधा कर देंगे। सुकरात क्या कहते हैं? तुम्हें नहीं मालूम, यह तो मेरी गुरु है, क्योंकि यह ठोक-पीटकर देखती है कि सुकरात में कितनी सहनशीलता आ गई है। यह महानता का लक्षण है।

मेरे कहने का मतलब यह नहीं कि आप भी वैसे ही

बन जाइये। पत्नी गलत भी कहे तो कर दीजिये, ऐसा नहीं। सारी सृष्टि एक तरफ हो जाये, लेकिन कभी भी गलत निर्णय करना नहीं चाहिये। हाँ, सहनशील अवश्य बनिये, क्योंकि सहनशीलता ही सबसे बड़ा अस्त्र है। इसलिये राजश्यामा जी की शोभा को देखते जाइये, आपके अन्दर स्वतः ही माधुर्यता आ जायेगी। इसके लिये कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ेगा।

यदि आप चितवनि के समय अपने को केवल स्त्री या पुरुष के रूप में देखने लगे, तो गड़बड़ हो जायेगा। यदि कोई बहन चालीस साल की है और सोचने लगे कि मैं चालीस साल की महिला हूँ, तो भी चितवनि नहीं लगेगी। आपको यह सोचना है कि मैं श्यामा जी हूँ, बस। श्यामा जी का स्वरूप जैसा किशोरावस्था का सोलह साल का है, वैसा ही भाव ले लीजिये, लेकिन दुनिया की

स्त्री का भाव मत लीजिये, क्योंकि संसार के स्त्री-पुरुष के भाव विकारों से भरे होते हैं। उस भाव को लेने से आपकी सुरता नहीं जा पायेगी।

प्रश्न- क्या विरह में कभी निराशा आ सकती है?

उत्तर- ईमान की कमी होगी, तो निराशा आ सकती है। ईमान परिपक्व रहेगा, तो कभी भी निराश नहीं हो सकते। आशावाद ही आस्तिकता है, निराशावाद नास्तिकता है। जो राज जी की चितवनि कर रहा है और वह निराश हो जाये, तो समझ लीजिए कि उसका ईमान अभी कच्चा है। जब वाणी में कह दिया है कि मैं तुम्हारी प्राण की नली से भी निकट हूँ, तो जब आप राज जी का ध्यान करते हैं, तो राज जी को किसी विमान में बैठकर आपके पास नहीं आना है। आपके राज जी आपके दिल में बसे होते हैं।

माया का जो पर्दा है, इसको हटा दीजिये। आप संसार को चाह रहे हैं, उससे ज्यादा राज जी को चाहना शुरू कर दीजिये। बस राज जी इतना ही कहते हैं। संसार को आप देख रहे हैं कि यह मेरा शरीर है, मैं हूँ और यह मेरा है। यही तो माया का बन्धन है। "मैं और मेरा" को हटा दीजिये। केवल "तू और तेरा" याद रख लीजिये। केवल मेरा प्रियतम है और मैं उसकी आनन्द स्वरूपा हूँ। मैं उसकी हृदयस्वरूपा हूँ। वह मेरा सर्वस्व है। यह जो कुछ है, सब उसका है, मेरा अपना कुछ नहीं। मेरा यह शरीर भी मेरा नहीं है। जब यह भावना आ जायेगी, तो स्वाभाविक ही आपके अन्दर वही प्रेम, वही माधुर्यता आ जायेगी। विरह में आप खोते जाएंगे और निराशा की बात ही नहीं हो सकती। कलश हिन्दुस्तानी में इस तथ्य को बहुत अच्छी तरह से समझाया है—

आस भी पूरी सोहागिनी, और ब्रध भी राख्यो विरहिन।

"पूरी आस सोहागिन" अर्थात् आपने मुझ सुहागिन की आशा को पूर्ण किया। कलश में विरह के प्रकरणों में यह बात दर्शायी जाती है—

विरहा सागर होए रह्या, बीच मीन विरहिनी नार।

दौड़त हों निसवासर, कहूं बेट न पाऊं पार॥

विरह के सागर में मैं एक मछली की तरह दौड़ रही हूँ, लेकिन धाम धनी! लगता ही नहीं है कि इस विरह के सागर का कहीं किनारा है। अक्षरातीत आपसे दूर नहीं हैं। जितने ये मन्दिर दिखते हैं, जिनमें मूर्तियाँ रखी होती हैं, या मस्जिदें होती हैं, सब शोर मचाने वाले होते हैं। किसी के पास भक्ति नहीं है। दुनिया को बताते हैं कि देखो! भगत जी उठ गये हैं और गीत गा रहे हैं। गाता कौन है?

लोहे की मशीन (लाउड स्पीकर/ध्वनि विस्तारक यन्त्र) और वह महाराज लोहे की मशीन को चालू करके स्वयं सो जाते हैं। दूसरों को भी दुःखी करते हैं और स्वयं भी भक्ति से हाथ धो बैठते हैं।

जब आपको चितवनी में डूबने का अवसर मिलता है, तो आप शरीर और संसार को भुला दीजिये। आपके हृदय में बैठे हुए राज जी प्रकट हो जायेंगे। चितवनि का मूल सूत्र क्या है? संसार को देखना बन्द करके बस राज जी को देखना शुरू कर दीजिये।

एक बहन से मैंने पूछा कि आप इस समय चितवनि क्यों नहीं करतीं? वह बहन बहुत वयोवृद्ध हो चुकी हैं, मैं नाम नहीं बताऊँगा। उनका उत्तर था— क्या करें, उसी समय फोन आते हैं। भाई! फोन करने वाले क्या इतने महत्वपूर्ण हो गये? कभी कहा कि हमारे पतिदेव का उस

समय आना होता है। कोई न कोई बहाना हर कोई निकाल देता है। कोई कहेंगी कि हमारी सहेली आने वाली है। जब राज जी आपकी दृष्टि में यदि इतने हल्के हैं, तो वे आपके सामने क्यों आयेंगे?

देवचन्द्र जी को राज जी तभी मिले, जब उन्होंने माता-पिता की भी चिन्ता नहीं की। अन्धेरी रात में निकल पड़े और जब भयभीत हुये, तब पठान के रूप में राज जी आये। जब बालकृष्ण की चितवनि करने लगे तो ब्रज बिहारी के रूप में आ गये, और जब रास बिहारी की चितवनि करने लगे तब परमधाम वाले श्रृंगार में साक्षात् आकर सामने खड़े हो गये।

जाको दिल जिन भांत सो, तासों मिले तिन विध।

मन चाह्या स्वरूप होए के, कारज किये सब सिध॥

आप राज जी को जिस भाव से पुकारेंगे, उसी भाव में वे आपको मिलेंगे, इसलिये विरह और प्रेम के भावों में डूबकर राज जी को पुकारिये।

हक नजीक सेहेरग से, आड़ो पट न द्वार।

राज जी आपकी प्राण की नली से भी ज्यादा निकट हैं। वे कहीं दूर नहीं बैठे हैं। बस, अपनी चाहत को राज जी की तरफ बढ़ा दीजिये।

पति को पत्नी से लगाव होता है, पत्नी को पति से लगाव होता है। बच्चों को माता-पिता से, माता-पिता को बच्चों से, गुरु को शिष्य से, तथा शिष्य को गुरु से लगाव होता है, लेकिन यह लगाव परम सत्य नहीं होता। यदि इच्छाओं में बाधा पड़ती है, तो यह लगाव घृणा में भी बदल जाता है। पिता-पुत्र में भी वैर हो सकता है। गुरु-

शिष्य में भी वैर हो सकता है।

यही आज हम देखते हैं। तलाक की कहानी क्या बताती है? पति और पत्नी के बीच घृणा का बीज पनप जाता है। इसलिये जो हमारा एकमात्र प्रियतम है, वह दर्शन न दे, यह कभी भी सम्भव नहीं है।

प्रश्न— साधनावस्था में मौन का क्या महत्व है?
कृपया समझाइये।

उत्तर— प्रश्न है कि मौन का तात्पर्य क्या होता है? अनावश्यक न बोलना। मौन का मतलब यह नहीं है कि आपने मुँह पर पट्टी बाँध ली या लिखने के लिये कागज रख लिया। कोई आता है, तो आप लिख कर देते हैं कि मैं मौन हूँ, बोल नहीं सकता। आपने वाचिक मौन रखा है। वाणी से भले ही नहीं बोल रहे, लेकिन मन से तो

बोल रहे हैं।

मानसिक मौन सबसे उत्तम होता है। मानसिक मौन का क्या तात्पर्य होता है? आप मन को केवल प्रियतम परब्रह्म में लगाये हुए हैं। इसके लिये भावलीनता जरूरी है। प्रियतम के भावों में खोये रहना। यह भावलीन योग मुख्यतया रामकृष्ण परमहंस या चैतन्य महाप्रभु में देखा जाता है।

रामकृष्ण परमहंस के सामने कोई बढ़िया से भजन गा देता था, तो बैठे-बैठे ही वे समाधि में डूब जाते थे। शरीर से परे हो जाते थे। खड़े हैं और यदि किसी ने बढ़िया से ॐ कह दिया, तो भी उनकी समाधि लग जाती थी। रामकृष्ण परमहंस ने ऐसा बाह्य मौन नहीं रखा।

आप बाह्य मौन रख रहे हैं, बोर्ड लगा है कि अमुक महाराज इतने दिनों तक नहीं बोलेंगे। आप पेन्सिल से लिखकर या कागज पर लिखकर सब लोगों को बुलाते जा रहे हैं, लिख-लिखकर बातें करते जा रहे हैं, तो यह मौन तो नहीं हुआ, क्योंकि आपका मन तो चारों तरफ भटक रहा है।

वास्तव में मौन का तात्पर्य है आन्तरिक मौन। इसलिये गीता में योगेश्वर श्री कृष्ण कहते हैं—

मौनं च एव अस्मि, गुह्यां ज्ञानवतां अहं।

कहीं-कहीं मौन अनर्थ करा देता है। द्रौपदी का चीरहरण हो रहा है। भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य तीनों मौन हैं। वहाँ मौन रहना अपराध होता है। जहाँ दो व्यक्ति बातें कर रहे हों, वहाँ तीसरे व्यक्ति को बिना

स्वीकृति के वार्ता में सहभागिता नहीं करनी चाहिये। यह शिष्टाचार है कि वहाँ मौन रहना चाहिये। इसी तरह से मौन की अनेक परिभाषायें होती हैं।

साधनाकाल में मौन को इसलिये प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि जब हम ज्यादा बोलने लगते हैं, तो स्वाभाविक रूप से किसी की निन्दा निकल जायेगी, किसी की जरूरत से ज्यादा स्तुति कर बैठेंगे। हो सकता है कि हम झूठ भी बोल दें। हमारे मुख से, बहुत बचाव करने के बाद, न चाहते हुए भी झूठी बात निकल सकती है। इसलिये वाणी का मौन जो पहली कक्षा है, उसको प्राथमिकता दी जाती है।

जो वाणी का मौन रखेगा, लोगों से अनावश्यक बातचीत नहीं करेगा, वह धीरे-धीरे अन्तर्मुखी होता जायेगा। जब अन्तर्मुखी होगा, तो आन्तरिक मौन भी हो

जायेगा, अर्थात् उसका मन संसार से हटकर राज जी में लग जायेगा। इसलिये मैं इतना जरूर कहूँगा कि ज्यादा बोलने की अपेक्षा कम बोलना उचित है। इसी को ही मौन समझिये। आप मुख से किसी की निन्दा न कीजिये। किसी को बुरा न कहिये। उस व्यक्ति में जो अच्छाई है, उसको ग्रहण कीजिये। जितना जरूरी है उतना ही बोलिये, इसको कहते हैं मौन।

प्रश्न— क्या साधनावस्था में महापुरुषों के दर्शन सम्भव हैं?

उत्तर— योगदर्शन में सूत्र आता है—

मूर्धा ज्योतिषिः सिद्ध दर्शनम्।

जब आप ज्योतिष्मयी प्रज्ञा द्वारा मूर्धा ज्योति में समाधिस्थ हो जायेंगे, संयम करेंगे, तो आपको योगेश्वर

श्री कृष्ण का दर्शन हो सकता है, भगवान राम का दर्शन हो सकता है, शंकर जी का दर्शन हो सकता है। अनेक सिद्ध महापुरुष जो सूक्ष्म शरीर से भ्रमण करते रहते हैं, उनका भी दर्शन हो सकता है। यदि आप मूर्धा ज्योति में भी समाधि नहीं लगा रहे हैं, केवल राज जी की चितवनि कर रहे हैं, तो आवश्यकता पड़ने पर किसी परमहंस का भी दर्शन हो सकता है।

हमारे सामने तीन रूप हैं— बालक, पुरुष, और स्त्री। पुरुष में धैर्य होता है। बालक में निश्छलता, निष्कपटता, और मासूमियत होती है। स्त्री में समर्पण भावना और माधुर्यता होती है। नारी से माधुर्यता और समर्पण, बालक से मासूमियत तथा निश्छलता, और पुरुष से धैर्य का गुण ग्रहण कर लीजिए। जब इन सारे गुणों का आपमें समावेश हो जायेगा, तो समझ लीजिये

कि अब आपको दीदार होने वाला है।

बहनों में चंचलता होती है। वे समर्पण तो कर सकती हैं, लेकिन उनका मन स्थिर नहीं होता। आप देखेंगे मन्दिरों में, धार्मिक कृत्यों में, बहनें ज्यादा जाती हैं, लेकिन धैर्यपूर्वक कभी साधना नहीं कर सकतीं। जब चार बहनें बैठ जाती हैं, तो शान्ति से बैठ पाना उनके लिये सम्भव नहीं। उनमें भाव है, समर्पण है, लेकिन उसका प्रयोग गलत दिशा में है।

पुरुष में धैर्य तो है, लेकिन पुरुष का हृदय कठोर होता है। उसमें अहम् प्रधान होता है। वह माधुर्य भावना में डूब नहीं पाता, लेकिन यदि साधना के प्रभाव से उसने माधुर्य भाव ले लिया, तो उसके अन्दर धैर्य का जो गुण है, वह हर स्थिति में राज जी का दर्शन कराता है।

जितने भी परमहंस हुये हैं, उनमें धैर्य रहा है, हिमालय की तरह धैर्य। ध्यान करते-करते महीनों बीत जाते हैं, वर्षों बीत जाते हैं, लेकिन अटूट निष्ठा बनी रहती है कि मेरा प्रियतम मेरे पास आयेगा। युगल दास जी ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली और दृढ़ संकल्प कर लिया कि इस पट्टी को श्री जी ही खोलेंगे तो खोलेंगे, नहीं तो मैं नहीं खोलूँगा। एक धैर्य है, अटूट आस्था है कि मेरा प्रियतम मेरे सामने आयेगा। यह गुण बहनों में नहीं होता। एक महीने चितवनि करेंगी, दीदार नहीं हुआ तो कहेंगी कि छोड़ो, इसमें क्या रखा है। फिर नाचना-बजाना शुरू। यह चंचल मन की देन है।

बालक का मन भी चंचल होता है। वह निश्छल है, निष्कपट है, काम विकार से रहित है, लेकिन वह भी बैठकर ध्यान नहीं कर सकता।

बालक और स्त्रियों की चंचलता उनको ध्यान में नहीं बैठने देती। पुरुष का अहम् और उसके हृदय की कठोरता उसको ध्यान में नहीं बैठने देती। तीनों की अपनी-अपनी कमजोरियाँ हैं। तीनों अपनी कमजोरी को दूर कर लें, तो किसी भी उम्र में, सोलह साल के बालक को भी, किशोर को भी राज जी का दर्शन हो सकता है, बहनों को भी दर्शन हो सकता है, और पुरुषों को भी दर्शन हो सकता है। कोई यह न समझे कि मैं बहनों का खण्डन करता हूँ। मेरे लिये सभी बराबर हैं। चाहे भाई हो या बहनें। जिसमें जो कमी है, उसको मैं बता रहा हूँ।

प्रश्न— क्या अन्य मतों के अनुयायी पहले दिव्य स्वरूप का दिग्दर्शन कराने के बाद चितवनि की विधि के बारे में बता कर प्रोत्साहित करते हैं?

उत्तर— कुछ मतों के जो बड़े-बड़े योगी होते हैं,

अपने योगबल से साधक की कुण्डलिनी जाग्रत करा देते हैं। योगेश्वरानन्द जी की जीवनी का नाम है, "हिमालय के योगी"। उनके गुरु आत्मानन्द जी ने अपने संकल्प बल से उन्हें समाधिस्थ करा दिया और जो अठारह साल में प्राप्त नहीं कर पाये थे, मात्र अठारह घण्टे में उसे प्राप्त करा दिया।

इसी प्रकार परमहंस महाराज रामरतन दास जी जिस पर प्रसन्न हो जाते थे, उससे कह देते थे कि क्या चाहते हो? यदि किसी ने कह दिया कि महाराज जी! दर्शन करा दीजिये, तो वे कह देते कि बैठ जाओ। लेकिन अब सुन्दरसाथ वही नकल आज करना चाहते हैं। मैं परमहंस महाराज रामरतन दास जी तो नहीं हूँ। "कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली" और सबसे बड़ी बात यह है कि आज वह लीला नहीं हो सकती, क्योंकि परमहंस

महाराज श्री रामरतन दास जी के जमाने में शिक्षा शून्य पर थी। वाणी का प्रकाश नहीं था। सुन्दरसाथ भोले-भाले थे, इसलिये कोई माया माँगता था, तो कोई सन्तान माँगता था।

आज तो सब वाणी के जानकार हैं। यद्यपि मेरे पास तो वैसी शक्ति आनी मुश्किल है, क्योंकि परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी के जहाँ चरण पड़ गये, मैं तो वहाँ की धूल भी नहीं बन सकता। मैं तो समझता हूँ कि अस्सी प्रतिशत सुन्दरसाथ यही माँग करेंगे कि श्री राज जी का दर्शन हो, और ऐसी स्थिति में मैं कहाँ से दर्शन करा सकता हूँ?

कल्पना कीजिये कि यदि मेरे पास शक्ति भी आ गई और दर्शन करा दिया जाये, तो सारी मर्यादायें टूट जायेंगी। जैसे परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी के

समीपस्थ रहने वाले जिन ब्रह्ममुनियों ने सेवा करके किसी तरह से उनको रिझाया और दर्शन प्राप्त कर लिया, तो यह परम्परा चल पड़ी जैसे चमेल सिंह को दर्शन हुआ, सरकारश्री को दर्शन हुआ।

सरकारश्री को भी दर्शन तब कराया, जब सरकारश्री ने सेवा में दिन-रात अपनी हड्डी-पसली एक कर दी थी। कई-कई दिन तक अल्पाहार पर रहते थे। बस उनको एक ही दिखता था कि महाराज जी की सेवा में कहीं कोई चूक नहीं होनी चाहिये।

योगेश्वरानन्द जी को उनके गुरु ने तब दर्शन कराया, जब अठारह साल की घोर साधना में उनके सारे विकार दग्ध हो चुके थे। सूखी लकड़ी में ही आग लगाई जाती है, तो वह जलती है। यदि गीली लकड़ी में आग लगाई जायेगी, तो बुझ जाती है। इसलिये कोई भी ब्रह्ममुनि

आपको तभी दर्शन करायेगा, जब आप कसौटी पर खड़े हो जायेंगे, जब आप अपने हृदय को निर्मल कर लेंगे, जब आप विरह और प्रेम में डूब जायेंगे।

एक ऋषि ने देखा कि एक कुत्ता चूहे पर झपट रहा है। उनको चूहे पर दया आ गयी और उन्होंने उस चूहे को बाघ बना दिया। कुत्ता भाग गया। लेकिन अब वही बाघ ऋषि पर झपट पड़ा क्योंकि जैसे ही उसकी योनि बदली उसको अपने अन्दर शक्ति महसूस हुई। उसने सोचा कि ऋषि को ही मारकर खा जाऊँ। ऋषि ने उसको पुनः चूहा बना दिया।

यदि हर सुन्दरसाथ को बिना किसी परिश्रम के केवल इच्छा मात्र से दर्शन करा दिया, तो सारी व्यवस्था भंग हो जायेगी, क्योंकि मन के विकार तो गये नहीं, अहम् गया नहीं, इच्छायें गई नहीं, और जब आपको

दर्शन हो जायेगा, शक्ति आ जायेगी, तो संसार में प्रदर्शन करने लगेंगे।

इसलिये श्री जी स्वयं अक्षरातीत हैं, फिर क्या आवश्यकता थी दस साल तक दोनों समय चितवनि कराने की? दोनों वक्त चितवनि कराई जाती है, सवेरे भी और शाम को भी। साढ़े चार बजे सारा काम बन्द हो जाता है और केवल चितवनि ही करायी जाती है।

अष्ट प्रहर की बीतक में आप देखेंगे कि पाँच हजार की जमात चितवनि करने के लिये बैठ जाती है। सबको करना पड़ता है। श्री जी जो स्वयं अक्षरातीत हैं, उन्हें सुन्दरसाथ को दस साल तक चितवनि कराने की जरूरत नहीं थी, सेवा कराने की भी जरूरत नहीं थी। इच्छामात्र कर देते, तो पाँच हजार को एक दिन में एक साथ ही दर्शन करा सकते थे। लेकिन आपने देखा कि

जब सदगुरु धनी श्री देवचन्द्र जी चर्चा करते थे, तो राज जी का स्वरूप कृष्ण जी के रूप में दर्शन देता था, किसी को बर्तन दे रहा है, किसी के साथ भोजन कर रहा है, लेकिन किसी की आत्मा तो जाग्रत नहीं हुई।

आप सबको मूल मिलावा में पहुँचना है। जीव पर जन्म-जन्मान्तरों की वासना जमी हुई है। किसी ने किसी जन्म में विकारों में अपने जीवन को गँवाया है और जबरन उसे आत्म-बल का प्रयोग करके दीदार करा दिया जाये, तो परिणाम क्या होगा? जैसे यदि मैं आपको दस लाख का हीरा दे दूँ और आप उसे मेरी आँखों के सामने पैरों के नीचे रखकर खड़े हो जायें, तो मुझे कैसा लगेगा?

यदि श्री जी सुन्दरसाथ को बिना चितवनि कराये दर्शन करा देते, तो क्या होता? सारा सुन्दरसाथ भटक

जाता। इसलिये मन्दसौर में ऐसी स्थिति पैदा की कि वहाँ भीख माँगनी पड़ी। मन्दसौर में घर-घर जाकर लालदास जी भिक्षा माँग रहे हैं। लालदास जी, जिनके यहाँ न जाने कितने लोग भिक्षा पाते थे, कितने लोग भोजन करते थे, अनेक जहाजों से जिनका व्यापार चल रहा हो, और वह घर-घर जाकर "भिक्षाम् देहि" कहें।

भिक्षा माँगना कितना कठिन होता है। हर जगह भिक्षा मिलती भी नहीं। लोग दुत्कारते हैं कि खाने-पीने को मिलता नहीं और बन जाते हैं महात्मा। हट्टे-कट्टे नौजवान होकर भी भीख माँगते हैं। दुनिया बहुत बुरी है। यहाँ कौन भिक्षा माँग रहा है? मुकुन्ददास जी भिक्षा माँग रहे हैं। और तो और, चिन्तामणि जी भिक्षा माँग रहे हैं, जिनके एक हजार शिष्य हुआ करते थे।

श्री जी ने ऐसा क्यों करवाया? क्योंकि सब लोग

यह भुला दें कि वे कभी आचार्य या इतने धनवान थे। सारे अहम् को धोने के लिये जान-बूझकर श्री जी ने ऐसा करवाया। नहीं तो जिन श्री जी के आशीर्वाद से पन्ना की धरती हीरा उगलने लगती है, वही श्री जी वहाँ भी हीरा पैदा कर देते और कहते कि जाओ, बेच लाओ, और इसी से अच्छा-अच्छा सामान मँगा करके खा लेना। लेकिन नहीं, रामनगर में भी वैसी स्थिति पैदा की। रामनगर से पन्ना आने तक रास्ते में भिक्षा माँगकर खाना पड़ा। इस कसौटी पर कसा गया, ताकि सुन्दरसाथ अपने हृदय को निर्मल कर सकें।

प्रत्यक्ष दर्शन की लीला उदयपुर से शुरू हो जाती है। जब श्री जी चर्चा करते हैं, तो सबको इन आँखों से श्री राज जी के दर्शन होने लगते हैं। जब प्रेमजी, नागजी, और संगजी दिल्ली आते हैं, तो मिहिरराज जी की जगह

देवचन्द्र जी को बैठे हुए देखते हैं। उदयपुर में प्रत्यक्ष राज जी के दर्शन होने लगे। पन्ना जी में तो—

जाको दिल जिन भांत सों, तासों मिले तिन विध।

कोई श्री कृष्ण के रूप में देखना चाहता है, तो प्राणनाथ जी की जगह श्री कृष्ण जी का दर्शन होने लगता है। कोई राजश्यामा जी के रूप में देखना चाहता है, तो मिहिरराज जी का शरीर अदृश्य हो जाता है और वहाँ राजश्यामा जी बैठे हुए नजर आते हैं। कोई मुहम्मद साहब को देखना चाहता है, तो वहाँ मुहम्मद साहब दिखाई देने लगते हैं। कोई सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी को देखना चाहता है, तो वहाँ सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी दिखाई देने लगते हैं। सब कुछ दिखाया, पर पहले कसौटी पर कसा।

बिना पढ़ाये, बिना शिक्षा दिये, और बिना परीक्षा लिये, प्रधानमन्त्री अपने किसी कृपापात्र को आई.ए.एस. का पद दे दे, तो परिणाम क्या होगा? प्रधानमन्त्री की कलम में ताकत तो है, करा तो वह देंगे, लेकिन वह करेगा क्या?

एक बार गौतम बुद्ध से एक सेठ ने कहा, "महाराज! मुझे कुछ ज्ञान दीजिये।" उन्होंने कहा, "कल मैं आऊँगा और तुम्हें ज्ञान दूँगा।" उन्हें भिक्षा माँगने उसके यहाँ जाना था। गौतम बुद्ध अपने कमण्डल में गोबर भरकर ले गये। उधर सेठ ने खूब बढ़िया खीर तैयार कर रखी थी। जब भिक्षा देने के लिये वह सेठ खीर लाया, तो गौतम बुद्ध ने अपना गोबर से भरा कमण्डल आगे कर दिया। सेठ हँस पड़ा, "भगवान! आपको क्या हो गया है? इस गोबर रखे हुए कमण्डल में मैं खीर कैसे रखूँ?" बुद्ध

मुस्कराते हुये बोले, "भाई! तुम्हें भी अपने धन का अहम् है, लोभ है, वासनाओं से तुम भरे हो। इसको निकालो, तब तो मैं तुम्हें ज्ञान दूँगा।" जब गोबर से भरे कमण्डल में खीर नहीं रखी जा सकती, तो अखण्ड की वाणी कहाँ से रखी जा सकती है?

इसलिये साक्षात् राज जी भी यहाँ आयेंगे, तो भी आपको बिना चितवनि कराये मर्यादा का उल्लंघन करके सबको दर्शन नहीं दिला सकते। हाँ, जिन्होंने तैयारी की है, जिन्होंने अपने हृदय को निर्मल बनाया है, उनको गुप्त रूप से दर्शन हो जाया करेगा। लेकिन जितने सभा में बैठे हैं, सब चाहें, तो एकसाथ प्रायः दर्शन नहीं हो सकता।

एक बार अवश्य हुआ है। जब लीलबाई के देहत्याग का समय आया, तो राज जी ने लीलबाई को दर्शन दिया। लीलबाई जी ने कहा, "राज जी! ऐसे काम नहीं

चलेगा। मुझे दर्शन दिया है, तो सबको दर्शन दीजिये।" सद्गुरु महाराज ने तीन सौ तेरह को तारतम दिया था। उन सभी को दर्शन तो हो गया, लेकिन किसी की भी आत्मा जाग्रत नहीं हुई, क्यों?

क्योंकि सभी को नूरी स्वरूप का दीदार इन आँखों से हुआ था। वे धनी को अपने दिल में नहीं बसा पाये। यदि दिल में बसा लिया होता, तो जयराम कंसारा बुढ़ापे में भी बर्तन नहीं बनाया करते, और श्री जी को हर जगह जा-जाकर सबको फटकार नहीं लगानी पड़ती। पहले जिन तीन सौ तेरह सुन्दरसाथ ने तारतम लिया था, वे श्री जी की वाणी से जाग्रत हुए। जब सबने अपने दिल में धनी की शोभा को देखा, चितवनि लगाई, तब उनकी आत्मा जाग्रत हुई।

यदि आड़िका लीला के माध्यम से आपको

राजश्यामा जी का दर्शन भी हो जाये, तो आप अपने को पूर्णतया जाग्रत हुआ न समझ लीजिये। हाँ, दर्शन हो जाने के पश्चात् आपके अन्दर प्रेम की अग्नि प्रज्वलित कर दी जाती है। आपने जो अखण्ड सम्पदा प्राप्त की है, वह राज जी की मेहर से प्राप्त की है। आप जाग्रत तो हो गये हैं और ऐसी स्थिति में यदि आपका तन छूट भी जाता है, तो आपकी आत्मा परात्म में ही जाग्रत होगी। उसको निद्रा में नहीं कहा जा सकता। लेकिन आपने चितवनि की नहीं।

यदि आपके अन्दर काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार के विकार भरे पड़े हैं, तो वह जो आपके अन्दर चिन्गारी डाली गई थी कि आप राज जी के प्रेम में बने रहिये, कब तक वह चिन्गारी जलती रहेगी? इसलिये एक मर्यादा है कि हर सुन्दरसाथ को चितवनि के लिये

प्रयास करना चाहिये। आप स्वयं श्री राज जी ही अपनी मेहर से दिखायेंगे।

जब तुम आप देखाओगे, तब देखूंगी नैन नजर जी।

राज जी दिखायेंगे, तो आप देखेंगे। यह बात बिल्कुल सच है। परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी के माध्यम से राज जी ने ही सबको परमधाम और युगल स्वरूप दिखाया। उसके पहले जिसको भी दर्शन मिला, सबने कुछ न कुछ कसौटी की थी, अन्यथा उनके साथ रहने वाले तो दिन-रात रहते थे, लेकिन कभी कोई कहता ही नहीं था कि महाराज जी, हमें परमधाम दिखाइये या राज जी को दिखाइये।

आज वाणी के ज्ञान की शुष्कता है, हृदय में भक्तिभाव नहीं है। जब मैं सुन्दरसाथ को चितवनि में

देखता हूँ, तो मुझे बहुत प्रसन्नता होती है। प्रेम करने वाला प्रेम में अपने को लुटा देता है। आप स्वयं को लुटाना सीख जाइये, समर्पण करना सीख जाइये, दर्शन तो अवश्य होगा, क्योंकि दर्शन देने वाला कहीं दूर नहीं बैठा है। यह आत्मविश्वास भरना जरूरी है।

यह कहते हुए मैं क्षमा चाहूँगा कि हमारा समाज आत्मविश्वास से रहित हो चुका है। समाज के एक वर्ग को यह कहकर भटका दिया गया है कि तुम तो गृहस्थी हो। मैं गादीपति हूँ, जब मुझको दर्शन नहीं होता, तो तुमको भी दर्शन नहीं होगा। मैं महाराज हूँ, पहले मुझे दर्शन होगा, यह भ्रम है। आत्मा की दृष्टि से न तो कोई महाराज है, न कोई गादीपति है, ना कोई गृहस्थ है। सबके अन्दर आत्मा है। किसके अन्दर प्रेम आयेगा?

ल्याओ प्यार करो दीदार।

इन विध देने ईमान, और उपजावने इस्क।

इस्क बिना न पाइये, ए जो नूर तजल्ला हक।।

आपके पास इश्क आ जायेगा, तो निश्चित रूप से दीदार हो जायेगा। इश्क लाने के लिये ही चितवनि करायी जाती है। राजश्यामा जी की शोभा को देखते-देखते आप विरह में डूबेंगे। विरह से भी ऊपर पहुँचकर आप प्रेम में डूबेंगे, तो राज जी अवश्य दर्शन देंगे।

परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी की छत्रछाया में तो न जाने कितने लोग रहे, लेकिन सभी को दर्शन क्यों नहीं हुआ? क्योंकि उन्होंने अपने को प्रेम की कसौटी पर नहीं कसा। सरकारश्री को भी दर्शन तब कराया, जब सरकारश्री लम्बे समय तक साधनारत रहे। सरकारश्री रात्रि के बारह बजे उठ जाते थे, और बारह

बजे से लेकर प्रातः छह बजे तक छह घण्टे चितवनि करते थे।

यदि किसी सुन्दरसाथ को आवेश लीला के माध्यम से दर्शन होता है, तो थोड़े समय के लिये ही दर्शन होगा। उस दर्शन को पाने के बाद यदि उनके मन में विकार आ गया, तो वह विकार उस मेहर को छीन लेगा। क्योंकि हमारा क्रोध नहीं मिटा, हमारा अहम् नहीं मिटा, हमारे अन्दर समर्पण की भावना नहीं आयी, परिणाम क्या हुआ?

परमहंस महाराज रामरतन दास जी के साथ जो सुन्दरसाथ रहते थे, उन पर पूरी तरह से समर्पित नहीं हो सके। श्री जी के साथ भी जो सुन्दरसाथ रहते थे, सारे समर्पित नहीं हो सके। जिन्होंने समर्पण किया, जिन्होंने अपने हृदय में श्री जी को बसा लिया, उन्हें

देर-सवेर दर्शन अवश्य हुआ। इसलिये प्रश्नकर्ता ने जो प्रश्न किया है कि अमुक मतों के अनुयायी पहले दिव्य स्वरूप का दिग्दर्शन कराने के पश्चात् चितवनि के बारे में बताकर प्रोत्साहित करते हैं?

प्रश्नकर्ता का भाव यह है कि जैसे योगेश्वरानन्द जी को उनके गुरुदेव आत्मानन्द जी ने अपने योगबल से अठारह घण्टे में आत्म-साक्षात्कार करा दिया और स्वयं योगेश्वरानन्द जी ने महात्मा आनन्द स्वामी को आठ दिनों के अन्दर आत्म-साक्षात्कार करा दिया, क्या अब ऐसा सम्भव नहीं है? मेरे पास तो अभी शक्ति नहीं है कि मैं वैसा करा सकूँ। हाँ, मैं शुभकामना अवश्य करता हूँ कि श्री राज जी की आप पर मेहर बरसे, आपको दीदार हो सके।

याद रखिये, मैंने पहले ही कह दिया है कि गीली

लकड़ी को कितनी ही दियासलाई की आग लगाई जाये, उसमें आग नहीं जलेगी। लकड़ी को सूखा बनाना तो आपका कर्तव्य है। स्वयं अक्षरातीत श्री जी ने भी सुन्दरसाथ को बिना चितवनि कराये दर्शन इसलिये नहीं कराया क्योंकि इससे सृष्टि की मर्यादा बिगड़ जाती। समाज में आलस्य पैदा हो जाता और मनुष्य के लिये आलस्य ही सबसे बड़ा शत्रु है।

एक घटना है, आपको बताता हूँ। एक बार मदन मोहन मालवीय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिये चन्दा लेने एक सेठ के पास पहुँचे। सेठ के पास बैठे थे। अचानक उनका लड़का दियासलाई की तीलियों को जला-जलाकर फेंकने लगा। सेठ ने कसकर उसे एक चाँटा मार दिया। बच्चा रोने लगा। मदन मोहन मालवीय उठकर जाने लगे।

सेठ ने कहा, "पण्डित जी! आप उठकर क्यों जाने लगे? आप तो विश्वविद्यालय के लिये चन्दा लेने आये थे।" पण्डित मदन मोहन मालवीय ने कहा, "नहीं, मैं आपका चन्दा नहीं लूँगा, क्योंकि आपने थोड़ी सी भूल पर अपने छोटे से एकलौते बेटे को इतना कसकर चाँटा मार दिया। ऐसी स्थिति में तो मैं आपका धन सेवा में स्वीकार नहीं कर सकता।"

सेठ ने कहा, "जरा आप बैठिये तो सही, मेरी बात सुनिये। मैंने इसको इसलिये चाँटा मारा है, क्योंकि कल को सारी सम्पत्ति का मालिक मेरा यही पुत्र बनेगा। मैंने कितने परिश्रम से धन कमाया है, इसे इसकी कीमत का पता नहीं है। यह एक-एक बत्ती जलाकर फेंक रहा है। यदि इसकी यही आदत बनी रहेगी, तो मेरे सारे धन को यह लुटा-लुटाकर नष्ट कर देगा। इसलिये इसको शिक्षा

देने के लिये मैंने चाँटा मारा है, ताकि यह धन को नष्ट करना न सीखे।"

उसी तरह से राज जी आपके दिल में ही रहते हैं। श्री देवचन्द्र जी के दिल में ही हैं, लेकिन देवचन्द्र जी को भी दर्शन देने के लिए कई सालों की प्रतीक्षा करा दी। मिहिरराज जी हब्शा में विरह में तड़प रहे हैं, ६ महीने तक विरह में तड़पाया। आखिर जिस तन को अक्षरातीत की शोभा दिलाई, उसको भी हब्शा में विरह में क्यों तड़पाया? इसलिये कि जब तक जीव का हृदय निर्मल न हो जाये, तब तक उसमें युगल स्वरूप की शोभा कैसे विराजमान हो सकती है?

इस नियम को कोई भी तोड़ नहीं सकता। न मैं तोड़ सकता हूँ, न परमहंस महाराज श्री रामरतन दास जी तोड़ सकते हैं, और न स्वयं श्री जी ही तोड़ सके।

क्योंकि सृष्टि में आने के बाद सृष्टि की मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है। अपने हृदय को तो निर्मल करना ही पड़ेगा, अन्यथा बिना पात्रता के यदि आपको जबरन दर्शन करा भी दिया जाता है, तो आप उसकी कीमत नहीं समझेंगे।

जैसे कोहिनूर हीरा एक किसान को मिल गया था, तो उसने उसे हल की मुठिया में लगा दिया था। बन्दर को भला अदरक के स्वाद का पता कैसे चल सकता है? इसलिये आलसी होने की भूल न कीजिए। आप यह दृढ़ विश्वास रखिये कि राज जी हमारे हृदय मन्दिर में रहते हैं और उनके दीदार के लिये हमें इस पापी जीव को कुछ कसौटी पर कसना होगा।

काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार को हटाने के लिये हमें कम-से-कम प्रेम से एक घण्टा, दो घण्टा तो

ध्यान करना ही पड़ेगा। जब आप थोड़ा सा अन्न पैदा करने के लिये चिलचिलाती धूप में फावड़ा चला सकते हैं, व्यवसाय में पसीने से तर-बतर हो सकते हैं, नौकरी करने के लिये आप अफसरों की डाँट खा सकते हैं, तो प्राणेश्वर अक्षरातीत के दर्शन के लिये क्या एक घण्टे पालथी मारकर नहीं बैठ सकते?

क्या अक्षरातीत इतने सस्ते हो गये? जिनके नख से शिख तक पूर्ण स्वरूप को अक्षर ब्रह्म नहीं देख सके, अक्षर के सपने का मन नारायण है, वह नारायण भी नहीं देख सके, ब्रह्मा नहीं देख सके, आप उस अक्षरातीत को देखने के लिये यदि एक घण्टे भी कष्ट नहीं उठाते, तो राजजी क्या करेंगे? इसलिये जैसे कृपण को कोई वस्तु दे दी जाती है, तो उसका अपमान होता है। सब्जी मण्डी में यदि हीरे की एक पोटली को जमीन पर रखकर सब्जी

के साथ बेचना शुरू कर दिया जाये कि ये हीरे हैं, इनको ले लो, तो उस हीरे का अपमान होता है। वाणी में स्पष्ट कह दिया—

एता मता जिन दिया, तिन आप देखावत केती बेर।

परमधाम की आत्माओं को जगाने के लिये रास से कयामतनामा तक १८७५८ चौपाइयाँ उतरीं और आत्माओं को जाग्रत करने के लिये अक्षरातीत श्री जी स्वयं धूप सहते हैं, शीत सहते हैं।

आज तो हमारे पास सीमेन्ट की छत है, हम छाँव में बैठते हैं, पँखे भी चल रहे हैं। श्री जी हजारों की संख्या लेकर, कल्पना कीजिये, जगह-जगह जाते होंगे, मन्दसौर, औरंगाबाद आदि। आप देखिये औरंगाबाद में कितनी गर्मी पड़ती है। औरंगाबाद और मन्दसौर का जो

इलाका है, नागपुर के नजदीक पड़ता है। नागपुर महाराष्ट्र में पड़ता है। वहाँ इतनी प्रचण्ड गर्मी पड़ती है कि सम्भवतः आप सहन नहीं कर सकते। श्री जी के लिये वहाँ टेण्ट लेकर कोई थोड़े ही जाता था। श्री जी कैसे बैठते होंगे, किसी ने सोचा है कभी? वृक्षों के नीचे, बरसात होती रहती होगी।

आजकल तो उनके नाम से बड़े-बड़े मठ खड़े कर लिये गये हैं। वहाँ के मठाधीश बिना ए.सी. के न तो ट्रेन में यात्रा कर सकते हैं और न कार में यात्रा कर सकते हैं। मठाधीश तो राजाओं जैसे वैभव में रह रहे हैं, लेकिन उनको यह सोचना होगा कि स्वयं अक्षरातीत जिस तन में बैठे, उस तन ने कितना कष्ट उठाया? यदि वे चाहते तो सबको एक ही पल में परमहंस बना देते, परमधाम दिखा देते, क्योंकि परमधाम वाला युगल स्वरूप तो

साक्षात् उनके अन्दर बैठा था।

जब श्री जी बंगला जी में बैठते हैं, तो अपने भावों के अनुसार जिन-जिन सुन्दरसाथ ने विरह में अपने को तपा लिया, उन्हें बिना चितवनि के भी साक्षात् दर्शन होने लगे। लेकिन उस दर्शन से पहले सबको कसौटी पर कसा गया, अन्यथा प्रकृति की मर्यादा मिट जाती और युगल स्वरूप की गरिमा की कोई कीमत ही नहीं रहती।

मैंने काफी अनुभव किया है कि जिन सुन्दरसाथ को बिना परिश्रम के राज जी का दर्शन हो जाता है, वे उसकी कीमत ही नहीं समझते। कुछ ही दिनों में उनका व्यवहार बदला हुआ दिखता है। इसलिये यह मर्यादा है। आपको चितवनि के लिये बैठना ही पड़ेगा। यदि आपका आसन सिद्ध हो जाता है, तो आपको बैठने में कोई कष्ट नहीं होगा। आपको लगेगा कि मैं बिस्तर पर सो रहा हूँ

और मेरी आत्मा के प्रियतम मेरे आत्म-चक्षुओं के आगे
विराजमान हैं।



सप्तम् पुष्प

प्रश्न- क्या वाणी में कहीं लिखा है कि समाधि से राज जी मिलेंगे?

उत्तर- मन्दिर में जाकर मत्था टेक रहे हैं, पूजा-पाठ कर रहे हैं, आरती कर रहे हैं, परिक्रमा कर रहे हैं। ये सब बहिर्मुखी पूजा है। प्रत्याहार का तात्पर्य है अन्तर्मुखी होना। आपने मन को संसार से समेट लिया, इन्द्रियों को संसार से समेट लिया, इसको अन्तर्मुखी होना कहते हैं। गीता में इसी को कहा है-

नवद्वाराणि संयम्य

नौ द्वारों का संयम करना अर्थात् दसों इन्द्रियों को उनके विषयों में न भटकने देना, विषयों को हटा देना। शरीर में नौ द्वार हैं। हमारी इन्द्रियाँ बाहर न भटकें, अपने

अधिष्ठाता मन में लीन हो जायें, मन अपने कारण में लीन हो जाये, यही योगी का मुख्य उद्देश्य होता है।

प्रत्याहार के पश्चात् होती है धारणा। धारणा किसको कहते हैं? हमारे चित्त की वृत्तियाँ जो संसार में भटक रही थीं, उन्हें लक्ष्य में केन्द्रित करना ही धारणा है। जैसे आप सुन रहे हैं, मैं बोल रहा हूँ, यह भी चित्त की एक वृत्ति है। ज्ञान का ग्रहण करना, बाँटना, हँसना, बोलना, कार्य करना, संवेदना का अनुभव करना, सब कुछ चित्त की वृत्ति है।

चित्त की वृत्तियों का निरोध करना और चित्त की वृत्तियों को किसी लक्ष्य में लगाना या डुबोना, दोनों में थोड़ा सा अन्तर होता है। हमारी जो चित्त की वृत्तियाँ संसार में लगी हुई हैं, उनको परमात्मा में लगा देना ही कहा जायेगा कि उसने संसार से चित्त की वृत्तियों का

निरोध कर लिया। चित्त में संसार बसा है। उस चित्त में प्रियतम को बसा देना। इसका अभिप्राय यह होता है कि चित्त की वृत्तियाँ निरुद्ध हो गयीं, अर्थात् संसार से हट गयीं।

देशबन्धः चित्तस्य नाम धारणा।

धारणा अर्थात् चित्त की वृत्तियों को लक्ष्य में केन्द्रित करना। इसी का परिपक्व रूप है ध्यान। ध्यान का परिपक्व रूप है समाधि। परन्तु सामान्य व्यक्ति को समाधि अवस्था में पहुँचने में कई घण्टे लग जाते हैं। जिसका हृदय रामकृष्ण परमहंस जितना निर्मल है, वह आधे घण्टे में भी समाधि को प्राप्त हो सकता है। रामकृष्ण परमहंस कोई भजन सुनते ही बाह्य संज्ञा से रहित हो जाते थे। उनको पता ही नहीं रहता था कि वे कहाँ बैठे हैं? जो निर्मलता रामकृष्ण परमहंस ने प्राप्त की

थी, वैसी निर्मलता किसी को भी प्राप्त हो जाए, तो आधे घण्टे में भी समाधि में प्रवेश कर सकता है।

किन्तु यदि चित्त में विक्षेप है, आपका मन वासनाओं के संकल्प-विकल्प में लगा हुआ है, तो स्वाभाविक है कि आपको समाधि में पहुँचने में कई घण्टे लग सकते हैं। हो सकता है कि आप छह-छह घण्टे का अभ्यास करें, तो भी आपको कई महीने लग जायें। यह भी सम्भव है, वर्षों लग जायें। इसलिये जिसका हृदय निर्मल है, वासना-शून्य है, केवल अन्तर्मुखी प्रवृत्ति वाला है, उसके लिये समाधि कोई कठिन नहीं है।

प्रश्न है कि क्या वाणी में कहीं लिखा है कि समाधि से राज जी मिलेंगे? अभी मैंने पहले कहा था कि प्रत्यक्ष में न कहकर परोक्ष में यह बात कही गई है। सागर की चौपाई है—

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाए।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए॥

आप जो चितवनि कर रहे हैं, वह अभी आपको सिखाई जा रही है, और आपके जीव के हृदय में राज जी की शोभा बसाई जा रही है। अभी आपने जीव के हृदय में शोभा को बसा रखा है। वाणी आप पढ़ लिये हैं, चर्चा सुनकर जानते हैं, मूल मिलावा ऐसा है, राजश्यामा जी की शोभा ऐसी है। आपकी बुद्धि अभी दौड़ लगा रही है। मन संकल्प-विकल्प कर रहा है।

कल के चार हारों की जगह आज पाँच हारों का वर्णन कर दिया गया है, किसी ने छह हारों का वर्णन कर दिया, क्योंकि तर्क-वितर्क चितवनि में नहीं चलेगा। जब तक आपकी तार्किक शक्ति कार्य कर रही है, तब तक

आप समझ लीजिये कि आप चितवनि से अभी दूर हैं।

आपके जीव के हृदय में जो अन्तःकरण है, उसके विषय में इस साल प्रोजेक्टर न होने से ज्यादा कुछ नहीं बताया जा सका। जब अगला शिविर होगा तब एक-एक तथ्य को विस्तार से बताया जायेगा। स्थूल हृदय क्या है? सूक्ष्म हृदय क्या है? सूक्ष्म हृदय के रूप में कारण शरीर कैसे विद्यमान रहता है? मस्तिष्क से उसका क्या सम्बन्ध है? क्या हमारी बुद्धि और यह मस्तिष्क अलग हैं? मन और मस्तिष्क में क्या सम्बन्ध है? चित्त और मस्तिष्क में क्या सम्बन्ध है? अहम् का मस्तिष्क से क्या सम्बन्ध है?

वह स्थूल अवश्य है, लेकिन कारण शरीर से इसका लगाव अभिन्नता की तरफ ले जाता है। यदि मैं व्याख्यान में कह दूँ तो आपके मनःपटल पर वह बात पूरी तरह से

अंकित नहीं होगी। इसलिये मैं इस पर ज्यादा नहीं कहूँगा।

अभी प्रसंग चल रहा था कि जब आप चितवनि में प्रारम्भिक अवस्था में बैठते हैं, तो जीव के हृदय में धनी की शोभा को बसाते हैं। हृदय का तात्पर्य— एक स्थूल हृदय होता है, और एक सूक्ष्म जो आँखों से दिखाई नहीं देता। कोई भी सूक्ष्मदर्शी मन का चित्र नहीं खींच सकता, बुद्धि का चित्र नहीं खींच सकता, अहम् का चित्र नहीं खींच सकता।

जिसका दशम् द्वार खुल जाता है, उसके अन्दर प्रकाश आ जाता है। जैसे अभी आप धूप में निकल करके देखेंगे, तो कोई सूक्ष्म कण नहीं दिखाई देगा। आपका कमरा अन्धेरे से भरा हो और यदि उस समय खिड़की जरा सी खुल जाए, झरोखे से प्रकाश की कुछ

किरणें आ जायें, तो उसमें अनेक सूक्ष्म कण उड़ते हुए दिखाई देते हैं जो पहले नहीं दिखाई देते थे।

उसी तरह से जब आपके अन्दर चक्रों का प्रकाश हो जाता है, दशम् द्वार खुल जाता है, तो आपको मन दिखाई देगा, चित्त भी दिखाई देगा, बुद्धि दिखायी देगी, और अहंकार भी दिखाई देगा। समाधि अवस्था में जो दशम् द्वार में अपने प्राण को स्थित कर लेते हैं, उन्होंने मन का रूप देखा है, चित्त का रूप देखा है, बुद्धि का रूप देखा है, लेकिन जिसको आत्म-दर्शन नहीं होता, आत्म-साक्षात्कार नहीं होता, तो वह क्या सोचता है कि जब दसवें द्वार में या अलग-अलग स्थानों पर चमकता हुआ जो प्रकाश दिखाई देता है, चन्द्रमा जैसा, सूर्य जैसा, तारों जैसा, तो यह मान बैठता है कि मुझे परमात्मा का दर्शन हो गया है।

जब सोलह सूर्यों के बराबर प्रकाश दिखाई दे, तो समझना चाहिये कि यह जीव का रूप है। चन्द्रमा के समान दिखाई दे, तो समझ लेना चाहिये कि यह हमारे मन का रूप है। किसी को तारों के रूप में दिखाई दे, तो समझ लें कि यह हमारी बुद्धि का रूप है, अहम् का रूप है।

हमारा अन्तःकरण, जो महत्तत्त्व से प्रकट हुआ है, इन्हीं का रूप देखकर सामान्य योगी मान लेते हैं कि हमने परमात्मा का दर्शन कर लिया है। चढ़ते हुए सूरज का प्रकाश देखकर यह समझ लेते हैं कि हमने ब्रह्म का दर्शन कर लिया, क्योंकि दसवें द्वार में सूर्य से भी ज्यादा प्रकाश दिखाई देता है। भोले-भाले लोगों को यह पता ही नहीं होता है कि प्रकृति के अन्दर जो चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार है, माया का रूप है। कुण्डलिनी के जागरण की

भी बात चलती है। आज उस पर ज्यादा विवेचन नहीं करूँगा, कल थोड़ा सा प्रकाश डालूँगा।

कुण्डलिनी जागरण ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं है। हमारे शरीर के अन्दर एक सुषुम्ना नाड़ी होती है। सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड से होकर निकली होती है। नीचे मूलाधार में सुषुम्ना का एक सिरा बन्द किया होता है और दूसरा सिरा दसवें द्वार पर बन्द किया होता है। प्राणोत्थान दो तरह से होता है— एक तो प्राणायाम से जो हठयोग की प्रक्रिया है और दूसरा होता है ध्यान से।

मनो विलीयते यत्र, प्राणः तत्र विलीयते।

जो मन को कहीं एकाग्र करेगा, तो प्राणवायु भी वहीं पहुँच जायेगी। जैसे कुछ लोग प्राणायाम करते हैं, तो क्या करते हैं? हाथ से नाक दबाते हैं। उनको प्राणवायु रोकने

के लिये हाथ से दबाना जरूरी होता है, लेकिन जिनका अभ्यास परिपक्व है, वह संकल्प मात्र से मन को नासिका के आगे रोकेंगे, तो उनकी प्राणवायु अपने आप रुक जायेगी।

इसी तरह से जो दसवें द्वार में प्राण को पहुँचाना चाहते हैं, केवल मन को वहाँ एकाग्र कर देंगे, तो नीचे से प्राणवायु एकत्रित होनी शुरू होगी और दसों प्राण दसवें द्वार में जाकर स्थित हो जायेंगे। यहाँ से समाधि की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। लेकिन इसको हठयोग की समाधि कहते हैं। हठयोग में जिस समाधि का वर्णन किया गया है, वह जड़ समाधि है। दसवें द्वार में प्राण का स्थित हो जाना, हृदय की धड़कन का बन्द हो जाना, और कई वर्षों तक बिना खाये-पिये बैठे रहना, यह हठयोग की जड़ समाधि ही है। इसका ब्रह्म के साक्षात्कार

से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पतञ्जलि के योगदर्शन में ऐसा कुछ नहीं है। पतञ्जलि का योगदर्शन चैतन्य समाधि का वर्णन करता है। पतञ्जलि के राजयोग दर्शन में आपको आत्म-साक्षात्कार होगा। प्रकृति का स्वरूप अनुभव में आयेगा कि प्रकृति क्या है और आदिनारायण जो अव्याकृत का प्रतिबिम्बित स्वरूप है, वहाँ तक आपकी पहुँच आसानी से बन सकती है। लेकिन जब तक अस्मिता का भाव समाप्त नहीं होगा, तब तक एकादश द्वार (परम द्वार) में प्रवेश नहीं हो सकता, चाहे आप एक-दो साल नहीं करोड़ों सालों तक समाधि में क्यों न बैठे रहें।

मैं योगदर्शन में वर्णित समाधियों का वर्णन नहीं कर रहा हूँ। जिस समाधि की बात चल रही है, वह है प्रेममयी समाधि। अक्षरातीत का दर्शन प्रेममयी समाधि से होगा।

अन्तस्करण आतम के, जब ए रह्यो समाए।

तब आतम परआतम के, रहे न कछु अन्तराए॥

यह समाधि का शिखर है। इसके पहले कहते हैं—
ताथें हिरदे आतम के लीजिए, बीच साथ सरूप जुगल।
सूरत न दीजे टूटने, फेर फेर जाईए बल बल॥

आत्मा के हृदय में युगल स्वरूप की छवि को बसाना। आत्मा के हृदय की लीला क्या है?

देखिये, आपका यह शरीर है। शरीर के अन्दर आपका जीव विराजमान है। जीव कहाँ है? ग्रन्थों में लिखा है—

हृदि ह्येषः आत्मा।

आत्मा का तात्पर्य यहाँ जीव से लीजिये। हृदय में

आपका जीव वास करता है। वह किससे घिरा है? कारण शरीर से— मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार से। मैं संक्षेप में थोड़ा प्रकाश भी डाल देता हूँ। यह मस्तिष्क है। मस्तिष्क में बुद्धि नहीं होती है। बुद्धि तो कारण शरीर का अंग है। मस्तिष्क में बुद्धि की क्रियाशीलता होती है। कारण शरीर स्वतः कुछ नहीं करता।

जैसे आपको प्यास लगी है। यदि मैंने एक गिलास पानी माँगा, तो आप पानी लाते हैं। यदि आपका मन नहीं होगा, मस्तिष्क नहीं होगा, बुद्धि स्वीकार नहीं करेगी, तो आप सुनते भर रह जायेंगे। किसी पागल आदमी को, जिसका मस्तिष्क कार्य न कर रहा हो, कहा जाये कि एक गिलास पानी लाओ, तो वह नहीं ला सकता, जबकि वह कानों से सुन रहा है।

कारण शरीर में बुद्धि है। पुनः मस्तिष्क क्या है?

मस्तिष्क स्थूल शरीर का अंग है। मस्तिष्क के अनेक भाग होते हैं। आप कम्प्यूटर से बता सकते हैं। यह जो कम्प्यूटर है, यह मस्तिष्क का यांत्रिक रूप है। जो कम्प्यूटर को जानने वाले हैं, अच्छी तरह से जानते हैं कि किस कम्प्यूटर में कितनी ग्रहण करने की क्षमता होती है। वैसे ही किसी का मस्तिष्क अधिक सक्रिय होता है, तो किसी का कम सक्रिय होता है।

शरीर की सारी नाड़ियों का सम्बन्ध मस्तिष्क से जुड़ा होता है। मन कारण शरीर का अंग है। मन मस्तिष्क को आदेश देता है, बुद्धि मस्तिष्क को आदेश देती है, चित्त मस्तिष्क को आदेश देता है, और अहम् मस्तिष्क को आदेश देता है। अन्तःकरण की कार्यशाला मस्तिष्क है, और मस्तिष्क से शरीर की सभी नाड़ियाँ सूक्ष्म रूप से जुड़ी होती हैं। ये नाड़ियाँ विकृत भी हो जाती हैं, तो

भी कोई कार्य नहीं हो सकता। मस्तिष्क तो सन्देश भेज रहा है, लेकिन दस इन्द्रियाँ उसको कार्य में परिणत नहीं कर पातीं। मैं अभी बस इतना ही बता सकता हूँ, क्योंकि विषयान्तर हो जायेगा।

आप लोग राजश्यामा जी को दिल में बसाने का प्रयास कर रहे हैं। आपने पढ़ा हुआ है, सुना हुआ है। अभी आपके चित्त में जन्म-जन्मान्तरों की वासना है। आप उससे जूझ रहे हैं। चितवनि में बैठे हैं, मन भाग रहा है, सोच रहे हैं कि कैसे राज जी पर लगाऊँ। यह क्यों हो रहा है?

क्योंकि आपका जीव अपने अन्तःकरण द्वारा युगल स्वरूप को बसाना चाह रहा है। जब विरह का पुट आता है, तो ऐसा करते-करते जीव की मैल कुछ हटती है। प्रेम कब आयेगा?

वचने कामस धोई काढ़िए, राखिये नहीं रज मात्र।

जोगबाई सरवे जीतिए, त्यारे थैये प्रेमना पात्र॥

वाणी के वचनों से उसको आचरण में लाने के पश्चात् अन्दर की मलिनता दूर होती है। अखण्ड का धन हृदय में लाने के लिये हृदय को निर्मल करना ही होगा। इसलिये—

केसरी दूध न रहे रज मात्र, बिना उत्तम कनक जो पात्र।

अक्षरातीत के प्रेम को दिल में बसाना चाहते हैं, तो इसमें से वासना को हटाना पड़ेगा जो जन्म-जन्मान्तरों से आपका पीछा कर रही है। तृष्णाओं की केंचुल को उतारकर फेंक देना होगा। इसका आधार कौन है? जो जैसा चिन्तन करता है, वह वैसा ही होता है। काम का चिन्तन करने वाला कामी अवश्य बनेगा। योग का

चिन्तन करने वाला योगी बनेगा। भोग का चिन्तन करने वाला भोगी बनेगा। ब्रह्म का चिन्तन करने वाला ब्रह्म के तदोगत होगा।

इसलिये जैसे-जैसे आपके जीव के अन्तःकरण में राजश्यामा जी की शोभा बसनी शुरू होती है, वैसे-वैसे जन्म-जन्मान्तरों की जो मैल जमी पड़ी है, हटनी शुरू होती है और जीव के अन्तःकरण में विरह के रस फूटने शुरू होते हैं। हर कोई राज जी के विरह में नहीं डूब सकता। हिमालय की गुफा में बैठकर कोई कई-कई वर्ष हठयोग की साधना कर सकता है। तपस्वी बन सकता है, लेकिन किसी के प्रेम में तड़पना, यह लाखों में कोई विरला ही कर पाता है। इसलिये तो कहा है—

विरहा नहीं ब्रह्माण्ड में, बिना सोहागिन नार।

ब्रह्मसृष्टियों के सिवाए किसी के पास विरह होता ही नहीं। आप देखते हैं, जब बकरीद का त्यौहार होता है, ईद का त्यौहार होता है, करोड़ों मुसलमान माँस खाते हैं, रोजा रखते हैं, नमाज़ पढ़ते हैं। क्या उन्हें विरह होता है?

एक बार मैं देवबन्द स्टेशन पर पहुँचा। उनकी शरियत के अनुसार नमाज़ का समय शुरू हो गया था। जैसे ही बेचारे नमाज़ पढ़ने लगे, ट्रेन के आने की घण्टी बज गई। मुझे हँसी आ रही थी। उनकी नमाज़ पाँच मिनट के अन्दर खत्म हो गई क्योंकि उनको लगा ट्रेन में नहीं बैठेंगे तो हमारी ट्रेन छूट जायेगी। वैसे ट्रेन देरी से आई, लेकिन शरियत के लिये दायें-बायें देखना, दो-चार बार दण्ड-बैठक करना ही बन्दगी मानी जाती है।

यदि खुदा को याद करना है, तो सूफी फकीरों की

तरह बैठकर भी तो याद कर सकते हैं, लेकिन नहीं, शरियत इजाजत नहीं देती। सारी जनता के सामने प्लेटफार्म पर दिखाने लगे कि हम नमाज पढ़ रहे हैं। इसलिये तो सूफी फकीर शाह कलंदर ने कहा है—

न रख रोजा न मर भूखा, न सिजदा कर तू मस्जिद में।

किताबे फेंक तसबी तोड़, लगाकर इस्क के झाडू हिरसे दिल को सफा कर॥

स्वयं को निर्मल करने के लिये इश्क की झाडू लगाना पड़ेगा। फकीरों ने रोजा को भी मना कर दिया। नमाज को भी मना कर दिया। जो सच्चा सूफी फकीर होगा, वह कभी नमाज नहीं पड़ेगा। वह तो रात में नौ बजे से तीन बजे तक छह घण्टे खुदा की इबादत में बिताता है और दिन को आराम करता है। नमाज पढ़ने वाले कहते हैं कि हम पाँच बार नमाज पढ़ते हैं, ये कुछ

नहीं पढ़ते। नमाज पढ़ने वाले दुनिया को अपनी फर्ज बन्दगी दिखाते हैं, उनके अन्दर प्रेम नहीं होता। जैसे-जैसे विरह का पुट आना शुरू होगा, तब प्रेम आयेगा।

पहले क्या है? बौद्धिक चिन्तन। आप चितवनि में बैठते हैं, तो मुझे लगता है कि अनेक सुन्दरसाथ का मन अभी लगता नहीं होगा, भटकता होगा। तरह-तरह के विचार आते हैं। एक बात ध्यान में रखिये। मन को रोकने के लिये सद्गुरु के ध्यान से पहले आप विपश्यना का आधार ले सकते हैं, जो गीता में कहा है—

सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रम् दिशा च न अवलोकयन्।

आपके मन ने संसार को देखा है, पर्वतों को देखा है, ग्रह-तारों को देखा है, बड़े-बड़े सम्बन्धियों को देखा है। इनसे मन को हटाकर सूक्ष्मता में प्रवेश करेंगे, तभी

अन्तर्मुखी प्रवृत्ति होगी। सूक्ष्मता में प्रवेश करने के लिये मन को सूक्ष्म पदार्थों पर ले जाना है। आपकी नासिका में प्राणवायु आ रही है, जा रही है। जब आप इस पर मन को केन्द्रित करेंगे, तो आपका मन बदल जायेगा।

आप अपने ध्यान के आसन पर बैठकर, वही नाक से श्वास न फेंकने लीजिए। अपने आगे के स्थान को पवित्र रखिये क्योंकि उस पर आपको राज जी के जोश के रूप में सद्गुरु का ध्यान करना है। वहाँ पर नाक से गन्दी हवा कभी भी फेंकने का प्रयास नहीं करना चाहिये। जो भी प्राणायाम करना हो, कहीं और जगह कर लीजिये।

इसके बाद आप सद्गुरु का ध्यान कीजिये। चितवनि के लिये बैठ जाइये, तो नासिका के आगे बस अन्तर्मुखी होकर आँखें बन्द करके देखने लगिये। प्राण की गति रुकनी शुरू हो जायेगी। धीरे-धीरे मन अपने आप रुकना

शुरु हो जायेगा।

अभी प्रसंग चल रहा था, विरह किसको कहते हैं? मछली को पानी से निकाल दीजिये, कुछ देर के बाद मछली तड़पने लगेगी, और यदि समय पर पानी में नहीं डाला गया, तो वह प्राण छोड़ देगी। मछली का तड़पना ही विरह है क्योंकि जल ही उसका जीवन है। आत्मा के जीवन का आधार उसका प्रियतम अक्षरातीत है। जब हृदय में इतनी पीड़ा आ जाए कि किसी भी तरह से राज जी सामने आयें, आँसू ऐसे बहें कि गाल भीग जायें, चिल्लाना नहीं।

किन्तु मैंने एक दृश्य देखा था जब सरकारश्री के धामगमन पर समाधि का दिन था, मंच पर मैं भी बैठा था। मेरी आँखों से किसी के सामने आँसू नहीं आये। लेकिन जब सरकारश्री से वियोग की बातें कही जा रही

थीं, तो मैंने नीचे और मंच पर भी कई लोगों को फूट-फूटकर रोते हुए देखा। दोपहर में जिनको मैंने फूट-फूटकर रोते हुए देखा था, शाम को उन्हें ही खिलखिलाकर हँसते हुए देखा। मैं सिर पकड़कर बैठ गया कि ऐसे दिखावी आँसुओं से क्या लाभ? कुछ दिनों के बाद नृत्य भी शुरू हो गया। जब पूछा गया कि भाई! सरकारश्री का धामगमन हो गया है, आप क्यों नाच रहे हैं? कौन सी खुशी है? उनका उत्तर था— सरकारश्री गये थोड़े हैं।

दिखावे के लिये तो उन लोगों ने भी आँसू बहाये, जो रास्ते में आते समय बस में खूब हँसी-मजाक-ठिठोली कर रहे थे। रतनपुरी आश्रम में आकर आँसू भी बहाये और जब बस में वापस जाने लगे, तो पूरे रास्ते हँसी-मजाक-ठिठोली करते रहे। चितवनि में वैसे

दिखावे के आँसुओं की जगह नहीं है। आपको पता भी न हो, ये पीड़ा के आँसू हैं। एक शायर ने कहा है—

अपने आँसुओं को इतना न छिपाओ कि तुम्हारा दिल ही सूख जाये।

कहने का तात्पर्य— आँसुओं के रूप में विरह की पीड़ा का अमृत जल है। विरह की गहन अवस्था में आँसू भी नहीं आते। हाँ, मध्यम अवस्था में आँसू आते हैं। लेकिन आपको पता नहीं रहेगा, जब आप ध्यान से उठेंगे, तब आपको पता चलेगा कि मेरा हृदय अपनी पीड़ा को व्यक्त कर रहा था। जब विरह का रस उमड़ पड़ेगा, तो आपके अन्दर प्रेम आयेगा।

एकरस होइये इस्क सों, चले प्रेम रस पूर।

जब इश्क आ जायेगा, तो आप इश्क से एकरस हो जायेंगे। आप राज जी से एकरस हो गये, क्योंकि पहले

चितवनि में सिखाया जाता रहा है कि जाओ, राज जी के चरणों में मत्था टेको, प्रणाम करो। इश्क में कौन किसको प्रणाम करता है? एकरस होने का तात्पर्य— जहाँ दास भावना मिट जाये, केवल तू रह जाये। आप भी न रह जाये, केवल तू। अपना अस्तित्व समाप्त।

जब मैं हूँ ही नहीं, तो किसको मत्था टेकूँगा? जब हमारा अस्तित्व है, तब तो बार-बार मत्था टेकेंगे, माफी मागेंगे, राज जी माफ कर दो। आज हमसे गुनाह हो गया है। हमसे भोग लगाने में देर हो गई। हमने नित्य पाठ करने में देर कर दी। जब स्वयं को सौंप दिया, तो वह सजा दे तो भी खुश हैं, प्यार करे तो भी खुश हैं। यह समर्पण की भाषा है। भीख नहीं माँगना, प्रार्थना नहीं करना, सिर नहीं पटकना। क्योंकि अपना कुछ है ही नहीं। स्वयं को सौंप दिया।

उसके प्रेम में अपना समापन हो गया, इसको कहते हैं एकरस होना। कोई पर्दा नहीं किया गया। आशिक और माशूक के बीच कोई पर्दा नहीं रहा। जब भावात्मक अभिव्यक्ति हो जायेगी, उसको कहते हैं एक होना। तो आपके हृदय में प्रेम के पूर बहने लगते हैं।

विरह तक जीव की लीला कार्य कर रही होती है। जब जीव आगे होता है, तो आत्मा की लीला नहीं। आत्मा का गुण है प्रेम। आत्मा का गुण विरह नहीं है। विरह जीव का गुण है।

जीव जन्म-जन्मान्तरों से पापों की काली छाया से बँधा है। जब उसको ब्रह्मज्ञान का प्रकाश मिलता है, तब वह बिलखता है कि मैंने ऐसे-ऐसे पाप कर लिया। अब मुझे नहीं करना है। मुझे प्रियतम के चरण कमल चाहिये। यही पश्चाताप् के आँसू होते हैं। जैसे ही विरह का रस

आया, उसके पश्चात् प्रेम का रस आयेगा। जब प्रेम आयेगा, तो विरह समाप्त। प्रेम की लीला जहाँ से शुरू होती है, वहाँ से आत्मा अपने हृदय में धनी की शोभा को बसाना शुरू कर देती है।

इस्क को ए लछन, जो नैनो पलक न ले।

मैं आपको देख रहा हूँ और मेरे नैनो की पलकें बन्द न हों, इसको कहते हैं "नैनो पलक न ले" अर्थात् आत्म-चक्षुओं से ऐसे देखना कि आत्म-दृष्टि राजश्यामा जी से हटकर कहीं और न जाये, इसको कहते हैं नैनो की पलकों का बन्द न होना।

इस्क को ए लछन, जो नैनो पलक न ले।

दौड़े फिरे न मिल सके, अन्तर नजर पिया में दे।।

अन्तर की नजर अर्थात् पिण्ड और ब्रह्माण्ड से परे।

जब हमारी आत्मा की नजर प्रियतम में पहुँच जाए और बाहर से दौड़ना-फिरना बन्द हो जाये, केवल राजश्यामा जी को देखने लगे, उसको कहते हैं इश्क। इश्क उसको नहीं कहते हैं कि ढोलक लेकर चार आदमी बैठ गये, खूब पीट रहे हैं। आठ-दस आदमी उचकने लगे, कूदने लगे।

पूछा गया कि क्या हो गया है? गीत गाने लगे- हमें इश्क हो गया- हमें इश्क हो गया। सब आडम्बर है, ढोंग है। इश्क का आशय है कि शरीर से कोई रिश्ता नहीं, संसार से कोई रिश्ता नहीं। आपका मन कोई काम न करे, बुद्धि कोई काम न करे, चित्त, मन, बुद्धि ने संसार को छोड़ दिया। अब आत्मा के हृदय में प्रियतम की छवि बसने लगी है, विरह के आँसुओं से जीव पहले ही निर्मल हो गया है।

पिउ के विरहे निर्मल किये, पीछे अखण्ड सुख सबन को दिये।

विरह की भट्टी में जलकर ही जीव निर्मल होगा। आत्मा स्वतः निर्मल है। आत्मा को निर्मल करने की आवश्यकता नहीं है। आत्मा को प्रेम चाहिये। जब प्रेम की दृष्टि मिलेगी, तब आत्मा धाम धनी को देखेगी। इसलिये कहा है, "ल्याओ प्यार करो दीदार।"

आपके मन में यह होगा कि राज जी कृपा करके दिखा ही सकते हैं, इसलिये इतनी कसनी की क्या जरूरत थी? यह बताइये, जब आप चीनी ज्यादा खायेंगे, शुगर का रोग आपको होगा, तब उसका प्रायश्चित्त में क्यों करूँ? जब आपके जीव में जन्म-जन्मान्तरों के विकार हैं, तो उसके प्रायश्चित्त रूप में कुछ तो बैठना होगा। जीव को कुछ तो कसौटी में कसना होगा।

यदि शक्ति का प्रयोग करके सबको एकसाथ परमधाम का दर्शन करा दिया जाये, तो समाज आलसी

हो जायेगा। आने वाली पीढ़ी कभी भी राज जी की चितवनि करना नहीं चाहेगी और एक चाटुकारों की लम्बी फौज खड़ी हो जायेगी। परिणाम क्या होगा? सारे समाज का विनाश। इसलिये स्वयं अक्षरातीत श्री जी ने सर्वशक्तिमान होते हुए भी सबको प्रातःकाल में चितवनि कराई और शाम को चितवनि कराई। यह नहीं कहा कि मैं अक्षरातीत हूँ, तुमको सीधे दिखा सकता हूँ। वह चाहते तो दिखा सकते थे।

देवचन्द्र जी के तन से होने वाली लीला में दिखाया भी था। लेकिन एक भी आत्मा इसलिये जाग्रत नहीं हो पाई क्योंकि किसी ने चितवनि का क्रियात्मक अनुभव नहीं किया। सद्गुरु धनी श्री देवचन्द्र जी के तन से होने वाली आड़िका लीला में इन नैनों से देखा। इसलिए आपको कहा जाता है कि सुन्दरसाथ जी! अपनी की हुई

भूलों के प्रायश्चित् स्वरूप अपने जीव को थोड़ी देर के लिये कष्ट दीजिये।

अभी मेरे पास शिकायत आई कि आप डेढ़-डेढ़ घण्टे ध्यान में बिठा देते हैं। सुन्दरसाथ कह रहे हैं कि बहुत कष्ट हो रहा है। याद कीजिये, डेढ़ घण्टे तो कुछ नहीं। अभी आर्य साहब आये हैं, सत्तर वर्ष की उम्र में १० घण्टे प्रतिदिन बैठ चुके हैं। यदि सत्तर वर्ष की उम्र में कोई सुन्दरसाथ १० घण्टे ध्यान में बैठ सकता है, आपको तो अभी केवल छह घण्टे कराया जा रहा है।

डेढ़-डेढ़ घण्टे चार बार, केवल छह घण्टे ही होते हैं। आप डेढ़ घण्टा भी राज जी को नहीं दे पाते हैं। पिकचर के लिये तीन घण्टे आसानी से कैसे देते हैं? रिश्तेदारों से बात करने के लिये, सखी-सहेलियों से बात करने में पाँच-पाँच घण्टे कैसे बीत जाते हैं? इसका

अर्थ यह है कि अभी हमारे दिल में राज जी के लिये विरह पैदा नहीं हुआ है, वह प्रेम पैदा नहीं हुआ है।

अभी मैं बता रहा था कि विरह की अवस्था को उलंघने के बाद जब हृदय में प्रेम का रस आयेगा, तब आपकी आत्मा के हृदय में धनी की शोभा बसेगी।

ताथें हिरदे आतम के लीजिये, बीच साथ स्वरूप युगल।

प्रेम आये बिना आत्मा के हृदय में धनी का स्वरूप नहीं बसेगा। जीव के दिल में विरह द्वारा बसेगा। ज्ञान द्वारा तो आपने वाणी पढ़कर जान ही लिया है कि राजश्यामा जी का श्रृंगार क्या है। किसी से भी पूछिये कि राजश्यामा जी का श्रृंगार क्या है? धाराप्रवाह बोलकर सुना देगा। परमधाम के पच्चीस पक्षों का धाराप्रवाह वर्णन कर देगा, क्योंकि उसने वाणी को पढ़कर जान लिया है।

लेकिन प्रेम का वर्णन वही कर सकेगा, जो परिपक्व होगा।

जैसे पतञ्जलि के राजयोग दर्शन के अनुसार आप चित्त की वृत्तियों का निरोध कर रहे हैं। आपने सूक्ष्म बिन्दु पर मन को एकाग्र किया, चित्त को उस पर लगाया। फिर उसके टुकड़े किये, फिर उसमें लगाया। आपको मैं एक-दो साधन बताता हूँ। आप उसका प्रयोग करेंगे, तो आपका भी मन लगने लगेगा। कम्प्यूटर में एक माउस होता है। जब हाथ उस पर रखते हैं, दबाते हैं, तो स्क्रीन पर एक तीर सा चलना शुरू होता है। जहाँ चाहते हैं, वहाँ रोकते हैं। इस प्रक्रिया को अपनाइये।

मैं चितवनि की उस प्रक्रिया को सरल तरीके से कम्प्यूटर के माध्यम से दर्शा रहा हूँ। स्थूल पदार्थ में कभी भी ध्यान नहीं लग सकता क्योंकि संकल्प-विकल्प हो जायेगा। राज जी के मुखारविन्द को देखा,

फिर आप सोचने लगे कि गाल कैसे हैं? कैसे देखूँ मैं गालों को। कल्पना कैसे करूँ? होंठ कैसे हैं, टुड्डी कैसी है? राज जी के होठों को मैं कैसे मानूँ? ये सागर-श्रृंगार में तो वर्णित है कि राज जी के कानों में जो बालें हैं, उनकी डिजाइन (design) ऐसी है। मैं कैसे डिजाइन को घटित करूँ, ये सब क्या है? मन की दौड़ है। बुद्धि ने जो ग्रहण किया है, उसको सोचने का अवसर मिल रहा है, किन्तु आपको प्रेममयी चितवनि करनी है।

ज्ञान आपके अन्दर है, बहुत अच्छी बात है। रंगमहल के मुख्य द्वार पर क्या शोभा है, दरवाजे की शोभा कैसी आई है, मेहराबों की शोभा कैसी आई है? यह वाणी पढ़कर आपने जान लिया है। लेकिन जब आप चितवनि करते हैं, तो ज्ञान के चक्कर में न पड़िये। श्री राज जी के मुखारविन्द पर आप एक बिन्दु मात्र लीजिये,

जिससे आपका ध्यान लगने लगे। कम्प्यूटर के माउस को जैसे-जैसे चलाते हैं, तो स्क्रीन पर तीर का निशान चलने लगता है। वैसे ही सूक्ष्म बिन्दु लीजिये और वहीं पर नूरी शोभा की भावना कीजिये। अपने मन को वहाँ रोकने का प्रयास कीजिये। कहीं शुष्कता न आ जाये, इसलिये थोड़ा-सा मुखारबिन्द के सौन्दर्य का भाव लीजिये और थोड़ा-सा एक बिन्दु पर टिकने का प्रयास कीजिये।

ऐसा करते-करते आपका मन गहराई में पहुँचता जायेगा और ऐसी स्थिति आ जायेगी कि चित्त राज जी की शोभा में ही डूबा रहने लगेगा। शोभा से बाहर हटकर बुद्धि की दौड़ में आप नहीं जायेंगे। यदि ऐसा नहीं करते हैं, तो कभी हाथ में ध्यान चला जायेगा, कभी पैर में चला जायेगा।

एक अंग देखन लगी, सो तितहीं भई गलतान।

यह चितवनि की परिभाषा है। जिस अंग में डूब गये, उसमें स्वयं को डुबो दीजिये। वास्तविक चितवनि यही है। प्रेममयी चितवनि यही है। यदि भागमभाग बनाये रखेंगे, पाँच मिनट में चितवनि कर लेंगे— सिंदुरिया रंग की साड़ी, श्याम रंग जड़ाव की कंचुकी, नीली लाही को चरणिया, यह तो चिन्तन हो गया। यह रट्टा मार्ग है। एक-एक अंग में भागमभाग लगायेंगे, तो इसमें आपका मन भाग रहा है, बुद्धि भाग रही है, चित्त भाग रहा है।

जीव के अन्तःकरण को यहीं रख दीजिये। इसमें विरह भरिए, प्रेम का पुट लेकर और जब जीव के धरातल पर भी चितवनि हो रही हैं, बुद्धि भी कार्य कर रही है, तो उसमें कम्प्यूटर के माउस का आधार लेकर धनी के अंग के किसी सूक्ष्म बिन्दु पर मन को एकाग्र

कीजिये, सौन्दर्य को लेते रहिये। धीरे-धीरे नूरी स्वरूप विरह का पूर लेकर अपने-आप झलकना शुरू होगा। इस अवस्था में विरह भी हट जायेगा, केवल प्रेम ही प्रेम हो जायेगा।

कुछ दिन पहले सुन्दरसाथ ने प्रश्न किया था कि राज जी का दर्शन किस अवस्था में होता है? उस अवस्था में होता है, जिसमें केवल माधुर्यता ही माधुर्यता हो, प्रेम ही प्रेम हो, समर्पण ही समर्पण हो। मैं का अस्तित्व समाप्त, विरह का अस्तित्व समाप्त। केवल प्रेम और उस प्रेम में आपकी आत्मा युगल स्वरूप को देखेगी, जिसके लिये कई तैयारियाँ करनी पड़ेगी। अभी मैं थोड़ी सी व्याख्या कर देता हूँ, समाधि के बारे में—

एकरस होईये इस्क सों, चले प्रेम रस पूर।

फेर फेर प्याले लेत हैं, स्याम-स्यामाजी हजूर॥

राज जी और श्यामा जी आपके सामने उस समय प्रकट हो जायेंगे, जब इश्क द्वारा आप एकरस हो जायेंगे। एकरस हो जाने के बाद आप मत्था नहीं टेकेंगे। क्या राज जी आपको मत्था टेकते हैं? बताइये, क्या कोई सुन्दरसाथ बोलेगा कि राज जी मुझे मत्था टेकते हैं? जब राज जी नहीं टेकते, तो आप क्यों टेकेंगे?

सुन्दरसाथ जी! मेरी बातें उल्टी लगेंगी और इसके लिये क्षमा चाहूँगा। चितवनि की भाषा संसार के ज्ञान की भाषा से अलग है। एकरस होने का तात्पर्य क्या है? एकरस किसको कहते हैं?

शक्कर को दूध में डाल दीजिये और आँखें फाड़-

फाड़कर देखिये कि शक्कर कहाँ गई? शक्कर दूध में दिखाई देगी? नहीं, क्योंकि वह दूध में मिल चुकी है। आप राज जी के प्रेम में इतने डूब जाइये कि कोई भय की दीवार न रह जाये। अभी तो आप मन्दिर में भय से जाते हैं। पौढ़ावनी करते हैं, मत्था टेकते हैं।

मेरे कहने का भाव आप यह न लगा लीजियेगा कि मैं मन्दिर को बन्द करने की बात कहता हूँ, सेवा-पूजा को बन्द करने की बात कहता हूँ। आप करते हैं तो कीजिये, लेकिन जब चितवनि में बैठते हैं, तो इन सारी चीजों को भुला दीजिये। यह वाणी कह रही है, मैं नहीं कह रहा हूँ। जब इश्क का रस ऐसा बहे कि आप राज जी से एकरस हो जायेंगे, तब आपको राज जी का दीदार होगा।

राजश्यामा जी का दीदार तब होगा, जब इश्क के

रस में आप अपने अस्तित्व को भुला देंगे। केवल राजश्यामाजी का स्वरूप ही लक्ष्य रह जायेगा। लेकिन इसके लिये आपको बहुत कुछ अपनी दिनचर्या में परिवर्तन करना होगा, अपने भावों में परिवर्तन करना होगा।

जब तक बार-बार मत्था टेकने की आदत नहीं छूटेगी, भीख माँगने की आदत नहीं छूटेगी, अपने अस्तित्व के अहम् का भाव नहीं छूटेगा, तब तक वह प्रेम नहीं आयेगा और आपको दीदार भी नहीं होगा, यह अवस्था हो गई हकीकत की।

अन्तस्करण आत्म के, जब ए रह्यो समाय।

तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए॥

उस समय यह शरीर नहीं रह जायेगा, मरेगा नहीं,

लेकिन आपको आभास नहीं होगा।

पहले आप मुरदे हुए।

आप संसार की तरफ से मर जायेंगे, क्योंकि आपको अपने नाम का पता नहीं रहेगा। यह भी पता नहीं रहेगा कि मैं कहाँ बैठा हूँ? मैं क्या हूँ? आपको अपनी परात्म का स्वरूप दिखेगा या अपनी आत्मा का?

परात्म के दिल में पच्चीस पक्ष बसे हुये हैं, आपकी आत्मा के दिल में भी पच्चीस पक्षों की शोभा बस जायेगी। उस परात्म के दिल में राज जी जैसे बैठे होंगे, वैसे ही आपकी आत्मा के सामने बैठे हुए नजर आयेंगे। लेकिन एक बात ध्यान में रखिये, आपको जब भी ध्यान करना हो तो हृदय में ध्यान कीजिये।

ज्ञानमयी चितवनि में परमधाम का लक्ष्य लेकर

ध्यान किया जाता है कि मेरी दृष्टि परमधाम में विचरण कर रही हैं, किन्तु प्रेममयी अवस्था में वह हृदय में केन्द्रित हो जाती है। उस समय अपने स्थूल शरीर या हृदय का आभास नहीं होता है। कोई भी माथे में या नासिका के अग्रभाग आदि में ध्यान करने का कभी भी प्रयास न करे, क्योंकि आप हठयोग की साधना नहीं कर रहे हैं, राजयोग की साधना नहीं कर रहे हैं। आपकी समाधि प्रेममयी समाधि है। इसी की तरफ संकेत करते हुये कबीर जी ने कहा है—

साधो! सहज समाधि भली।

न मुद्रा, न बन्ध, न प्राणायाम। केवल प्रेम की भावना लेकर आपने लक्ष्य को पा लिया। इसलिये निजानन्द दर्शन संसार में सबसे न्यारा है। यह प्रक्रिया संसार में नहीं है। हमने उसको पाया, लेकिन उसकी

गरिमा को नहीं समझा।

सुन्दरसाथ का जो प्रश्न है— समाधि शब्द किस चौपाई में लिखा है? समाधि शब्द नहीं लिखा है, समाधि के लक्षण तो लिखे हैं। यदि हमारे होंठ सूखे हैं, तो इसका तात्पर्य है कि हमें भूख और प्यास ने सता रखा है। यदि किसी के मुख को चन्द्रमा जैसा कहा जाता है, तो इसका तात्पर्य है कि उसका मुख बहुत सुन्दर है।

जिसमें संसार से रिश्ता टूट जाए, अक्षरातीत से प्रेम में एकरसता हो जाए, उसी को समाधि कहते हैं, और यदि इस समाधि में राज जी का दीदार होने के पश्चात् उनके दिल में डुबकी लगा ली, तो यह मारिफत की अवस्था, विज्ञान की अवस्था है। इसके बाद कोई अवस्था नहीं। इसलिये शब्दों के बाह्य जाल में फँसने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

ऐसा देखना चाहिये कि इस चौपाई का क्या आशय होता है? अब आप सोचेंगे कि हम उस अवस्था तक कैसे पहुँचे? इच्छा तो सबकी होती है, लेकिन समस्यायें सबके सामने होती हैं। किसी को कोई व्यसन होता है, किसी को कोई व्यसन। कोई मोह के जाल में फँसा होता है, कोई शुष्क ज्ञान में फँसा होता है, कोई शुष्क वैराग्य में फँसा होता है, कोई धन के मोह में फँसा होता है, कोई प्रतिष्ठा के मोह में फँसा होता है।

ये सारे सूक्ष्म बन्धन हैं। स्थूल बन्धनों को तो आप छोड़ सकते हैं— घर को छोड़ सकते हैं, पत्नी को छोड़ सकते हैं, बच्चों को छोड़ सकते हैं। वैरागियों के कपड़े पहन सकते हैं। लेकिन यह जो सूक्ष्म माया है, वह हमारा पीछा करती रहती है। यदि हमने अपनी तृष्णाओं पर विजय नहीं पायी, तो नकारात्मक विचारों में खोये रहते

हैं कि क्या करें? हमारा मन ही वश में नहीं होता।

थोड़ा सा मैं मन के बारे में बताता हूँ। एक दिन इस पर काफी प्रकाश डाला गया था। देखिये, किसी भी पदार्थ के दो रूप होते हैं— बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी।

पृथ्वी के ऊपर बर्फ जमी हुई है, लेकिन पृथ्वी के अन्दर आग का दहकता हुआ गोला है। जब यही आग पृथ्वी की सतह को फोड़कर निकलती है, तो कहते हैं कि ज्वालामुखी फट गया है। सूर्य आकाश में चमक रहा है, सूर्य का ऊपरी प्रकाश हमें प्राप्त हो रहा है। सूर्य के अन्दर क्या है? उसके अन्दर हमारी पृथ्वी जैसी लाखों पृथ्वियों का तेज समाया हुआ है। पृथ्वी से तेरह लाख गुना बड़ा सूर्य है।

उसी तरह से मन एक द्रव्य है। काल, दिक्

(दिशा), मन, आत्मा आदि कणाद ने नौ द्रव्य माने हैं। मन को द्रव्य माना है। जीव को द्रव्य माना है। दिशा को भी द्रव्य माना है, और पाँच तत्वों को भी द्रव्य माना है।

चित्त, मन, बुद्धि, और अहंकार पदार्थ हैं, ऐसे पदार्थ जिनकी उत्पत्ति महत्तत्त्व से हुई है, और हमारे जीव की चेतना उनमें प्रतिबिम्बित होकर उनको चैतन्यता का रूप प्रदान करती है।

कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर हमेशा जीव के साथ जुड़े रहते हैं। पंचतत्वों के साथ संयोग होने पर हमारा यह रूप दिखाई देता है। पंचतत्वों से अलग हटने के बाद उसको मृत्यु का रूप माना जाता है। कारण शरीर से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने के बाद, अस्मिता का भाव समाप्त होने के पश्चात्, मोक्ष की अवस्था कहलाती है।

पाश्चात्य दर्शन में, चेतन और अवचेतन दो मन होते हैं। भारतीय दर्शन में यह कहा जायेगा कि मन की प्रक्रिया दो तरह की है— एक बाह्य प्रक्रिया, एक आन्तरिक प्रक्रिया। मन दो नहीं होते, मन एक ही होता है।

जैसे पृथ्वी के एक स्वरूप में बर्फ जमी हुई है, तो एक स्वरूप में आग की दहकती हुई लपटें हैं। उसी तरह से जो मन की बहिर्मुखी लीला है, उसको कहते हैं चेतन मन, क्योंकि वह हमेशा सक्रिय दिखता है। हम जो भी संकल्प-विकल्प करते हैं, चेतन मन से करते हैं।

जो अन्तर्मुखी मन हैं, उसके बारे में हमें कुछ मालूम नहीं कि वह क्या है? जो व्यक्ति ध्रुव प्रदेश में रहता है, यदि उसको शिक्षा न दी जाये, यह न बताया जाये कि जिस बर्फ में तुम रह रहे हो, इसके नीचे तो दहकता हुआ

अग्नि तत्व है, तो उसको विश्वास ही नहीं होगा कि पृथ्वी के अन्दर आग है, क्योंकि वह तो बर्फ पर खड़ा रहता है। उसके मकान भी बर्फ के होते हैं। जहाँ का तापमान शून्य से चालीस-पचास सेन्टीग्रेड नीचे है, वहाँ का व्यक्ति भला कैसे सोच सकता है कि इसके नीचे खोदने पर दहकती हुई आग की लपटें हैं। उसी तरह से बहिर्मुखी मन के जंजाल में प्राणी फँसा रहता है, क्योंकि बहिर्मुखी मन बाहर के पदार्थों को देखता है। भाई-बन्धुओं को, घर-नगर को देखता है, सुख-सुविधाओं को देखता है। पाँचों इन्द्रियों से विषयों का भोग करता है। अन्तर्मुखी मन चुपचाप बहिर्मुखी मन की लीला को देखता रहता है। इसको कहते हैं अवचेतन मन, लेकिन अवचेतन मन का सम्बन्ध सीधे जीव से होता है।

यदि हमें बहिर्मुखी मन की बातों को अन्तर्मुखी मन

तक पहुँचाने की कला मालूम हो जाये, तो हम बहुत ऊँचाई तक पहुँच सकते हैं। इसके लिये पहली बात, हमें नकारात्मक विचारों को छोड़ना होगा, जो हम तमोगुण के कारण संशयात्मक बुद्धि से सोचा करते हैं। हमने परीक्षा दी है, उत्तीर्ण होंगे कि नहीं, दिन-रात चिन्ता में डूबे रहते हैं। फसल बोई, दिन-रात चिन्ता में डूबे रहते हैं, पता नहीं फसल होगी कि नहीं। कॉलेज में पढ़ने जाने लगे, सोचते हैं कि पता नहीं, उत्तीर्ण होंगे कि नहीं।

राज जी की चितवनि करते हैं, इसमें भी संशय है। हमारे अन्दर तो अवगुण है, पता नहीं, राज जी हमारी प्रार्थना सुनेंगे कि नहीं। इसका आशय कि राज जी बहरे हैं। राज जी बहरे नहीं है। आपके मन की बात को भी जानते हैं। केवल प्रतीक्षा इस बात की हो रही है कि आपकी पुकार हृदय से निकली है कि नहीं। आप राज

जी को सबसे अधिक चाहते हैं या नहीं। जिस क्षण आपका हृदय प्रेम से लबालब भर जायेगा, राज जी की भी शक्ति नहीं है कि आपके सामने न आयें। और वह तो आपके सामने हैं, पर्दे को हटाना होता है।

आप लोग बैठे हुए हैं। यदि यहाँ एक पर्दा टँगवा दिया जाए, तो आप लोग मुझे नहीं देख पायेंगे, मैं आपको नहीं देख पाऊँगा। आप लोग चिल्ला रहे हैं कि राजन स्वामी कहाँ हैं? मैं कहूँगा कि मैं यहीं हूँ। न मैं आपको देख सकूँगा, न आप मुझे देख सकेंगे। बस यही कहा है। राज जी कहीं दूर नहीं बैठे हैं।

हक नजीक सेहेरा से।

धाम धनी प्राण की नली से भी नजदीक हैं, लेकिन हमारी आत्मा जीव के ऊपर बैठकर जीव की लीला को

देखने लगी और जीव अन्तःकरण के पर्दे पर संसार की लीला को देख रहा है। यह ध्यान रखिये, आप प्याज के पकौड़े खा रहे हैं, जीव नहीं खा रहा है। इस स्वाद का जो अनुभव हो रहा है, कौन कर रहा है? मन। जीव भी कारण शरीर द्वारा द्रष्टा होकर देख रहा है। जीव पकौड़े नहीं खाता है। जीव अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ नहीं खाता है।

अभी तो आपका जीव संसार में इतना फँसा है कि केवल हलवा-चाय ही तो बन्द की गई, किन्तु आप व्यथित हैं। आप विपश्यना वालों को देखिये। दस दिनों तक सबके मोबाईल जब्त कर लिये जायेंगे। जो दिया जायेगा, वही खायेंगे। अभी सुन्दरसाथ को कहा जाता है कि हर्बल चाय चार बार पीने को मिलेगी। लेकिन छिप-छिपकर कैफीन की चाय जरूर पियेंगे। कोई कहेगा मेरा

सिर दर्द हो रहा है, कोई कुछ, कोई कुछ। यह जहर भरी चाय आपको व्याकुल कर सकती है।

तृष्णाओं का बोझ इतना है, तो कहाँ से सुरता लगेगी? मैं क्षमा चाहूँगा, मैं किसी की भावनाओं पर आक्षेप नहीं कर रहा हूँ। लेकिन याद रखिये, दुनिया के जीव नारायण को पाने के लिये, निराकार को पाने के लिये सब कुछ छोड़ रहे हैं। आप अक्षरातीत को पाने के लिये भी कुछ नहीं छोड़ना चाहते हैं। इसलिये आपकी तृष्णा की पूर्ति करने के लिये चाय का स्टॉल लगवाना पड़ा। मैं दिल से नहीं चाहता। सुन्दरसाथ की तो इतनी जिन्दगी गुजर गई, जीवन के साठ साल, सत्तर साल, पचहत्तर साल बीत गये, एक चाय आपको बाँधे हुए है। राज जी के नाम पर इतना नहीं छोड़ सकते, तो क्या पायेंगे?

अभी प्रसंग चल रहा था, चेतन और अवचेतन का। चेतन मन जो सोचता है, अवचेतन मन आँख मूँदकर करेगा। उसको नहीं पता कि यह जो आदेश मिल रहा है, अच्छा है या बुरा है। आपका मन भागता है, आप इसको मत दोहराइये कि मेरा मन भागता है।

आप रात्रि को सोते समय ध्यान में बैठिये। राज जी का ध्यान कीजिये। मन को शान्त कीजिये और उस समय यह दृढ़ संकल्प कीजिये, "मैं राज जी के प्रेम में डूब रही हूँ। मेरा मन स्थिर हो गया है।" यह मत कहिये कि मेरा मन भाग रहा है। यदि आप अवचेतन मन में यही बात डालेंगे कि "मेरा मन भाग रहा है", तो आपका मन भागता ही रहेगा।

आपमें लोभ आता है, क्रोध आता है, काम विकार सताता है, तो यह मत समझा कीजिये कि मैं कामी हूँ।

उस समय यदि आप समझेंगे कि "मैं कामी हूँ", तो काम विकार जोर डालेगा। आप उस समय अवचेतन मन को आदेश दीजिये कि "मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ, सभी विकारों से परे हूँ। सच्चिदानन्द परब्रह्म की कृपा से मैं निर्विकार हूँ। मैं विरह के रस में डूबी जा रही हूँ।" इन वाक्यों को दोहरायेंगे, तो आपका अवचेतन मन आपके जीव तक बातों को पहुँचा देगा। फिर कुछ दिनों में आप वैसे ही बन जायेंगे। नकरात्मक विचारों में आप हीन भावना में ग्रसित रहेंगे, तो कभी भी मन्जिल तक नहीं पहुँच सकते।

अपने मन को जीतने के लिये एक तरीका है— चेतन और अवचेतन की प्रक्रिया को समझिये। चेतन मन आदेश देता है, अवचेतन मन करता है। आप दिन में कितना भी ध्यान कीजिये। रात को सोते समय यदि आपके अन्दर मनोविकारों ने जगह बना ली, तो याद

रखिये, पूरी रात आप विकारग्रस्त रहेंगे। इसलिये रात को सोने से पहले आप ध्यान में डूब जाइये। थके-मांदे हों, तब भी दस मिनट ध्यान कीजिये। दस मिनट के लिये संसार को भुला दीजिये, राज जी को याद कीजिये, और उसके पश्चात् अपने अवचेतन मन में आप जो उतारना चाहते हैं, वह प्रवेश कराइये।

कोई व्यक्ति आर्थिक समस्याओं से ग्रसित हो गया है, तो सबसे कहेगा कि मेरे घर में आर्थिक समस्या है, ऐसी स्थिति में समस्यायें सुलझने के बदले बढ़ती जायेंगी। रात्रि को ध्यान कीजिये। ध्यान करने के बाद अपने मन में संकल्प कीजिये। अवचेतन मन में यह विचार डालिये कि मेरे पास आर्थिक संसाधन पूरे हो गये हैं। मैं यह कार्य कर रहा हूँ। यदि आप डॉक्टर बनना चाहते हैं, इन्जीनियर बनना चाहते हैं, तो उसका

कल्पना चित्र बनाइये, "मैं डिस्पेन्सरी में बैठा हूँ। मैं यह कर रहा हूँ।" यदि आप परमहंस बनना चाहते हैं, तो आप रात्रि को सोते समय ध्यान कीजिये, तत्पश्चात् सोचिए, "मैं विरह के रस में डूब गया हूँ। अक्षरातीत का दीदार मुझे हो गया है। मैं ब्राह्मी अवस्था को प्राप्त कर रहा हूँ।" इन्हीं विचारों को दोहराइये, नकारात्मक विचारों को नहीं।

धीरे-धीरे एक दिन ऐसा आयेगा कि आप उस मन्जिल पर पहुँच जायेंगे। लेकिन आप शक्ति का दुरुपयोग भी न कीजिये। यदि आप रात को सोते समय यह सोचें कि सारी दुनिया नष्ट हो जाए, सारे संसार के लोग मर जायें और सबकी सम्पत्ति मेरे पास हो जाए, तो यह नहीं होगा। शक्ति किसी का विनाश करने के लिये नहीं है।

आप अपना आत्मिक उद्धार यदि करना चाहते हैं, तो अवचेतन मन की शक्ति का प्रयोग करके कर सकते हैं। आप भौतिक जीवन को सुखी बनाना चाहते हैं, भौतिक इच्छाओं को पूरा करना चाहते हैं, तो अवचेतन मन की शक्ति से कर सकते हैं।

होता क्या है? समाधि अवस्था में चित्त, मन, बुद्धि, अहंकार का जीव से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। योगी का आत्मबल इतना बढ़ गया होता है कि मन में जो भी इच्छा करेगा, वह हो जायेगा। उसकी वाणी में इतनी शक्ति होती है कि किसी को आशीर्वाद भी दे दे कि "जाओ, हो जाए", तो हो जाता है, क्योंकि वह उसके अवचेतन मन से, शुद्ध हृदय से, निकली हुई आवाज होती है। योगदर्शन में लिखा है—

सत्यप्रतिष्ठायाम् क्रियाफल आश्रयित्वम्।

मन, वाणी, कर्म से जो सत्य का पालन करता है, उसकी वाणी कभी व्यर्थ नहीं जाती, अमोघ हो जाती है। इसलिये आप सुन्दरसाथ यदि उस अवस्था तक नहीं पहुँचे हैं, तो भी चिन्ता न कीजिये, अपने अवचेतन मन की शक्ति का प्रयोग कीजिये। इसका उपयोग करके आपके अन्दर विरह आ सकता है, प्रेम आ सकता है, वाणी का ज्ञान आ सकता है।

लेकिन इस अवस्था में किसी अनिष्ट का चिन्तन न कीजिये। आपका किसी से झगड़ा हो गया और उसके बारे में बह्दुआ देने लगे, यह आपको अधिकार नहीं है। यदि आप उसको पीड़ा देंगे, तो उतनी ही पीड़ा आपको भुगतनी पड़ेगी, क्योंकि राज जी ने आपको शक्ति दी है दूसरों को सुखी बनाने के लिये, दूसरों को सजा देने के लिये नहीं। इस काम के लिये कोई और है। आप अपने

मन में यह भावना रखिये—

संगच्छध्वम् संवदध्वम् सं वो मनांसि जानताम्।

हम साथ-साथ चलें, साथ-साथ बोलें, हम सबके मन एक समान हों।

मित्रस्य चक्षुसा अहं सर्वाणि भूतानी समिच्छे।

मैं संसार के सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। किसी का अनिष्ट चिन्तन न कीजिये, विकारों का चिन्तन न कीजिए। सोते समय शुद्ध हृदय से अवचेतन में जो विचार डालेंगे, वे समाधि की अवस्था की तरह, फलीभूत होंगे। सोते समय क्या होता है? जाग्रत समाधि में भी मन, चित्त, बुद्धि की लीला नहीं होती, और निद्रा की अवस्था में भी मन, चित्त, बुद्धि की लीला नहीं होती। उस समय सोने से पहले अवचेतन मन में जो बात डाल

दी जाती है, वह सीधे जीव तक पहुँच जाती है।

इस कारण उसका कार्य हो जाता है। मूलतः यदि कारण शरीर को हटा दिया जाये, तो जीव भी द्रष्टा हो जायेगा, कैसे? वाल्मीकि ऋषि ने न जाने कितनों को काटा होगा। जब वे साधना में लीन थे, नारद आदि ऋषियों के आशीर्वाद से ध्यान में बैठे और उनकी समाधि लग गई। उसके पश्चात् क्रौंच पक्षी के जोड़े पर बहेलिये ने तीर चलाया था। उसका मरना उनसे सहन नहीं हुआ। व्यक्ति वही है। जो स्वयं अपनी तलवार से कितनों की गर्दन उड़ा चुका हो, वह एक पक्षी का मरना भी सहन नहीं कर सका।

किसी प्राणी ने यदि माँस खाया, उसकी इन्द्रियों ने स्वाद चखा, मन ने अनुभव किया। जीव मन के द्वारा, चित्त के द्वारा, बुद्धि के द्वारा होने वाले कार्य को द्रष्टा

बनकर देख रहा है, लेकिन इनसे जुड़ा हुआ है। इसलिये कर्मफल का भोग जीव को भोगना पड़ रहा है। मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार जड़ हैं। इन्द्रियाँ जड़ हैं। इनके अन्दर चेतना जीव से जा रही है, लेकिन कार्य यह सब कर रहे हैं। जीव उनका स्वामी है, इसलिये भोगना उसे पड़ रहा है। उसी तरह से आत्मा भी है—

आत्म तो अन्धेर में, सो बुध बिना बल क्यों होए।

आत्मा पापी नहीं है। अभी आपने "श्री प्राणनाथ" सीरियल देखा। बिहारी जी के बारे में अच्छी तरह से जानते हैं। बिहारी जी की आत्मा ने कोई पाप नहीं किया, पाप किया जीव ने। उनके ऊपर आरोप लग गया। उसी तरह से जीव भी स्वयं पाप नहीं कर रहा है, अन्तःकरण के माध्यम से पाप के बन्धन में फँस रहा है, और आत्मा जीव की लीला को देख रही है। इसलिये आत्मा भी

जीव-भाव को प्राप्त हो गई है। वह अपने इस शरीर को अपना शरीर मान रही है। संसार को अपना घर मान रही है।

जैसे जीव कारण शरीर के बन्धन में आने के कारण मन के जाल में फँसा हुआ है, और मन के बन्धनों में होने के कारण किसी को मिर्च का स्वाद आ रहा है, तो किसी को मिठाई का स्वाद आ रहा है। जब व्यक्ति मीठा खाता है, तो वह खुश होता है। उसे मनपसन्द चीज मिल गई होती है। किसी को कुछ मनचाहा मिल गया, तो वह खुश हो रहा है कि मुझे यह मिल गया। सब किसकी दौड़ है? मन की। जीव को यदि इन चीजों से अलग कर दीजिये तो समझेगा कि मैं किस जाल में फँसा पड़ा था। धर्म की डगर पर चलने से पहले इन बन्धनों को हटाना होगा।

यदि राज जी को पाना है, तो हमें साम्प्रदायिक कर्मकाण्डों के बन्धनों में नहीं फँसना होगा, क्योंकि साम्प्रदायिक चीजें हमें क्या सिखाई गई हैं? पाँच बार तारतम का पाठ करके चरणामृत-प्रसाद लेना ही है। परिक्रमा करनी ही है। लेकिन यदि आपको राज जी का दीदार करना है, तो कुछ और ही भाषा पढ़नी पड़ेगी। जैसे अभी मैंने चौपाई बोली—

एकरस होइये इस्क सों।

यदि आप इसको अपने जीवन में चरितार्थ कर लेते हैं, चेतन और अवचेतन मन के रहस्य को समझ लेते हैं, तो आप भी एक दिन परमहंस बन सकते हैं।

यह याद रहे कि आप संसार में कितने ही बड़े ज्ञानवान क्यों न हो जायें, अपने ज्ञान का अहम् कभी न

कीजिये। यदि आप इतने बड़े परमहंस हो जायें कि आँखें बन्द करते ही राज जी का दीदार होने लगे, तब भी कभी यह भावना मन में न लाइये कि मैं तो इतना बड़ा हो गया हूँ कि मैं जैसे ही आँख बन्द करता हूँ, उसी समय श्री राज जी को देखने लगता हूँ।

किसी से ऐसा कहकर अपने आध्यात्मिक बल का प्रदर्शन न कीजिये, क्योंकि आपको जो शक्ति दी गई है, वह संसार के कल्याण के लिये दी गई है। वह आपकी अपनी शक्ति नहीं है। यदि आप अपनी शक्ति मानेंगे, दूसरों का उपहास उड़ायेंगे, तो एक दिन वह शक्ति आपसे वापस ले ली जायेगी।

जिस वृक्ष में फल लगे होते हैं, वह झुक जाता है। यदि आप चितवनि के शिखर पर पहुँच गये, आपने अहम् भाव ले लिया कि मैं इतनी चितवनि करता हूँ, मेरे जैसा

कोई नहीं, तो समझ लीजिये आपने अपने पतन की खाई खोदनी शुरू कर दी है। मेरे जैसा कोई नहीं, यह भाव कभी न रखिये। चाहे ज्ञान के क्षेत्र में, चाहे सेवा के क्षेत्र में, चाहे भक्ति के क्षेत्र में। जो कुछ हुआ है, तुझसे हुआ है, करने वाला तू है। जो कुछ मेरे पास है, सब तुम्हारा ही है। सब तू कर रहा है, मैं नहीं। "मैं तो तुम्हारी कीयल" अर्थात् मैं केवल आपकी हूँ।

एक बार कर्ण और अर्जुन में युद्ध होना था। कर्ण केवल दो दिन सेनापति रहा, सोलहवें और सत्रहवें दिन। सोलहवें दिन की रात्रि की बात है, सत्रहवाँ दिन प्रारम्भ होने वाला है। अर्जुन गहरी निद्रा में लेटा हुआ है। श्री कृष्ण उठाते हैं, कहते हैं— "अर्जुन! तुझे चिन्ता नहीं है? कल कर्ण के साथ तुझे निर्णायक युद्ध में उतरना है और तू पाँव फैलाकर सो रहा है।" अर्जुन मुस्कराते हुए बोला,

"प्रभो! मुझे क्या चिन्ता करनी है? मैंने तो डोर आपके हाथों में पकड़ा दी है। मुझे अब तीर नहीं चलाना है। सब कुछ तो आपको करना है।" तीर कौन चला रहा है, अर्जुन। लेकिन कह क्या रहा है, "प्रभो! मैं नहीं चला रहा हूँ, सब आप कर रहे हैं।" यह दुनिया का एक भक्त कह रहा है।

आप चितवनि में थोड़ा सा आगे बढ़ गये, थोड़ा सा ज्ञान आ गया, कहने लगे— "मेरे सामने यह कौन होता है?" यही पतन की राह है।

वृक्ष में जितने फल लगते हैं, उसकी डालियाँ उतनी ही झुकती हैं। इसलिये आपके ऊपर कोई पत्थर फेंकता है, मुस्करा दीजिये। पत्थर का जवाब पत्थर से न दीजिये। जो आपको बढ़ुआ देता है, उसके लिये आशीर्वाद की मंगल कामना कीजिये। आपके पास कोई

मूर्ख आता है, तो भी उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश फैलायें। किसी मूर्ख से घृणा न कीजिये। सौ हाथों से प्रेम बटोरिये, ज्ञान बटोरिये, हजार हाथों से लुटाइये। यदि इनको अपने जीवन में उतारेंगे, तो पल-पल आप शिखर तक पहुँचते जायेंगे और यही ब्रह्मसृष्टि की पहचान है।

अब जो घड़ी रहो साथ चरणों, होये रहियो तुम रेणु समान।

इत जागे का फल एही है, चेत लीजो कोई चतुर सुजान॥

धाम धनी ने कहा है—

जो कोई मारे इन दुस्मन को, करे सब दुनी को आसान।

पहुँचावे सबों चरण धनी के, तो भी लेना न तिन गुमान॥

यदि आपके पास इतना आत्मिक बल आ जाये कि जब चाहे किसी को राज जी का दर्शन करा दें, इतना ज्ञान आ जाये कि संसार में आपके सामने कोई ठहर न

सके और सारी दुनिया को धनी की पहचान कराकर तारतम देने की क्षमता रखें, तो भी इसका अहम् न लीजिये कि मैं ऐसा हो गया हूँ। यह कहिये कि राज जी करवा रहे हैं।

सिर्फ ऊपर से नहीं कहिए, दिल से कहिए। ऊपर से तो हर कोई कहेगा। सारे मुसलमान कह देंगे कि "अल्लाह तआला करेगा", लेकिन अन्दर से कहेंगे कि "मैं कर रहा हूँ"। सुन्दरसाथ भी यही कहते हैं कि "श्री राज जी का हुक्म होगा तो हो जायेगा", लेकिन दिल में यही भावना रहती है कि "नहीं, मैं कर रहा हूँ"।

जैसा बाहेर होत है, जो होए ऐसा दिल।

तो अधखिन पिऊ न्यारा नहीं, मांहे रहे हिल मिल।।

जो मुख से कहते हैं, वही दिल से भी हों। क्या कहा

है—

तन दिल दोऊ एकै, रूह कहियत है सोए।

ब्रह्मसृष्टि की पहचान कैसी है? जिसकी जिह्वा में जो हो, हृदय में भी वही बात हो, तो समझ लेना चाहिये कि यह परमधाम की ब्रह्मात्मा है और इसके दिल में युगल स्वरूप के चरण कमल पड़े हैं। जब यह भावना आ जाये, तो यही है अध्यात्म का चरम शिखर और इस अवस्था में आने के लिये आपको प्रयास करना चाहिये।

सुन्दरसाथ यह न समझे कि वाणी में समाधि की बात नहीं की गई है। ध्यान की बात तो अवश्य की गई है। तारतम वाणी का कथन है—

कई बैठे करें ध्यान।

"ध्यान" शब्द तो आया है, लेकिन यदि आपके मन

में यह जिज्ञासा है कि समाधि के बारे में वर्णित कर दिया गया, समाधि का शिखर जो होता है, उसका भी वर्णन कर दिया गया। "एकरस होइये इस्क सों", "तब आत्म परआत्म के, रहे न कछु अन्तराए।" जो परात्म की अवस्था है, वही अवस्था इस संसार में आत्मा की हो जायेगी और इस अवस्था तक पहुँचाने वाली एक ही विधा है— चितवनि। चितवनि का तात्पर्य है "आत्म-चक्षुओं से देखना।"

जब आपकी बुद्धि के चक्षु बन्द हो जायें, मन के चक्षु बन्द हो जायें, अहम् के नेत्र बन्द हो जायें, आपका जीव विरह के रस में डूबकर स्वयं को निर्मल कर ले, प्रेम का रस आ जाये, धनी से एकरस हो जायें, धनी का दीदार हो जाये, दीदार होने के बाद उनके दिल में डुबकी लगाकर आप अपने अस्तित्व को इस प्रकार समाप्त कर

लीजिये कि "तू ही तू" रह जाये। उस समय न मत्था
टेकना होगा, न जयकारे बोलना होगा, कुछ भी
कर्मकाण्ड नहीं रह जायेगा।

॥ इति पूर्णम् ॥

